प्रथम अध्याय

कोलकता* में श्री म

मॉर्टन स्कूल। पचास नम्बर अमहर्स्ट स्ट्रीट। द्वितल की सीढ़ियों के पास का कमरा। श्री म भूमि पर चटाई पर पूर्वास्य बैठे हैं। भक्तगण सम्मुख उपविष्ट। कई मास स्वास्थ्यकर स्थान पर वास करने से श्री म के शरीर की विशेष उन्नति हुई है। लट्ठे का कुरता पहने सहास्य वदन डॉक्टर बक्शी, वकील ललित बाबू, भाटपाड़ा के ललित बाबू, छोटे जितेन आदि के संग में ईश्वरीय कथा कह रहे हैं। क्रमशः बड़े अमूल्य, रमणी, मनोरंजन आ गए। और भी अनेक भक्तों से कमरा परिपूर्ण। विनय मठ में गए हैं।

आज प्रात:काल ही श्री म मिहिजाम से सात-आठ मास बाद लौटे हैं। सारा दिन ही साधु और भक्तगण यातायात करते रहे। बहुत दिन पश्चात् प्रिय के सन्दर्शन से भक्तगणों के आनन्द का शेष नहीं। श्री म का वासस्थल मानो आज त्रिवेणी क्षेत्र में परिणत हो गया— श्री म, साधु और भक्तों के सम्मिलन से।

अब सन्ध्या समागता। शुकलाल, ब्रह्मचारी रमेश और मोहन ने कमरे में प्रवेश किया। शुकलाल के संग कुशल प्रश्नादि शेष होने पर श्री म कहने लगे, ''क्यों जी, वह कहाँ है?'' अन्धकार में मोहन को देख न पाने पर यह प्रश्न किया। मोहन अग्रसर होकर सविनय उत्तर देने लगे, ''जी, यह मैं— यहीं पर।''

श्री म *(मोहन के प्रति, ललित को दिखला कर)*— यह देखिए, ये वकालत करते हैं। इसके पढ़ने में दोष नहीं। पर अर्थजन्य सत्य को मिथ्या करना ठीक नहीं। पढ़ना अच्छा, प्रैक्टिस ठीक नहीं। यदि कहो 'लॉ' मिथ्या है, पढ़ने से लाभ क्या? इसका उत्तर— न पढ़ना ही क्या सत्य, यह भी तो

---

* अब कोलकता

मिथ्या, ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या— वह एक अवस्था की बात। अन्तिम बात। जब तक यह अवस्था प्राप्त न हो, तब तक यही सब लेकर रहना। तर, तम होते हैं। पढ़ना-लिखना लेकर रहना सहायक। ईश्वर-लाभ होने पर इन सब की दरकार नहीं। वह जब तक नहीं होता तब तक वे सब लेकर रहना भला।

श्री म *(सहास्य)*— हरि महाराज के निकट एकजन आए संन्यास लेने। पूछताछ पर पता लगा, उसके स्त्री, पुत्र, कन्या सब हैं। हरि महाराज ने कहा, ''उनको कष्ट में डाल कर क्यों आना चाहते हो?'' उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, ''महाशय, स्त्री-पुत्र सब मिथ्या।'' और भी अनेक लम्बी-चौड़ी बातें बोलने लगा। यह सुनकर वे कहने लगे, ''अच्छा, यह भी तो मिथ्या, विवाह किया है, बाल बच्चे हुए हैं, अब उन्हें छोड़कर चले आना। क्या कहते हो? यह क्या फिर सत्य, उनको न देखना?'' उन लोगों की बात अलग, जिन्होंने विवाह किया नहीं। फिर भी बाप-माँ रहते उनकी सेवा करना उचित।

सन्ध्या का दीपक आया। श्री म ने युक्तकर से प्रणाम किया। और मृदु हाथ-ताली से 'हरि बोल, हरि बोल' यह मन्त्र उच्चारण करने लगे। फिर सब कुछ काल के लिए ईश्वर-चिन्तन करने लगे।

इस समय बड़े जितेन बाबू और कविराज विरिंचि बाबू आए हैं। बड़े जितेन वकालत पास। हाईकोर्ट के बैंचक्लर्क। खूब भक्तिमान और सदाशय व्यक्ति। श्री म के साथ उनका प्राथमिक कुशल प्रश्नादि हो गया। छोटे जितेन ने बड़े जितेन से पूछा, ''जितृदा, आपने क्या घर बदल लिया?'' बड़े जितेन ने उत्तर दिया, ''हाँ भाई! बीस वर्ष हो गए वृन्दावन मल्लिक लेन में, पर मन में हो रहा है जैसे अभी-अभी।'' यह बात सुनकर श्री म ने तुरन्त बातों का मोड़ फिरा कर कहा, ''आपकी बहादुरी नहीं इसमें। उन्होंने आपको रखा तो आप रहे। भाई चला गया, तो वे ही कोई और सुविधा कर देंगे।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— कितने प्रकार की प्रकृति है। कोई-कोई छिना जोंक* की तरह रहता है (संसार में), और धँसता चला जाता है। सत्त्व, रज और तम, इन्हीं तीन गुणों के सम्मिश्रण से कितनी विभिन्न प्रकृति हुई।

---

* छिना जोंक = घास में रहने वाली एक प्रकार की जोंक; (व्यंग्य में) जो पीछा नहीं छोड़ती।

इसी प्रकृति को जीतना ही है problem of life (जीवन की समस्या)।

''प्रकृति का स्रोत एक ओर चलता है। उलटी दिशा से और एक स्रोत आए तब उसको जय किया जाता है। उलटा स्रोत आता है उनके शरणागत होने पर। Poison and its antedote (विष और उसका प्रतिकार)— ये दोनों ही उन्होंने किए। Antedote (प्रतिकार) हैं— साधुसंग, निर्जनवास, तीर्थ, उनके पास प्रार्थना— ये सब।''

श्री म *(कार्त्तिक बाबू के प्रति)*— हाँ डॉक्टर बाबू, गीता का कौन-सा श्लोक?

कार्त्तिक— दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (गीता 7:14)

श्री म भी संग-संग आवृत्ति करने लगे। डॉक्टर को समस्त गीता कण्ठस्थ।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— यह देखिए, भगवान कहते हैं, मेरी माया 'दुरत्यया' अर्थात् पार हुआ जाता ही नहीं प्रायः। किन्तु केवलमात्र मेरे शरणागत होने से ही हो सकता है। माया पार होना यानी संसार जय करना, प्रकृति जय करना। यह केवल उनकी कृपा से हो सकता है। उसे छोड़ होता नहीं। पञ्चभूत के बन्धन, ब्रह्म करे क्रन्दन।

''देह धारण करने से internal (भीतरी) काम, क्रोध, लोभ और external (बाहरी) शोक, दुःख, दारिद्र्य— ये सब रहेंगे ही। प्रकृति का काज प्रकृति करेगी ही। ठाकुर ने दस मास कैंसर से भोगा। उः, क्या कष्ट! क्यों यह भोग? शिक्षा देने के लिए— देह धारण करने से रहेगा ही यह सब। बकुलतले एक बार काम हुआ। माँ से कहने लगे, 'माँ, यह यदि होगा तो गले पर छुरी दूँगा।' देखिए, ऐसे जो अवतार, उनको भी काम होता है, रोग होता है। एक दिन ठाकुर कहने लगे, 'कद्दू का फूल स्वप्न में देखा है।' एक भक्त ने कहा, 'लाकर दूँ क्या खाने के लिए?' उन्होंने उत्तर दिया, 'न, कितना कुछ छाई, भस्म देखता हूँ स्वप्न में।' देखिए, देह धारण करके अवतार भी ठीक मनुष्यवत् सब करते हैं— घीया कद्दू स्वप्न में देखते हैं। इसे ही कहते हैं,

पञ्चभूत के बन्धन, ब्रह्म करे क्रन्दन। किन्तु फिर भी भगवान को ही चाहना।

"प्रकृति भी वे ही करते हैं और प्रकृति पर विजय भी वे ही करवाते हैं। सत्त्व, रज, तम— ये तीन गुण प्रकृति के उपादान हैं। इनका काम है जीव को संसार में बद्ध करना। उनके हाथ से मुक्तिलाभ का उपाय भी उन्होंने ही बोल दिया है। कहते हैं, 'हे जीव, मेरे शरणागत हो जाओ, वह होने पर ही केवल इस दुरतिक्रमणीय माया के हाथ से निष्कृति लाभ कर सकोगे।' और अन्य पथ नहीं, यह ही एक पथ— शरणागति।

"तपस्या माने क्या?— प्रकृति को जीतने की चेष्टा का नाम ही तपस्या है। साधुसंग, निर्जनवास, निर्जने गोपने रो-रो कर उनसे कहना। ये सब करते-करते उनकी कृपा होने पर प्रकृति जय होती है। प्रकृति जय माने ही ईश्वर-दर्शन।"

श्री म— कुछ काल के लिए निर्जनवास अच्छा है। ठाकुर वही करने को कहा करते। इन शहरों के गोल-माल से निर्जन में रहना भला। वे कहा करते, उस देश में (कामारपुकुर में) गुड़ की हाण्डी में छिद्र करके उसके नीचे गमला रखते हैं। छः मास पश्चात् हाण्डी का गुड़ सब मिश्री हो जाता है। रस सब बाहर निकल जाता है। चाहे हो भी जाए, जैसे रात्रि में कइयों का discharge (वीर्यक्षय) हो जाता है। क्या इस कारण स्त्री-संग करना पड़ेगा? होता है तो होने दो। इस प्रकार निकल कर जो बचेगा, वह मिश्री बन कर रहेगा।

"जभी तो कुछ दिन इन विषयों के मध्य से— रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श के भीतर से मन को निकाल कर निर्जनवास करना चाहिए। उनके मध्य दिन-रात रहने से धँसता ही जाएगा। Sights and scenery (दर्शनादि) से मन में सब प्रकार की भोग-वासनाएँ उदय होती हैं। ठाकुर कहा करते, मैदान में दो गर्त हैं। इनमें एक का जल सूख गया, दूसरे का रह गया। क्यों? इसका अर्थ क्या? यही न, जिसमें जल रहा गया है उसके पास कोई नदी-टदी बह रही है। उससे जल रिस-रिस कर आ जाता है। एक की feeder (अववाहिका) है कोई नदी-टदी, दूसरी की वह नहीं; जभी तो जल सूख गया। ऐसा ही इन

सब के भीतर रहना। विषय है फीडर (भोजन)। उसमें ही मन डूब जाता है। विषय का नाम ही माया। जभी निर्जन में रहने के लिए कहा करते। विषय से पृथक् रहने से भीतर सूख जाता है— dross (मैल) सब झड़ पड़ता है, मन crystalised (निर्मल) हो जाता है। निर्मल मन में उनका दर्शन होता है।

''ठाकुर कहा करते, साधु-संन्यासी स्त्री के चित्रपट तक का भी दर्शन नहीं करेगा। गृहस्थ के घर नहीं रहेगा। Sights and scenery (संग-प्रभाव) से भोगवासना मन में आती है, इसलिए। जो ईश्वर को चाहता है, ऐसा साधु अकेला रहे— किसी के संग में नहीं।

''गृहस्थ के संग एक बिछौने पर बैठना, एक मसहरी में सोना उचित नहीं। इससे नीचे गिर जाता है मन। पश्चिम (पश्चिमी भारत— पंजाब, उत्तर प्रदेश आदि) के साधु एक ही आसन पर गृहस्थ को बैठने नहीं देते, पीछे इनके संस्पर्श से मन मलिन न हो जाए, इसलिए। इसमें उनका दोष नहीं। दोनों के कल्याण के लिए ही यह नियम अच्छा है।

''प्रवर्त्तक जो हैं उन्हें तो बहुत ही बचकर चलना चाहिए। सबमें से ही 'नेति, नेति' करते हुए चले जाना चाहिए। प्रथम त्याग करना चाहिए। भगवान दर्शन होने पर तब भोग किया जा सकता है। किन्तु पहले सब कुछ त्याग। अनेक ही छोड़ना होता है beginners (प्रवर्तकों) को। नचिकेता ने कुछ भी लिया नहीं। यम ने कहा, 'राज्य लो।' 'जी नहीं।' 'स्त्री, पुत्र, चिरजीविका?' उस पर भी वही उत्तर— 'जी नहीं, कुछ भी चाहिए नहीं। आत्मज्ञान, केवल यही मात्र माँगता हूँ।'

''श्रेय, प्रेय दोनों हैं। केवल श्रेय माँगना चाहिए। श्रेय माने ईश्वर। प्रेय— विषय भोग। नचिकेता ने जभी तो श्रेय माँगा, प्रेय नहीं।

''भोग कौन कर सकता है?— जिसका सब त्याग हो गया है, जिसका ईश्वर-दर्शन हो गया है। इससे पहले सब छोड़ना होता है। योगवासिष्ठ में है, कच बहुकाल तक निर्विकल्प समाधि में रहकर नीचे आए। तब जिज्ञासा की गई, 'क्या देख रहे हो?' 'सब में ही वे रह रहे हैं ओतप्रोत भाव में'— यही उत्तर दिया। सब ही वे। ठाकुर भी कहा करते, 'इस अवस्था के परे भोग

करने पर दोष नहीं। तब भोग भोग नहीं होता।'

"'पञ्चवटी में एक कुत्ता गया ठाकुर के पास। तुरन्त सोचा, 'माँ उसके मुख से जैसे कुछ बुलवाएँगी।' सब में ही माँ!

"अनेक कष्टों से छत पर चढ़ जाने पर तब सीढ़ी के नीचे की खबर भी बतलाई जा सकती है। प्रथम कष्ट करना होता है। समाधि के पश्चात्— वे ही सब हैं— यह ज्ञान होता है।"

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— हेगेलियन फिलॉसफी का मत है— वे ही सब हो कर रह रहे हैं। वह अवश्य borrow (उधार) लिया है हमारे वेद-वेदान्तों के translation (अनुवाद) से। उसके और भी exponents (प्रचारक) हैं अमेरिका में। वे इसका अर्थ करते हैं, ईश्वर ही जब सब होकर रह रहे हैं, तब तो खूब भोग करो यह संसार, जितना कर सको। *(सब का हास्य)*। वे तो जानते नहीं, यह बात क्योंकर आई। उनके पास तो ये borrowed ideas (उधार लिए हुए विचार) हैं। प्रथम कितना त्याग करना पड़ा है। तभी तो इस देश के ऋषियों ने भगवान-लाभ करके यह बात कही। 'त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः' (कैवल्य उपनिषद्, 3)— एकमात्र त्याग के द्वारा ही अमृतस्वरूप जो ईश्वर, उसका लाभ किया जाता है। सम्पूर्ण रूप से त्याग न हो तो उन्हें पाया जाता नहीं। साधुओं को, प्रवर्त्तकों को सब त्याग करना पड़ता है। सर्वस्वत्याग और उनमें शरणागति।'

"ठाकुर कहते, तीन रकम के मनुष्य हैं इस संसार में। एक रकम के हैं वे, जो अन्य कुछ भी चाहते नहीं— केवल ईश्वर को चाहते हैं, केवल योग। ये ही फर्स्ट क्लास— जैसे शुकदेव। और एक प्रकार के हैं, जो योग-भोग दोनों ही चाहते हैं। ये भी अच्छे हैं। कितने बड़े-बड़े भक्त हुए हैं इस क्लास में— जैसे पाण्डव। और एक दल केवल भोग चाहता है। ये ईश्वर को चाहते नहीं। इस दल के लोग ही हैं अधिक। वहाँ (मिहिजाम में) कई मास रहकर देख आया हूँ, जानवरों के भीतर केवल यही भोग-भाव रहता है। गाय, भैंस, कुत्ते, बिल्ली— ये केवल आहार लिए ही हैं व्यस्त दिन-रात। आहार, विश्राम और सन्तान-उत्पादन की चेष्टा— यही उनका काज। इस

क्लास के मनुष्य और पशु में प्राय: अन्तर नहीं है। मनुष्य-शरीर में इच्छा करने से ईश्वर-चिन्तन कर सकता है, यही लेशमात्र अन्तर है।

''एक कनस्तर के नीचे एक frog (मेंढक) रहता था। ज्यों ही टीन को उठाया त्यों ही उसके दो बच्चों में से एक भाग गया। दूसरे को कहीं मैं मारूँ ना, जभी माँ छलाँग लगा कर उसके ऊपर पड़ गई। *(हस्त प्रसारण करके)* इसमें उनका ही हाथ देखा। उन्होंने ही हाथ बढ़ा कर उसकी रक्षा की। एक दिन एक बकरी के बच्चे को गोद में उठा लिया। माँ तो डाकती-पुकारती पास आकर खड़ी है, हिलती नहीं, भय नहीं आज।

''यही सब अमूल्य वस्तुएँ देखकर आया इस बार। ऐसे स्थान पर बिना जाए ऐसी समझ नहीं आती। ये जो वेदादि शास्त्र हैं, सब क्या यहाँ-जैसे स्थान पर बैठकर लिखे गए हैं? वहाँ— जैसे निर्जन मैदान में, वन में बैठकर लिखे गए हैं। ये जो 'औषधि', 'वनस्पति' आदि की बातें हैं शास्त्रों में, ये शहरों में होती नहीं। 'सब पर ही उनका हाथ।' इस बार यही देखकर आया। जो जन भगवान के लिए व्याकुल हैं, वे निर्जन में वैसे ही स्थानों पर रहते हैं। उनकी क्लास ही अलग— जैसे मधुमक्खी केवल फूल पर ही बैठेगी। अन्य मक्खी गले-सड़े घाव, विष्ठादि पर भी बैठती है। जो केवल उन्हें चाहते हैं, वे हैं मधुमक्खी।

''ठाकुर कहा करते, 'विष्ठा पर भी चना गिरने से, उस चने से चने का ही पौधा होता है। और फिर वे चने ही ठाकुर-पूजा में लगते हैं।' इसका अर्थ हुआ, जिसकी जैसी प्रकृति, वह वैसा ही कार्य करेगा। जन्म चाहे जहाँ भी क्यों न हो, ईश्वर-भक्त देव-सेवा में ही लगेगा। ईश्वर-दर्शन में कुल, शील की अपेक्षा रहती नहीं। धनी-दरिद्र भेद नहीं। राजा-प्रजा, पण्डित-मूर्ख, ब्राह्मण-चाण्डाल, भेद नहीं। ऊँच-नीच नहीं वहाँ पर। ठाकुर कहा करते, 'चाँद जैसे सब शिशुओं का मामा, वैसे ही ईश्वर सब का अति अपना। जो चाहे, वह पाए।''

कोलकता; 10 मई, 1923 ईसवी, बृहस्पतिवार।
27 वैशाख, 1330 (बं०) साल, कृष्णा दशमी।

द्वितीय अध्याय

अवतार आते हैं भक्तों के कर्म कम करने

(1)

सन्ध्या, प्राय: सात। श्री म मॉर्टन स्कूल के द्वितल के बरामदे में खड़े हैं। विनय के संग बातचीत कर रहे हैं। पहने हुए हैं मिल की दोहरी धोती, मुक्तकच्छ। देह पर लट्‌ठे का कुरता। पास ही बैठने का कमरा। भक्तगण बैठे हैं। छोटे जितेन, डॉक्टर, ललित वकील, छोटे नलिनी, शान्ति और योगेन। शुकलाल, रमणी, वीरेन एटोर्नी, जगबन्धु और मनोरंजन ने एकसंग कमरे में प्रवेश किया। नवागत बहुत भक्तों से कमरा पूर्ण।

श्री म ने अल्पक्षण परे कमरे में प्रवेश किया। पूर्वास्य होकर पश्चिमी दीवार से सटी चटाई पर बैठ गए। सम्मुख फर्श पर भक्तगण बैठे हैं और पूर्वी दीवार पर श्री श्रीरामकृष्णदेव की एक प्रतिमूर्ति टँगी हुई है। प्रकाश के आते ही सब ही कुछ काल तक ईश्वरचिन्तन करते रहे। कमल श्री म के आदेश से भजन गा रहे हैं :

के तुमि एले हे एबार प्रेमिक उदासीर भाने।
तोमार जमुना सरजू कोथा, लीला गंगा पुलिने॥ इत्यादि

[अरे, तुम इस बार प्रेमिक उदासी के रूप में कौन आए हो? तुम्हारी यमुना और सरयू की लीला कहाँ, जो अब तुम गङ्गा-तट पर लीला करने आए हो।]

और भी गाया :

ओइ जे देखा जाय आनन्द धाम।
अपूर्व शोभन भव जलधिर पारे ज्योतिर्मय॥... इत्यादि

[वह देखो ज्योतिर्मय आनन्द-धाम, अपूर्व शोभा से मण्डित, संसार-समुद्र के उस

पार जो दिखाई दे रहा है।]

शैलेन गा रहे हैं :

फिरिये ने मा तोर बेदेर झुलि।
ओ मा मजासने आर आमाय काली॥

[ऐ माँ, तू अपनी यह भानमती की पिटारी वापिस समेट ले, मुझे और मुग्ध न कर।]

श्री म ध्यानस्थ हुए संगीत श्रवण करते रहे। अब भावविभोर चित्त से ईश्वरीय वार्त्ता कर रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर ने कहा, 'गान क्या कुछ कम चीज़ रे! निर्जने गोपने रो-रो कर, गाना गा कर व्याकुल होने पर भगवान-दर्शन होता है। रामप्रसाद को हुआ था।' काशीपुर बाग में अन्तिम अवस्था में कहा, 'माँ मुझे बदल रही हैं! अब 'तुम', 'मैं' नहीं, सब ही देख रहा हूँ 'वे'। एक सेव्य और एक सेवक— यह भाव नहीं, सब ही सेव्य। कर्म कम हो गए हैं। अब लीला-संवरण होगी, जभी यह अवस्था। पूर्व का नृत्य, गीत, बात-बात में— 'तुम माँ, मैं बेटा', ऐसा अब और नहीं। सब चुप, सब शान्त। कई दिन परे ही शरीर गया।

बड़े जितेन ने इसी बीच गृह में प्रवेश किया। उन्होंने सुन लिया, 'अब 'तुम', 'मैं' नहीं, सब ही देख रहा हूँ 'वे'।' इसलिए वे प्रश्न कर रहे हैं, शंका दूर करने की इच्छा से।

बड़े जितेन *(श्री म के प्रति)*— महाशय, यह 'मैं' जाए कैसे? इसकी ज्वाला तो अस्थिर कर डालती है। यहाँ ही सुना गया है 'कच्चा मैं', 'पक्का मैं' और भी 'जीवकोटि', 'ईश्वरकोटि'— ये क्या हैं? समझा दें एक बार।

श्री म *(जितेन के प्रति)*— ठाकुर कहा करते, 'जीव का 'मैं' जाता नहीं। ईश्वरकोटि जैसे अवतारादि, उनका 'मैं' चला जाता है। जीव का 'मैं' जब जाने वाला ही नहीं, तब रहे साला 'दास-मैं' होकर, यह बात कहते। और भी कहा : जीव है जैसे पीपल का पेड़; आज काटकर फैंको, कल ही फिर और फुनगियाँ निकल पड़ेंगी। अवतारादि जैसे मूली का पौधा, जड़

समेत निकल आता है; 'मैं' रहता ही नहीं।

''मैं मनुष्य, मैं विद्वान, बुद्धिमान, मैं अमुक का पुत्र, अमुक जाति— यह हुआ कच्चा मैं। मैं ईश्वर का दास, भक्त, मैं उनकी सन्तान इत्यादि भाव, किंवा मैं ही वे, यह हुआ पक्का मैं। ठाकुर कहा करते 'भक्त का मैं', 'दास मैं' अच्छा। 'बज्जात मैं' ही है जितना भी खराब— जो दिन-रात कहता है, 'मैं अमुक्, मैं तमुक्।' जीव का मैं जब जाने वाला ही नहीं तब और क्या करना! उनके संग योग करके रखना— मैं उनका दास, मैं उनकी सन्तान।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— सब वे करते हैं। मनुष्यों की यही जो है भिन्न-भिन्न प्रकृति, वह भी उन्होंने ही की है। पहले का जाति-विभाग इसी प्रकृति के ऊपर प्रतिष्ठित था। तभी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा था, करूँगा नहीं। क्या यह कहने से ही हो जाता है? तुम क्षत्रिय, तुम्हारी प्रकृति में युद्ध है। तुम्हें वह करना ही होगा, तो भी निष्काम भाव से करो; फल की आकांक्षा न करके। अनासक्त होकर समस्त फल मुझे समर्पण करके करो। 'तत्कुरुष्व मदर्पणम्।' (गीता 9:27) यही मार्ग दिखाया था।

'' *(क्षणिक मौन रहकर)* प्रकृति की गति बड़ी ही प्रबल। यह शक्ति भी उनकी ही दी हुई। उनकी ही मायाशक्ति जीव को नाना प्रकार से नियुक्त करती है। वहाँ (मिहिजाम में) देखा करता पशु-पक्षी— गाय, भैंस, बिल्ली, कुत्ता सब ही प्रकृति की शक्ति से चालित हैं। जानवरों को देखा करता— सुबह से लेकर केवल खाते ही हैं। अवसर के समय जुगाली करते हैं। और फिर इसी के मध्य यह भी चलता है— reproduction (सन्तान-उत्पादन) की चेष्टा। खाना और खाना— यही जीव-प्रकृति। मनुष्य में और उनमें सब ही मिलता है— देवभाव छोड़। मनुष्य-शरीर में ईश्वर को पुकारा जाता है— अन्य शरीर में वह प्राय: होता नहीं। हमारे शरीर के भीतर तीन शरीर हैं कि ना— स्थूल, सूक्ष्म, कारण, उसके परे महाकारण अर्थात् ईश्वर। कारण शरीर माने spiritual body— ठाकुर कहा करते 'भागवती तनु'। इसी कारण-शरीर की चिन्ता केवलमात्र मनुष्य ही कर सकता है।''

बड़े जितेन *(सविनय)*— सुनता हूँ रोज ही, समझ पाता हूँ कहाँ? कैसे होगा— क्रमश: जो 'उलझते' ही चले जा रहे हैं— अब उपाय क्या?

श्री म *(झट से)*— उपाय तो सब उन्होंने बोल दिए हैं। कितनी बार कितनी तरह से कहा। पालन करने की चेष्टा करते हैं कहाँ लोग? मणिमल्लिक, प्राचीन ब्राह्मभक्त, ठाकुर के पास जाया करते और सब सुनते और बीच-बीच में पूछते, 'महाशय, उपाय क्या?' नूतन जन, नूतन साधु, सब मिलते ही *(ठाकुर से)* वही एक बात ही कहते, 'उपाय क्या?'

''उपाय तो ठाकुर ने कितनी बार बतलाया है, सुनता है कौन? उनकी एक-एक बात है एक-एक मन्त्र। संस्कृत में हो, तभी समझते हैं मन्त्र। बंगला में क्या होता नहीं? वेद-वेदान्त सब कुछ है उसमें। सुनता है कौन? रहे तो उनकी एक बात लेकर कोई। वे कहा करते, 'उनको पुकारना चाहिए, बने, मने और कोने।' यही एक बात ही लेकर रहे तो कोई, देखूँ!

''इतने सारे लोग तो हैं किसको ही कहूँ? कौन करता है? वे तो आते ही हैं इसीलिए, 'संभवामि युगे युगे' (गीता 4:8)— युग-युग में मैं अवतीर्ण होता हूँ। क्यों?— भक्तों को उठाने। भक्तगण जब बहुत नीचे डूब जाते हैं तब उनका परित्राण करने, उनका पथ सीधा करने वे आते हैं। कितना सहज कर दिया इस बार, कितना नीचे आ गए! बतलाया तो— साधुसंग, प्रार्थना, निर्जनवास, तीर्थ इत्यादि करोगे। इतनी दूर नीचे उतर गए थे, 'तीन दिन निर्जनवास कर लेने से ही हो जाएगा' कहा था। माने तीन दिन में ही एक taste (आस्वाद) पड़ जाएगा। पीछे स्वेच्छा से ही जाना चाहेगा मन। इतने उपाय बतलाए ठाकुर ने, वे भी करते कहाँ हैं लोग? लोग क्या कहने से ही करते हैं? प्रकृति जो खींचे रखती है। संसारियों को क्या लज्जा आती है? भोग में डूबे हुए एकदम बिल्ली-कुत्तेवत् लज्जाशून्य हो गए हैं।

''उनकी इच्छा होने पर अन्य रूप हो जाता है। इस पङ्क के भीतर से पद्मफूल फूटता है।

''केशव बाबू, जो जन उनके (ठाकुर के) पास जाते, उनसे कहते, 'वहाँ (दक्षिणेश्वर) इतना मत जाना। कभी-कभी जाना। नहीं तो कुट् करके एक दिन डंक मार देंगे।' अर्थात् ईश्वर-लाभ के लिए सर्वस्व त्याग करवा लेंगे। यही बात ठाकुर को बतलाने पर ठाकुर ने उत्तर में कहा, 'क्या? मैं क्या

उन्हें संसार छोड़ देने को कहता हूँ? यह भी करो, वह भी करो; योग-भोग दोनों ही करो। बाबा, रक्षा ही कहाँ, कोलकता के लोगों को 'सब छोड़ो' कहने पर।' अब दोनों ओर ही करें, परे जो होना है होगा। छोड़ना हुआ तो पीछे अपने आप ही छोड़ देगा तब। यही जो इतना करके बोले ठाकुर, उसे कितने लोग सुनते हैं? प्रकृति उल्टे पथ पर ठेले लिए जा रही है।''

(2)

श्री म *(शुकलाल के प्रति)*— ठाकुर कहा करते : पहले के लोग सब विश्वासी थे। कर्त्ता कर्मचारियों पर minor matters (साधारण विषय) छोड़कर ईश्वर-चिन्तन किया करते थे। संसार का minute (छुटपुट) सब देखने जाएँ तो समय ही कहाँ? उन पर भार डालने से, न हो सौ रुपया ही अधिक लग जाएगा। कोई-कोई फिर ऐसे हैं, नौकर के संग बाजार जाते हैं डलिया लेकर। शायद दो-एक पैसे का साग-सब्जी लाएँगे। पैसा बचाने बाजार जाते हैं। वह लेगा भी तो कै पैसे? धिक्! ईश्वर का दाम क्या दो पैसे? खाली वही लिए हैं दिन-रात। तब फिर कैसे समय होगा? समझ लिया, उनका उपदेश?— 'कर्मचारियों के ऊपर भार दो और बाकी समय उनका नाम करो।' यहाँ तक कहते, 'पहले ऋषि-मुनि सारा दिन-रात उनका नाम करके भी उनका लाभ कर सके नहीं।' और संसारी लोग 'एक-टुक' leisurely (अवसर के समय) पुकारने से ही उनको प्राप्त कर डालेंगे? इतना सीधा नहीं।

'' *(जनैक युवक के प्रति)*— जिनके पास रुपया-पैसा नहीं, उन्हें तो हो सकता है समय ही न हो। स्त्री, पुत्र हैं, उन्हें रोजगार करके खिलाना पड़ता है। किन्तु जिनको खाने-पहनने की चिन्ता नहीं, वे क्यों नहीं करते, बता सकते हो महाशय? वे भी कहते हैं, यह इतनी विषय-सम्पत्ति है, मैं न देखूँ तो देखे कौन? मुखर्जी को ठाकुर ने पूछा था कुछ दिन न आने पर : क्यों नहीं आए? उन्होंने उत्तर दिया, 'जी, मुझे सब कुछ देखना पड़ता है— बाड़ी-घर, विषय-सम्पत्ति।' उनका किन्तु पुत्र-कन्या कोई भी नहीं। यह कैसा काण्ड! इतना अवसर, रोटी की चिन्ता नहीं, तब भी होता नहीं!''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— वे तो हमें पथ बतला गए हैं। करते हैं कहाँ लोग? उन्होंने कहा, 'आन्तरिक उन्हें पुकारने पर वे सब कर देते हैं।' एक दिन घर में अन्य कोई नहीं है, देखकर एकजन भक्त (श्री म) को कहा था, 'यहाँ पर अन्य जन नहीं है कोई, तभी तुमसे कहता हूँ : आन्तरिक उनको पुकारने पर वे सब कर देते हैं।' और भी कितनी ही बार यही बात कही थी, 'आन्तरिक होने पर सब होगा!'

(तनिक चिन्तन के पश्चात्) ''बाबूराम ने ठाकुर को उस समय कहा था— जब उन्होंने उसको दक्षिणेश्वर में अपने पास ठहरने के लिए कहा, बुला ही क्यों नहीं लेते यहाँ? आन्तरिक कहा था, तभी साधु हुआ। कितनी ही बार तो कहा है ठाकुर ने, 'मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ मेरा चिन्तन जो करेगा सो मेरा ऐश्वर्य लाभ करेगा, जैसे पिता का ऐश्वर्य पुत्र लाभ करता है।' ज्ञान-भक्ति, विवेक-वैराग्य, प्रेम-समाधि ये सब हैं उनका ऐश्वर्य।

''व्याकुल होकर रोना चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए। कहा करते : 'मैं जब रोया करता था, तब लोग सब स्थिर खड़े हो जाते; और मुझसे कहते— तुम्हारा होगा।' वे खूब कठोरताओं के भीतर से होकर गए थे कि ना? और इनके अपने जीवन में सब घटित हुआ है।

''आन्तरिक पुकारते-पुकारते वे कर्म कम कर देते हैं। कर्म कम होते ही ईश्वर के लिए व्याकुलता आती है। व्याकुलता आते ही सब हुआ। ठाकुर बतलाते, 'जैसे अरुणोदय के परे ही सूर्योदय, वैसे ही व्याकुलता होते ही उनका दर्शन होता है।' कर्म कम होना माने भोगान्त। उनको move (राजी) करना हो तो फीस देनी होती है— जैसे कोर्ट में move (आवेदन) करने के लिए गोल्ड (सोने की) मोहर देनी पड़ती है। उनको move (खुश) करने की फीस, भोगान्त।''

(3)

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— अवतार आते हैं क्यों? कर्म कम करने ही ना! श्रीकृष्ण ने आकर एक धक्का दिया। उन्होंने कहा : जो कुछ करो निष्काम भाव में करो, फल की आकांक्षा न करके करो। अनासक्त होकर सब फल मेरे में समर्पण करके करो।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ (गीता 9:27)

'' 'मदर्पणम्' माने मेरे लिए करो, तुम्हारे निज के लिए नहीं। उससे कर्म तुम्हें और बाँध सकेंगे नहीं। नहीं तो कर्म का बन्धन अवश्यम्भावी। बुद्ध ने आकर और एक धक्का दिया। ठाकुर भी आए इसीलिए ही, कर्म कम करने। उन्होंने प्रतिज्ञा करके कहा, 'संभवामि युगे-युगे।' (गीता 4:8)— अर्थात् मैं युग-युग में मनुष्य-शरीर धारण करके अवतीर्ण होता हूँ और सीधा पथ बतला देता हूँ। भक्त जब सब ओर से complicated (जटिल) हो पड़ते हैं, तब ही वे स्वयं आते हैं। इतना उलझ जाता है कि उन्हें स्वयं आना पड़ता है। उनके आने के पूर्व लोग सब वैदिक आचारादि लेकर ही संतुष्ट रहते हैं केवल। इतना जप, यह पूजा, इतने दिन व्रत, उपवास, इतनी दूर पैदल नंगे पाँव चलना होगा— यही सब बाहरी नियमादि लेकर व्यस्त रहते हैं। धर्म का मूल जो व्याकुलता, उनको प्राप्त करने के लिए आन्तरिक आकांक्षा, इसे ही भूल जाते हैं लोग। वे आकर यह सब बदल देते हैं, बाहरी कर्म कम कर देते हैं। आन्तरिक कर्म— व्याकुलता बढ़ा देते हैं। वे आकर कहते हैं, 'मेरा आन्तरिक चिन्तन करो, मेरी शरण लो, मैं तुम्हें सीधे पथ पर शीघ्र ले चलूँगा।' नूतन काज में जिससे फँस न जाए, वही पथ दिखा देते हैं। अवतार जब आते हैं, बड़ा chance (सुयोग)। सब simplify (सहज) कर देते हैं, shortest cut (सबसे सहज पथ) से ले जाते हैं।

''और एक बात कहा करते ठाकुर : इतना सब कर्म इस विश्व के परिचालन में जो है, कल्पान्त में सब समेट लेते हैं। सब नीरव। कहते, माँ की एक छिटपुट की हाण्डी है। उसमें सब बीज उठा कर रख देती है। *(बड़े*

जितेन के प्रति) देखा नहीं, गृहिणियाँ सब रखती हैं। खीरे के बीज, कद्‌दू के बीज, समुद्रफेन— ये सब कुछ हाण्डी में उठाकर रख देती हैं। ठीक वैसे ही। और फिर जब इच्छा होती है तब सारे बीज छिड़क देती हैं ब्रह्माण्ड में— उनकी भावराशि। क्या ही majestic plan (अति उच्च परिकल्पना) है! बाहर से तो लगता है मानो विश्व है automatic (स्वयं परिचालित)। किन्तु सो तो नहीं। सब उनकी इच्छा से चलता है। यही समझ सकने पर ही problem (समस्या) प्रायः solved (समाधान) हो जाती है। जब जिस अवस्था में ही रहना पड़े, आनन्द में रह सकता है मनुष्य। उनके इंगित से सब चलता है— यह भूल जाना ही है सब दुःखों का कारण। वे यन्त्री, मनुष्य यन्त्र। *(जगबन्धु के प्रति)* यह जो सौरमण्डल देख रहे हो, जिसके कारण हम जी रहे हैं, तब सब बन्द हो जाता है। यह सूर्य, नैप्चून (वरुण), यूरेनस (प्रजापति), सप्तर्षि इतना सब काम करते हैं, कल्पान्ते सब नीरव। *(स्वगत)* और फिर मनुष्य को कैसी बुद्धि दी! वैज्ञानिक लोग कितने ही तत्त्व बाहर किए जा रहे हैं— पृथ्वी से सूर्य का दूरत्व, आकार, नैप्चून (वरुण) डेढ़ हजार वर्ष में सूर्य की एक बार प्रदक्षिणा करता है— ये सारी बातें इसी बुद्धि द्वारा स्थिर कर रहे हैं। एक बिन्दु-बुद्धि से ही इतना सब कुछ, और फिर उनकी विराट बुद्धि का कैसा व्यापार! बूझ पाए कुछ जितेन बाबू? सप्तर्षि देखिए, ध्रुव के चारों ओर घूमते हैं। रात-दिन घूमने से four right angles (चार समकोण) तैयार करते हैं।''

श्री म कुछ काल चुप रहे। फिर पहले वाली बात आरम्भ कर दी।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— अवतार आकर सब सरल कर देते हैं। क्राइस्ट ने कहा था, 'Ask, and it shall be given to you; seek and ye shall find; knock, and it shall be opened unto you.' (St. Matthew 7:7) आन्तरिक व्याकुल होकर उन्हें कहो, अनलस होकर चेष्टा करो, वे निश्चय मनोकामना पूर्ण करेंगे— दर्शन देंगे। क्राइस्ट ने यही सहज पथ— प्रार्थना का पथ, दिखाया था। अब ठाकुर ने आकर भी यही बात कही, 'आन्तरिक उन्हें कहो, वे सब कर देंगे। तुम्हें कुछ भी भावना करनी होगी नहीं।' क्राइस्ट थे निरक्षर, ठाकुर भी प्रायः वैसे ही। क्राइस्ट के सम्बन्ध

में बड़े-बड़े doctors of Theology (धर्मशास्त्रविद् पण्डितगण) सविस्मय कहते, 'Is not this the carpenter's son? Whence then hath this man all these things? Never man spake like this man, for he taught them as one having authority.' (यह क्या बढ़ई (सूत्रधर) जोसेफ का पुत्र? निरक्षर होकर इतना ज्ञान कहाँ से आया? हमने तो ऐसे गम्भीर ज्ञान की बात कहीं भी सुनी नहीं।) तब उनकी वयस् थी बारह वर्ष मात्र! ठाकुर के पास भी बड़े-बड़े पण्डितगण केंचुआ हुए रहते। दिग्विजयी लोग हाथ जोड़े बैठे रहते। अवतार जब बातें करते हैं, तब जगत् स्तम्भित हो जाता है।

(4)

श्री म क्या सोच रहे हैं; पुनः बातें करते हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— 'ब्रह्म' बृह् धातु से हुआ है, अर्थात् बड़ी वस्तु। 'जन्माद्यस्य यतः' कहा है। जिससे जगत् की सृष्टि-स्थिति-विनाश होता है, उसका नाम ब्रह्म। वे ही सब करते हैं और फिर सब समेट लेते हैं। उनमें से ही आता है और उनमें ही चला जाता है। वे कर्म को उठा कर रख देते हैं—मकड़ीवत्। जाला बुनते हैं और फिर सब सूत्र समेट लेते हैं कल्पान्ते। और फिर बुनते हैं। यही चलता है नित्य। इसका विराम नहीं। नूतन सृष्टि जब आरम्भ करते हैं, तब सब को co-operation (सहयोग) करने के लिए बुलाते हैं। शुकदेव समाधिमग्न; उन्हें पुकार कर ले आए— भागवत अर्थात् उनकी कथा जगत् को सुनानी होगी। यहाँ noncooperation (असहयोग) नहीं। उनके कार्य में सब को ही co-operate (सहयोग) करना पड़ता है। लीला का संगी होना पड़ता है। नूतन संसार बसाते समय सब को ही कर्म करना पड़ता है।

''कर्म और है क्या? देह धारण करने का नाम ही कर्म। देह माने कर्म। काम, क्रोधादि ये सब क्या हैं? ये समस्त ही तो कर्म में प्रवृत्त कराते हैं। समाधि है जीव की normal state (सहज अवस्था)। कर्म है उसके

विपरीत। समाधि और कर्म two extremes (दो विरुद्ध अवस्थाएँ)।''

बड़े जितेन— जी, कर्म किस प्रकार कम किए जाते हैं? दिन-दिन ये तो बढ़ते ही जाते हैं।

श्री म— डॉक्टर की बात सुनना। ठाकुर की बात पालन करना। वे कहा करते : गृहस्थ की बहू। उसे बच्चा पेट पड़ा— छटा मास। तब सास अनेक कर्म कम कर देती है। सातवाँ मास, और एकटुक कम हुआ। आठवाँ, नौवाँ, मास, प्राय: सारा ही कम हो गया। दसवाँ मास, सम्पूर्ण त्याग। पेट से जब बच्चा बाहर आ गया, तब उसे ही लेकर खेलती है। एक दिशा में जितना आगे बढ़ेगा, अन्य दिशा से उतना ही पिछड़ जाएगा। उनकी ओर बढ़ते ही कर्म का क्रमश: त्याग हो जाता है। और फिर समाधि में एकदम त्याग— सम्पूर्ण त्याग। तत्पश्चात् कुछ कर्म रह जाते हैं केवल देह-धारण के लिए— जैसे स्नान, आहार, शौच, निद्रा। और कुछ रहते हैं लोकशिक्षा-जन्य— जैसे ज्ञान, भक्ति, उनका नाम-गुण कीर्त्तन इत्यादि। विवेकचूड़ामणि में सुन्दर एक दृष्टान्त है, ईश्वर-दर्शन पर किस रूप में कर्म रहता है। एक पाँच वर्ष का शिशु सो गया। माँ को राँधने में देरी हो गई। निद्रित शिशु को माँ अंक में लेकर खिला रही है। शिशु हाथ-पाँव छुड़ाता है; किन्तु माँ छोड़ती नहीं। फिर मुख में आहार देती है, लेता नहीं। फिर जोर करके ठूँस देती है। तब क्या करे, धक्के से अनासक्त होकर खाता है। समाधि के पश्चात् कर्म का यही रूप है— निजी कर्त्तव्य रहता नहीं, सम्पूर्ण अनासक्त होकर कर्म करता है। और एक प्रकार का कर्म है साधन की अवस्था में, वह करना ही चाहिए— निष्काम कर्म। गुरु के शरणागत होने पर वे कर्म के भीतर रखकर ही कर्मत्याग करवा लेते हैं। अनासक्त कर्म करवा लेते हैं। अनासक्त कर्म करते-करते कर्मक्षय हो जाता है। तब नूतन कर्म में और जड़ित होने देते नहीं। जब तक प्रारब्ध क्षय न हो, तब तक निष्काम भाव में कर्म कराते हैं प्रकृति क्षय के लिए, भगवान के लिए— स्वर्गलाभ के लिए नहीं।

''ईश्वर अब नर रूप में अवतीर्ण हुए हैं। उन्होंने सद्गुरु रूप में भक्तों के कर्म कम कर दिए हैं। वे जानते हैं किस हाण्डी में क्या है। जिसकी जैसी प्रकृति उसको वैसे ही कर्म में नियुक्त कर दिया है भोगान्त के लिए। अनासक्त

भाव से सब करवाए लिए जा रहे हैं जिससे कि उनके लिए व्याकुलता हो जाए अन्त में। अब जिनका होगा नहीं, समझना होगा उनका कपाल मन्द है। बड़ा chance (सुयोग), सब 'टाटका'।

''पहले के गुरु क्यों एक-एक शिष्य को एक-एक रकम उपदेश दिया करते?— प्रकृति भिन्न, तभी तो। एकजन को कहते, तुम संन्यास लो और एकजन को कहते, तुम ब्रह्मचारी होकर रहो कुछ दिन। एक को कहते, तुम कुछ काल तीर्थ-पर्यटन करो। एक को कहते, तुम मेरे पास रहकर सेवा करो। और एक को कहते, तुम जाकर संसार करो। भिन्न-भिन्न प्रकृति, तभी भिन्न-भिन्न पथ। गन्तव्य एक— ईश्वर। गुरु की बात पर विश्वास होने से बच गया। उनका शरणागत होने पर वे स्वयं हाथ पकड़कर कर्म करवाते हैं। अन्त में एकदम कर्मत्याग करवा लेते हैं। कर्मत्याग होने पर फिर शब्द नहीं। मधुमक्खी भन्-भन् कर रही थी। ज्यों ही फूल पर बैठी, और शब्द नहीं— मधुपाने मत्त। जब तक भगवान-दर्शन न हो, तब तक कर्म; दर्शन होने पर सब चुप।''

बड़े जितेन— भगवान ने गुरु रूप में आकर कर्म-संक्षेप का पथ दिखा दिया— सत्य, किन्तु प्रारब्ध कर्म क्या सारे ही भोग करने होंगे?

श्री म— उनकी इच्छा से सब सम्भव हो सकता है। उनके शरणागत होने पर सब हो सकता है। प्रारब्ध भी नाश हो जाता है उनकी इच्छा से। वह यदि न कर सकें, तो सर्वशक्तिमान कैसे? किन्तु शरणागत होना चाहिए। वाल्मीकि, विश्वामित्र के प्रारब्ध नाश हुए थे। सब उनकी इच्छा से होता है। General rule and special rule (नियम और व्यतिक्रम) दोनों ही हैं। General rule (साधारण नियम) है प्रारब्ध-भोग। Special law (व्यतिक्रम) है उनकी इच्छा, उनकी कृपा। *(जगबन्धु के प्रति)* King's prerogative (राज-अनुज्ञा) है ना? जिनके इंगित से यह विचित्र जगत् चलता है, वे क्या इच्छा करने से भक्त का सब माफ़ नहीं कर सकते? ठाकुर रामप्रसाद का गाना गाकर यही बात कहा करते, 'कपाले लिखेछे विधि ताई बोलोबान जदि, तबे ओ मा तोर दुर्गा नाम के नेबे?' (विधि ने जो कपाल में लिख दिया है, यदि वही होगा, तो माँ, तेरा दुर्गा नाम कौन लेगा?) Exception

proves the rule (व्यतिक्रम ही नियम का प्रमाण है)।

यं यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि।
तं ब्रह्माणम् तमृषिं तं सुमेधाम्॥ (चण्डी, देवी सूक्त)

''देखिए, वेद कहता है, उनकी इच्छा से ब्रह्मपद, ऋषित्व लाभ हो जाता है। ठाकुर कभी–कभी नृत्य करते–करते एक गाना गाया करते।''

श्री म भावोन्मत्त होकर गाने लगे—

''आमि दुर्गा दुर्गा दुर्गा बोले मा जदि मरि।
आखेरे ए दीने, ना तारो केमने, जाना जाबे गो शंकरी।
नाशि गो ब्राह्मण, हत्या करि भ्रूण, सुरापान आदि विनाशी नारी।
ऐ सब पातक, ना भाबि तिलेक, ब्रह्मपद निते पारि।
आमि दुर्गा दुर्गा दुर्गा बोले मा जदि मरि।''

[दुर्गा दुर्गा दुर्गा अगर जपूँ मैं जब मेरे निकलेंगे प्राण।
देखूँ कैसे नहीं तारती माँ मेरी करुणा की खान॥
गो ब्राह्मण की हत्या करके, करके भी मदिरा का पान।
जरा नहीं परवाह पापों की, लूँगा निश्चय पद निर्वाण॥] —'निराला'

कोलकता; 11 मई, 1923 ईसवी, शुक्रवार।
28 वैशाख, 1330 (बंगला) साल, कृष्णा एकादशी।

तृतीय अध्याय

सरल जीवन यात्रा, धर्म जीवन की सहाय

(1)

आज शनिवार। अपराह्ण। इसी दिन बहुभक्त-समागम हुआ करता है। इसी बीच इटाली (कोलकता का एक लोकालय) से एक दल भक्त आए हैं। भाटपाड़ा के ललित, शुकलाल, डॉक्टर, शान्ति, जगबन्धु, राखाल, बड़े अमूल्य, योगेन आए हैं। अल्पक्षण मध्य ही रमेश ब्रह्मचारी और विनय तथा छोटे जितेन ने प्रवेश किया। श्री म भूमि पर बैठे भक्तों से कुशल-प्रश्न कर रहे हैं। इसी मध्य कथामृत का 'आगरपाड़ा का लड़का' आ उपस्थित हुए। आशुबाबू, अब वह 'लड़का' नहीं, वृद्ध हैं। श्री म परम समादर से उनको पास में बैठाकर आनन्द से बातचीत करने लगे। श्री म की इच्छा से भक्तगण गाना गाने लगे। अब साढ़े छः।

गाना— एशेछे नूतन मानुष देखबि जदि आय चले।
ओ ताँर विवेक आर वैराग्य झूलि, दूई काँधे सदाई झूले॥

[एक नूतन मनुष्य आया है। चलो, यदि तुम देखना चाहो। अरे, उनके दोनों कन्धों पर विवेक और वैराग्य की झोलियाँ सदा ही झूलती रहती हैं।]

रमेश ब्रह्मचारी गा रहे हैं :

गाओ रे जय जय राम कृष्ण नाम।

सब गा रहे हैं—

जय रामकृष्ण रामकृष्ण बोलो रे आमार मन।
युग अवतार जिनि पूर्ण-ब्रह्म नारायण॥

गाना समाप्त होने पर श्री म के आदेश से बड़े अमूल्य ने ठाकुर की जीवनी से 'साधन-समय' का कुछ अंश पाठ किया। अब श्री म बातें करने लगे।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर बतलाते, सकल पथों द्वारा ही जाकर देखा है। अब जहाँ पर हूँ, यही सबसे अच्छा है। सा, रे, गा, मा, पा, धा, नि— 'नि' पर अधिक क्षण ठहरा जाता नहीं। कुछ नीचे ठहरना भला। 'नि' पर है ब्रह्मज्ञानी की अवस्था। भक्ति-भक्त— ये सुन्दर। समाधि की अवस्था में अधिक क्षण ठहरा जाता नहीं। और भी अनेक बहुत से मत हैं— सहजिया, घोषपाड़ा, कर्त्ताभजा और भी कितने क्या-क्या! किन्तु यह पथ ही भला, शुद्ध पथ। उन सब पथों से भी दो-एक जनों को हुआ है। वे बड़े गन्दे पथ। बाड़ी में सदर-द्वार से भी ढुका जाता है और फिर पाखाने के रास्ते से भी जाया जाता है। ये सारे पथ, जैसे पाखाने का रास्ता। मेरा है मातृभाव। किसी-किसी ने प्रकृति-भाव में रमण द्वारा तुष्ट किया है, किन्तु वह गन्दा पथ है। मेरे पास केवल मातृयोनि।

''वे न आते तो यह कथा कौन सुनाता हमें? कौन यह पार्थक्य पकड़वाता? किसकी है ऐसी बहुमुखी दृष्टि? सौभाग्य से हम इसी समय आए। तभी ये अमूल्य कथा सुन सके। वे न आते तो जगत् के धर्म-द्वन्द्व ही भला कौन मिटाता? सब ही अपने-अपने धर्म को बड़ा बताते हैं। उन्होंने बतलाया, 'सब धर्म सत्य। मैंने निज साधन करके देखा है। सब धर्म ही हैं एक-एक मार्ग विशेष। अन्त में सब ईश्वर में जाकर मिलते हैं।' तभी तो इस गाने में कहा है :

'एकुआ, वॉटर, पानी, वारि नाम दिया एक ही जल को।
अल्ला, गॉड, ईसा, मूसा, काली नाम-भेद से बोलें॥'

''यह धर्म-समन्वय उनके आने से ही हुआ। निज जीवन में साधन करके देखा— सब सत्य, जभी कही यह बात।

''किन्तु उनके आने का प्रधान उद्देश्य है, भक्तों को उठाना। वे इतने जड़ित हो जाते हैं कि उन्हें आना ही पड़ता है उन्हें उठाने। सब के लिए ही

उन्हें भावना, किन्तु भक्तों के लिए भावना है अधिक। कारण, भक्तों को देखकर तो लोग सीखेंगे, उन्हें पुकारेंगे। तभी तो शान्ति। दक्षिणेश्वर में एक दिन सब भक्तगण बैठे थे। छोकरे भक्त ही थे अनेक। तेजचन्द्र को कहा, 'अरे, तेरे लिए ही है जितनी भी भावना— जिन्होंने विवाह कर डाला है। एक तो स्वयं ही 'हाबुडुबु' कर रहा है, गोते खा रहा है, उस पर फिर और भी कितने (स्त्री-पुत्रादि) गर्दन पर लदे बैठे हैं।' देखिए, भगवान कितना भावते हैं, जिन्होंने विवाह कर डाला है उनके लिए। उनका case (अवस्था) complicated (जटिल) है कि ना, जभी इतनी चिन्ता। एक तो अपने लिए ही पथ पाता नहीं, उस पर कितनों के कच्चे मनों को समझाना पड़ता है, चलाना पड़ता है, जिनका कोई भी साधन नहीं, भजन नहीं। जो अटक गए हैं संसार में, उनके लिए ही है उनको चिन्ता अधिक।''

बड़े जितेन— 'आमि ओई खेदे खेद करि,
तुमि माता थाकते आमार जागा घरे चुरि।'

[मुझे यही सबसे बड़ा खेद है कि हे माता, तुम्हारे रहते मेरे जाग्रत घर में चोरी हो रही है।]

श्री म *(उत्तेजित भावे, बाधा देकर)*— ठाकुर कहा करते, ऐसे गाने क्यों बार-बार? एक-आध बार होने से ही तो हुआ। आनन्द का गाना गाओ— उनका नाम, रूप, लीला यही सब। जैसे,

'बाजिलो श्यामेर बांसरी जमुनाय, तोरा के के जाबि आय।'

[यमुना पर श्याम की बंसी बज रही है, तुम कौन-कौन चलोगे, आओ चलें।]

''दु:ख-कष्ट, ये तो संसार में रहने से होंगे ही। देह धारण करने पर दु:ख है अनिवार्य। यह सुख-दु:ख द्वन्द्व उन्होंने ही किया है। तभी तो लोगों को चैतन्य होगा। अनन्त जीवन हैं उनके संसार में। मनुष्य भी हैं उनमें एक। क्यों यह मनुष्य किया है? इसीलिए न कि उन्हें पुकारेगा। दु:ख-कष्ट का आघात पाकर चैतन्य होने पर तब उन्हें पुकारेगा— तभी शान्ति। जभी आनन्द के गीत गाने के लिए कहा करते।

बड़े जितेन *(विनीत भावे)*— रामप्रसाद ने क्यों तब ये दु:ख-कष्ट के

गीत गाए?

श्री म— रामप्रसाद ने क्या केवल अपने दुःख को गीतों में प्रकाश किया है? वे हैं type of man, आदर्श मनुष्य। Humanity (मनुष्य जाति) के दुःख-कष्ट की बात कही है ऐसे गीतों में। He is a representative man. (वे हैं मनुष्य-समाज के प्रतिनिधि) और फिर देखिए, इन दुःख-कष्ट के गीतों के परे ही कहते हैं,

'आय मन बेड़ाते जाबि, काली कल्पतरुमूले।'

[आओ मन, घूमने चलें; काली-कल्पतरु के तले।]

''दुःख-दुःख कहने से दुःख जाएगा नहीं। उनका नाम लेने से, उनकी वाणी चिन्तन करने से, उनका दर्शन होने से तब सब दुःख दूर होते हैं। जभी तो दुःख-कष्ट के गीत न गाकर, उनके नाम, रूप, लीला के गीत, आनन्द के गीत गाने चाहिएँ। रोग-रोग कहते रहने से रोग हटेगा नहीं। डॉक्टर की बात सुननी होगी, दवा लाकर खानी होगी, तब आरोग्य-लाभ होगा। दुःख-कष्ट तो है भवरोग। इन्हें हटाना हो तो उनका नाम गुणगान चाहिए। सुख के गीत गाने चाहिएँ। जिस सुख के संग दुःख जड़ित नहीं, उसी सुख के गीत दरकार— उसी सुख-शान्ति-आनन्द के गीत गाने चाहिएँ। तब भवरोग की निवृत्ति होगी, त्रिताप ज्वाला की शान्ति होगी। जभी तो ठाकुर सर्वदा आनन्द के गीत गाया करते थे। जैसे, 'मा गो आनन्दमयी, निरानन्द करो ना।' (ओ माँ, तुम आनन्दमयी होकर मुझे निरानन्द मत करो।) हमें भी जभी सर्वदा आनन्द के गीत गाना उचित।

''एक बार ठाकुर गए सिन्दुरिया पट्टी— मणिमल्लिक की बाड़ी। वहाँ ब्राह्मसमाज का वार्षिक उत्सव हो रहा था। विजयकृष्ण गोस्वामी ने sermon (वक्तृता) दी। फिर ठाकुर से जिज्ञासा की, 'कैसा हुआ?' ठाकुर ने कहा, 'सुन्दर! किन्तु तुम इतना 'पापी-पापी' क्यों करते हो? वरन् कहो कि मैं उनका नाम लेता हूँ, मुझे फिर पाप!' और एक दिन एकजन (केशवसेन) को कहा था, 'तुम उनके ऐश्वर्य की बातें इतनी क्यों करते हो— हे प्रभु, तुमने सूर्य किया, तुमने चन्द्र किया, तुमने यह किया, वह किया। इतना बोलने की दरकार क्या?' 'पाप, पाप, पापी, पापी' कहते-कहते वही हो जाता है, वे

कहा करते। हमें कहना उचित, मैं उनका नाम लेता हूँ, मुझे फिर पाप! नाम-यज्ञ, नाम-माहात्म्य भी तो है। एक बार जब उनका नाम ले लिया है, तब सब पाप दूर हो गए हैं, यह विश्वास चाहिए। चैतन्यदेव दक्षिण में रामेश्वर गए थे। मार्ग में गोदावरी तट पर राय रामानन्द के संग मेल हुआ। तब उनको कहा : आपके संग साक्षात् होने से बड़ा ही आनन्द हुआ। और फिर जब पुरी लौटूँगा, तब आपके संग नाम-महोत्सव करते हुए आनन्द करता जाऊँगा। भगवान का नाम करना ही श्रेष्ठ महोत्सव। जभी वैष्णवगण सुन्दर कहते हैं,

एक बार हरिनामे जतो पाप हरे,
जीवेर कि साध्य आछे ततो पाप करे।

[एक बार हरिनाम से जितने पाप कटते हैं, जीव में कहाँ शक्ति कि जो उतने पाप कर सके!]

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— उस देश (पश्चिम) में भी वही एक बात— पाप, पापी। 'And thou shalt be cast into furnace of fire' (hell)—अनन्त नरक में तुम्हारी गति होगी, यदि पाप करोगे। पुण्य करोगे तो redemption, मुक्ति होगी। भोग का देश कि ना, जभी खाली ऐसी ही सब बातें। वहाँ (मिहिजाम में) शेक्सपीयर की एक पुस्तक पड़ गई थी हाथ में। बहुकाल पीछे, फिर पन्ने पलट कर देखा। इतना बड़ा कवि और dramatist (नाट्यकार), किन्तु कहीं भी एक बात भी प्रेम की— gospel of love की, नहीं कही। केवल sin, punishment, hell-fire और redemption— पाप, दण्ड, नरक और मुक्ति; ऐसी ही सारी बातें। भोगी हैं कि ना वे; तभी punishment, punishment (दण्ड, दण्ड) करते हैं। 'प्रेम' यह वस्तु ही इस देश की। इतनी बड़ी पुस्तक, एक लाइन भी खोजकर नहीं पा सका कि जहाँ पर प्रेम की बात हो। किन्तु यीशु (क्राइस्ट) वह जानते थे, शिक्षा भी दी थी Gospel of love (प्रेम) की। Jesus knew what was in man— यीशु मनुष्य के हृदयविहारी प्रेममय भगवान को देख पाए थे। उनके कितने ही भक्त, स्त्री-पुरुष भी इस प्रेममय को जानते थे। उन्होंने समझ लिया था इस प्रेममय को प्यार करना ही है धर्म। ठाकुर ने भी जभी कहा, बात तो केवल एक ही है 'सच्चिदानन्दे प्रेम।' किन्तु वे भोगी, जभी उसे

ग्रहण कर सके नहीं। इस देश का keynote (मूलमन्त्र) है 'भोग त्याग करो।' और उस देश का है 'भोग करो'। अत: प्रत्येक कार्य में जो भोग में हैं वे punishment (दण्ड) का भय करते हैं। और जो उसे (भोग को) चाहते ही नहीं, वे किसका भय करेंगे? इसी war (प्रथम विश्वयुद्ध) में उस देश के कितने ही श्रेष्ठ व्यक्ति समझ गए हैं, भोग है कितना भयंकर! जभी वे India (भारत) की ओर ताक रहे हैं। देखते हैं कि ना, इन्होंने (भारतीयों ने) ही problem of life (जीवन-समस्या) solve (समाधान) की है भली प्रकार।

''शेक्सपीयर समझे नहीं Gospel of love (प्रेम) है क्या। किन्तु कालिदास ने समझ लिया था। उनके नाटक पढ़कर देखो, सब highest ideal (भगवान) को लेकर लिखे गए हैं। किन्तु मैक्समूलर ने समझ लिया था, प्रेम क्या है। 'हिबर्ट लैक्चरज़' में धर्म की definition (परिभाषा) देते हुए उन्होंने एक-एक करके सब धर्मों को examine (परीक्षण) किया है। अन्त में चैतन्यदेव की बात सार रूप में ली है। चैतन्यदेव ने धर्म की definition (परिभाषा) की है— जिससे भगवान में प्रेम होता है वही धर्म है। मैक्समूलर comparative religions (विभिन्न धर्मों की समालोचना) के authority (सुयोग्य अधिकारी) हैं। उन्होंने समझा है चैतन्यदेव को। फिर ये तो इस देश के ही लोग हैं ना।

''जब तक भोग में रहते हैं, तब तक उनसे प्यार नहीं होता। भोगान्ते उनके लिए व्याकुलता होती है। तब उन्हें प्यार करने की इच्छा होती है। इसका ही नाम है प्रेम।''

(2)

बड़े जितेन *(श्री म के प्रति)*— इस बार आपने वहाँ (मिहिजाम) से message (सम्वाद) भेजा था, simple life lead (सरल जीवन यापन) करने के लिए। वह न होने से धर्म होगा नहीं।

श्री म— कैसे होगा? दिन-रात ही यदि अन्य चिन्तन रहेगा तो फिर

उनसे प्रेम होगा कैसे? जभी अन्य चिन्तन जितना भी कम किया जाए, उतना ही भला। आहार-विहार में ही सब समय चला जाए तो उनका चिन्तन होगा कब? जभी simple life (अनाडम्बर जीवन) दरकार। अध्यात्म-चिन्तन में जो भारत जगत् का मुकुटमणि है, इसके मूल में यही बात थी— plain living and high thinking (सरल जीवन, उन्नत मनन)। ऋषियों का जीवन अति सरल था। जभी वे ईश्वर-चिन्तन में समस्त समय अतिवाहित कर सकते थे। मन तो एक ही, उसे जिधर दो, उधर ही जाएगा। और संथालों को देखा, यही शरीर। सारा दिन पत्थर तोड़ते हैं, क्या परिश्रम! किसी को पूछता, क्या खाया। कहता, जी खाली भात। कोई कदाचित् कहता, माड़ वाला भात। कोई अथवा सीमभात। दाल जिस दिन हुई, उस दिन खूब हुआ। कैसा strong-built (दृढ़) शरीर। शहरी बाबू लोगों को यह चाहिए, वह चाहिए। एक चीज कम हुई कि महाविपद्, हताश पड़ गया। एक दिन भला खाना हुआ नहीं, बस रोना। बचपन से पाँच चीजों से खाने का अभ्यास हो गया है। अब कम होते ही पूर्ण अन्धकार। इतने सब कुछ— पाँच प्रकार की दरकार क्या? वैसे तो समय होता नहीं। बाल-बच्चों के लिए सारा दिन परिश्रम करना पड़ता है। और फिर खाना लेकर व्यस्त होने से समय होगा कहाँ से? केवल दाल और भात— कैसा सुन्दर! उसे यदि फिर भगवान को निवेदन कर दिया जाए तो और भी बढ़िया। भात चढ़ा दिया *(जप का अभिनय करते हुए)* जप करो; दाल, जप करो। इस भाव में रहने से सर्वदा योग में रहा जाता है। नहीं तो योगभ्रष्ट हो जाता है। पकाते, खाते, हर समय ही उनको स्मरण करना चाहिए।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ (गीता 9:27)

"आहार, यज्ञ, दान, व्रत, तपस्या जो कुछ करो, सब मेरे उद्देश्य से करो। उससे सर्वदा योग में रहोगे। कर्मबन्धन में पड़ना नहीं पड़ेगा। गीता में भगवान ने कही है यह बात।

"क्या दरकार इतनी— पाँच प्रकार? नरेन्द्र के पिता एटोर्नी थे— हठात् मर गए। उन्हें अन्न-वस्त्र का बड़ा कष्ट हुआ। नरेन्द्र ने एक दिन ठाकुर

से कहा, 'अपनी माँ (जगन्माता) से कहो, जिससे हमारा कष्ट चला जाए।' कई दिन पश्चात् नरेन्द्र ने पूछा, कहा था या नहीं। ठाकुर ने उत्तर दिया, 'हाँ कहा है; यदि दाल-भात हो तो हो जाएगा। इतना तक हो सकता है।' इसके माने क्या? ईश्वर जिन्हें प्यार करते हैं, उन्हें फिर इन सब नाना wants (अभावों) के भीतर रखते नहीं। उनके लिए दाल-भात पहले से ही जुटा रखते हैं। यह व्यवस्था जो ईश्वर को चाहते हैं, उनके लिए है। किन्तु जो भोग चाहते हैं, उनके लिए अन्य रूप है। देखिए ना, ये संसारी जन व्यर्थ में ही खाना-पीना लेकर सब समय काट देते हैं। इससे उनको पुकारने का समय होगा कब? और फिर पाँच जनों के मध्य रहते हैं। उनके मनों को भी उन्हें ही समझाना पड़ेगा। उनके लिए responsible (उत्तरदायी) भी वे स्वयं ही। स्त्री-पुत्र पाँच जन, उनका मन जोहना और फिर निज का खाना लेकर रहने पर समय कहाँ? संसारी जान बूझकर ही तो यह भार लेता है। संसार में रहने से ही स्त्री-पुत्र होंगे। स्वयं भी तो फिर क्या 'खाना-खाना' करके पागल होना होगा? 'Killing the soul for a mess of pottage?'— खाना-पीना लेकर पागल होना और ईश्वर में मन न देना, इसको ही 'killing the soul' (आत्महत्या) कहा गया है।

"*(सहास्य)* मैं कई दिन जामताड़ा आश्रम में था। एकजन को देखा, साधुओं की खाट बुन रहा है। मैंने कहा, 'तुम अच्छे हो, साधु-सेवा कर रहे हो।' वह कहने लगा, 'न महाशय, वे ही तेल-वेल कितना कुछ देंगे और खाने को भी देंगे।' मेरे मन में तभी याद हो आई सीता-हरण के समय की श्रृगाल कथा। राम-लक्ष्मण सीता को खोज रहे हैं। रास्ते में एक श्रृगाल के संग साक्षात् हुआ। सीता का वह कोई सन्धान बता सकता है कि नहीं, उन्होंने यह बात पूछी। श्रृगाल ने कहा, 'न महाशय, मुझे तो आहार लेकर ही सर्वदा व्यस्त रहना पड़ता है। यह सब देखने का समय नहीं।' *(सबका हास्य)*। संसारियों की यही अवस्था है। आहार ही आहार, और बीच-बीच में देह-सुख।"

बड़े अमूल्य— सब ही यदि life (जीवन) ऐसा simple (सरल) कर डालें तो फिर देश की economic condition (अर्थ-व्यवस्था) जो

खराब हो जाएगी।

श्री म— हाँ जी, हाँ। संन्यास की बात कहते ही लोग यही बात कहते हैं। कहते हैं— हाँ महाशय, यदि सब संन्यासी हो जाएँ तो संसार रहेगा कैसे? उनकी ऐसी बातें कौन सुनता है? कहते ही हो गया? सुनते हैं कितने लोग? कितना तो कहा गया है, किन्तु कौन सुनता है? प्रकृति में हो तभी तो होगा— 'प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति' (गीता 18:59) *(अमूल्य के प्रति)* उस विषय में आपको सोचना होगा नहीं। 'न नौ मन घी जलेगा, न राधा नाचेगी।' यह बात ही समझाने के लिए भगवान को मानव-देह धारण करके आना पड़ता है। तो भी क्या लोग सुनते हैं? उनके आने से व्याकुलता आती है संग-संग। जिनका भोगान्त हो गया है, वे ही आते हैं उनके पास; और उनकी बात सुनकर पालन करने की चेष्टा करते हैं। अवतार के आने से पूर्व लोग सब भोग में, अज्ञान में डूबे रहते हैं। वे आकर बतलाते हैं, इससे ऊपर और भी भली वस्तु है— eternal life (अमृतत्वम्)। तब भी किसी-किसी को ही चैतन्य होता है। धर्म की ग्लानि अवश्यम्भावी। अज्ञानता में जब पूर्ण हो जाता है, तब ही वे आते हैं। उनकी creation (सृष्टि) की scheme (परिकल्पना) ही ऐसी है कि इसमें ग्लानि और अज्ञानता को आना ही होगा। वह न हो तो नूतन करके आना हो सकेगा नहीं। आकर कहते हैं, 'भोग त्याग करके मेरी शरण लो'। यही है ठाकुर का, श्री भगवान का, latest message (अन्तिम सन्देश)। ठाकुर ने कहा, 'ईश्वर को छोड़ ऐसा और कोई नहीं है जो यह भवसमुद्र पार करा सकता है।' जभी तो कहा था— गुरु, जो मन्त्र देते हैं, उन्हें साक्षात् ईश्वर जानना चाहिए। गुरु में मनुष्य-बुद्धि होने से कुछ भी होगा नहीं। मन में सोचना चाहिए, वे ही सच्चिदानन्द इनके मुख से मन्त्र दे रहे हैं। जभी कहा करते, 'कथाटा होच्छे एइ, सच्चिदानन्दे प्रेम।' (बात तो यही है, सच्चिदानन्द में प्रेम।) उन्हें ही केवल प्यार करना चाहिए।

बड़े जितेन *(हताश भावे)*— Thy Will be done (प्रभु, तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो)।

श्री म— ठाकुर के सामने एक हाईकोर्ट के वकील ने यही बात कही थी। वे तो किसी के मुख की ओर देखकर बात कहते थे नहीं, खुश करने के

लिए। तत्क्षण उत्तर दिया, 'तुम चौधराई मत करो। केवल मुख से बोलने से क्या होगा? आन्तरिक प्रार्थना करो। मुख से शब्द उच्चारण न करके प्रार्थना करनी चाहिए। न कर सको, अभ्यास करो।' और भी कहा, 'किसी को पेट में भूख लगी है, अब मुख से न बोले तो फिर क्या भूख नहीं लगी?' उनसे प्रार्थना करनी चाहिए अन्तर से।

एकजन भक्त ने कमरे में प्रवेश किया।

श्री म *(नवागत के प्रति)*— समझे, simple life (अनाडम्बर जीवन) न हो तो धर्मजीवन होता नहीं। तभी तो गान्धी महाराज की बात उस देश (पाश्चात्य) के better minds (श्रेष्ठ व्यक्तियों) ने ली है। उन्होंने जान लिया है कि इस देश के इन्हीं ने problem solve (समस्या का समाधान) किया है। Simple life lead (सरल जीवन यापन) से किसी की इतनी गुलामी करनी नहीं पड़ती पेट के लिए। स्त्री-पुत्र के लिए इतनी चिन्ता होती नहीं। Life simple (सरल जीवन-यात्रा) हुई तो अनेक अग्रसर हो गया। गान्धी महाराज ने तो कहा है, पर लेते हैं कितने लोग?

(3)

रात्रि नौ। अमहर्स्ट स्ट्रीट से एक सुवृहत् वर-यात्रा की शोभायात्रा (बारात) दक्षिण की ओर जा रही है।

वाद्ययन्त्रों के विविध मधुर शब्द से चतुर्दिक् मुखरित हो उठा, और सहस्र आलोकमालाओं से दिक्मण्डल उद्भासित हो गया। श्री म ने भक्तों में से किसी-किसी को वह देखने भेज दिया। वर राजवेश में विचित्र आलोकमाला तथा पत्रपुष्पों से सुशोभित मयूर-यान में बैठे हैं। भक्तगण दर्शन करके लौट आए।

श्री म *(सब के प्रति)*— यह देखिए, उनके ही विधान से ये जा रहे हैं संसार में प्रवेश करने। तभी तो सृष्टि रहेगी। इधर फिर कहते हैं संसार ज्वलन्त अनल। केवल पक्के खिलाड़ी होने पर ही अपने को थोड़ा बचा कर चल सकता है। उसके लिए शिक्षा चाहिए। कहते, कुछ दिन सत्संग करके,

निर्जने उनको पुकार कर, भक्ति-लाभ करके, संसार में जाने से उतना भय रहता नहीं। भक्ति प्राप्त न होने से सत्-असत् विचार न जन्मने से, मुश्किल। और फिर इसके बीच से ही किसी-किसी को खैंचकर बाहर निकाल कर ले जाते हैं। सृष्टि के काज में उनको लगाते नहीं, परमानन्द के भागी करते हैं। ठाकुर कहा करते थे कि ना, 'जिसने स्त्री-सुख छोड़ा है, उसने जगत्-सुख छोड़ा है। तब ही वह परम सुख, परमानन्द का उत्तराधिकारी होता है।' अर्थात् इच्छा करने से ईश्वर-लाभ कर सकता है। यह संसार का आनन्द भी उनका ही आनन्द है। किन्तु है स्वल्पानन्द, आज है कल नहीं, क्षणस्थायी। जो उनके लिए इस आनन्द को छोड़ देता है, वह ही परमानन्द, ब्रह्मानन्द का अधिकारी है। *(एक अविवाहित भक्त के प्रति)* कौन-सा? विषय सुख कि परम सुख? आप हैं परमसुख के अधिकारी।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— मिहिजाम में दो विवाह देखे। एक में वर जाता है विवाह करने, सामान्य बाजा। पुरोहित नहीं। कहने लगे, फूफा या मामा वर-कन्या का हाथ मिला देता है। और एक देखा था, कन्या जाती है विवाह करने। एकजन की स्त्री की मृत्यु होने पर बड़ी बहन से कहा, 'अजी; तुम मेरा विवाह कर दो। मैं चाहे केवल चटाई पर ही रहूँ, वही ठीक। तो भी विवाह कर दो।' यह विचित्र संसार है! कोई पकड़ता है, कोई छोड़ता है। उनके पास प्रार्थना करके व्याकुल होकर रो-रोकर कहने से, उनके शरणागत होने से, वे ही फिर इसके ही भीतर सब सुविधा कर देते हैं। इस कीचड़ के भीतर ही पद्मफूल खिलता है।

कोलकता; 12 मई, 1923 ईसवी, शनिवार।
29 वैशाख, 1330 (बंगला) साल, कृष्णा द्वादशी।

चतुर्थ अध्याय

श्रीरामकृष्ण पूर्णब्रह्म भगवान

(1)

आज रविवार। सारा दिन भक्त समागम हुआ है। मॉर्टन स्कूल का द्वितल-गृह, पचास नम्बर अमहर्स्ट स्ट्रीट। डॉक्टर बक्शी, राखाल, शान्ति, योगेन, रमेश ब्रह्मचारी, छोटे जितेन, जगबन्धु, शुकलाल, मनोरंजन, छोटे नलिनी, तारक, विनय, अमृत, बड़े नलिनी, बड़े ललित, छोटे ललित, और भी अनेक भक्तों से घिरे हुए श्री म फर्श पर चटाई पर बैठे हैं। अब सन्ध्या। दीप आया। श्री म युक्तकर से प्रणाम करके ध्यान करने लगे। ध्यानान्ते कई-एक भजन-संगीत हुए। सबने गाई यह वन्दना 'जय जय रामकृष्ण नाम।' फिर 'ऐशेछे नूतन मानुष देखबि जदि आय चले।' छोटे ललित ने गाया, 'महादेव परम जोगीन महतानन्दे मगन।' पुनराय श्री म की इच्छा से सब ने गाया :

'डमरू हर-करे बाजे बाजे।
त्रिशूलधर-अंग भसम-भूषण, ब्यालमाला गले बिराजे॥
पञ्चवदन पिनाक-धर शिव, वृषभ-वाहन भूतनाथ,
रुण्डमुण्ड गले विराजित अजर अमर दिगम्बर रे॥'*

भजन शेष हुआ। बड़े जितेन इसी बीच आए। छोटे ललित ने धीरे-धीरे उनके कान में कहा, ''जित दा, आज सारा दिन कथा हुई है, आज इन्हें और न बुलवाएँ।'' यह बात श्री म के कान में भी प्रवेश कर गई।

श्री म *(ललित के प्रति)*— नहीं, इतनी कहाँ? सेण्ट जॉन की गॉस्पल के अन्त में लिखा है— उनकी कथाएँ यदि लिखी जाएँ तो संसार में रखी नहीं

---

* 'प्रार्थना ओ सङ्गीत', रामकृष्ण मिशन सारदापीठ, 63; रचयिता : बिहारीलाल दूबे

जाएँगी। कहने से क्या शेष होती है उनकी कथा— तृप्ति होती है? 'And there are also many other things which Jesus did, the which, if they should be written every one, I suppose that even the world itself could not contain the books that should be written'. (St. John 21:25) क्राइस्ट के सम्बन्ध में कही थी वह बात सेन्ट जॉन, उनके प्रेमी भक्त ने। और फिर है (शिव) महिम्नस्तव में, 'असित गिरि समं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे।' आगे क्या? *(भक्त कोई बोलने लगे, श्री म भी संग-संग बोल रहे हैं।)*

सुरतरुवर शाखा लेखनी पत्रमुर्वी॥
लिखति यदि गृहीत्वा सारदा सर्वकालं।
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— हिमालय परिमाण स्याही, समुद्र दवात, कल्पवृक्ष कलम, पृथ्वी पत्र लेकर, लेखक स्वयं सरस्वती अनन्त काल तक भी यदि लिखती रहें, तो भी उनके गुणों की कथा शेष नहीं होगी। देखिए, ऐसा महत् व्यापार उनके कथामृत का! तभी 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।' यही है तनिक भरोसा। अमृतसागर का जल घड़ा-घड़ा पीना या उसे कुशा द्वारा तनिक-सा पीना, बात एक ही है अर्थात् अमर होगा ही। यही है भरोसा। उनकी बातें कहते हुए न तो कष्ट होता है, न आस मिटती है।

''मुझे एक बार असुख हुआ। एक मास भोगा। सत्यशरण चक्रवर्ती डॉक्टर ने घर के लोगों को कहा, 'इन्हें जो अच्छा लगे सुनना वा करना, वही करने दीजिए। तभी शीघ्र ठीक होंगे।' अन्य डॉक्टरों ने मेरा बोलना बन्द कर दिया था। उससे भी एक मास तक ज्वर बन्द हुआ नहीं। किन्तु सत्य बाबू की इस व्यवस्था पर ज्वर भी बन्द हो गया और शीघ्र आराम हो गया। वे भक्त हैं कि ना, जभी समझ सके। जो कथा है प्राण, उसे बोले व सुने बिना नाड़ी ही चलेगी नहीं जो! यह एक डिपार्टमैंट भगवान का। जो यहाँ के लोग वे उनकी बातें न कहें, न सुनें तो रहें क्या लेकर? मर ही जाएँगे। जो पैन्शन लेते हैं उनमें अनेक ही झट से मर जाते हैं। काम में रहते तो शायद और भी कुछ दिन बचे रहते। जभी तो अनेक लोग पैन्शन पाकर भी नौकरी खोजते हैं। क्यों?

इसीलिए ना कि उसका अभ्यास जो हो गया है। एक मछली स्थल पर पड़ी मर-मर हो रही है, जल में छोड़ी, झट सूं-ऊं-ऊं करके दौड़ी। प्राण जो पा लिया जल में पड़ते ही। ठीक वैसी ही ईश्वर-कथा। जिन्हें यह सुनने या बोलने में भली लगती है वे यदि न सुनें या न बोलें तो प्राण रहते नहीं। जिनका ऋषि जीवन है, ईश्वर का नाम, गुणकीर्त्तन लेकर जो हैं, वे बचेंगे कैसे वह बिना किए? यह second nature (स्वभाव) में परिणत हो गया है— उनका नाम, गुण-संकीर्त्तन। अन्य कथा, अन्य भाव वे सहन कर सकते नहीं।

''दक्षिणेश्वर में एक पगली आया करती, भक्त। ठाकुर से कहती, 'मेरा मधुर भाव।' एक दिन ठाकुर खा रहे हैं और उसी समय आकर उपस्थित। ज्यों ही बोली, 'मेरा मधुर भाव' त्यों ही ठाकुर यन्त्रणा से, मानो बिच्छु-डंक की यन्त्रणा से, चीत्कार कर उठे। और कहने लगे, 'ओ रे राम लाल, सुन वह क्या बोलती है, मधुर भाव, मधुर भाव।' इसके पश्चात् जब ठाकुर दक्षिणेश्वर छोड़कर काशीपुर बाग में थे असुख के समय, तब एक दिन unguarded (एकाकी) थे। उसी समय पगली सुयोग पाकर झट से ठाकुर के कमरे में घुस गई। दूसरों ने आकर निकाल दिया। ठाकुर पीछे कहने लगे, 'वह यदि उस समय मुझे स्पर्श कर लेती, तो तब ही देह चली जाती।' ऐसा है सब व्यापार! भक्त— शुद्ध सत्त्व भक्त जो हैं उनके पकड़ने से देह रहती है। यह जो असुख-विसुख— इसीलिए ही तो हैं। कितनी तरह के लोग जाते— किसी को भी लौटाते नहीं थे ना! मन में कितना कलुष भाव वे लेकर जाते और स्पर्श करते, इसी से हुआ असुख। वह न होता तो फिर उन्हें असुख कैसा?''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— जो इस डिपार्टमैंट, विभाग के लोग हैं, वे ईश्वर की कथा बिना, पवित्रभाव बिना रह सकते नहीं। छटपटाते हैं। एक बार अश्विनीदत्त के पिता बड़ीशाल के ब्रजमोहन बाबू, रिटायर्ड सब-जज ठाकुर के पास कई दिन रहे थे, दक्षिणेश्वर में। एक दिन मध्याह्न भोजन के पीछे कथावार्त्ता होने लगी, पञ्चमेल वार्त्ता, जैसी लोगों में हुआ करती है। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे हैं समाधिस्थ। समाधि से नीचे उतर कर हाथ जोड़कर कहने लगे, 'आप और अधिक ये सब बातें न करें; ईश्वर की बातें करें।' ज्यों ही कहा, झट ब्रजबाबू करजोड़ क्षमा-प्रार्थना करके निवेदन करने

लगे, 'प्रभो, हमारा रोग तो आप जान गए हैं, अब कृपा करके औषध दें।' ऐसी अवस्था है जिनकी, वे ईश्वर की कथा बिना रह ही सकते नहीं। पुरी में चैतन्यदेव रहा करते समाधिस्थ। ज्यों ही भगवान का नाम कानों में प्रवेश करता, त्यों ही बाह्यचेतना लौट आती। ठाकुर का भी वही देखा है, अन्तर्दशा में एकदम बाह्यज्ञान शून्य; जैसे ही ईश्वर का नाम होता, झट चेतना। ईश्वर का नाम ही ऐसा, भीतर घुस कर काज करता है।''

छोटे जितेन— आज मठ में खोका महाराज ने बतलाया, स्वामी विवेकानन्द जी और महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) के वहाँ रहते हुए महापुरुष (स्वामी शिवानन्द जी) इतनी बातें नहीं करते थे। अब इतना बोलते हैं कि शेष नहीं, कष्ट होता नहीं। मैं तो पागल हो जाऊँ, यदि इतना बोलूँ।

श्री म— ना, उनकी कथा से क्या पागल होता है? उससे जीवनी शक्ति बढ़ती है। कोई-कोई ठाकुर से कहता, 'आप ये जो दर्शनादि की बातें करते हैं, वे तो hallucination, (मन का भ्रम) हैं।' ठाकुर का बालक का-सा स्वभाव। बालक जैसे माँ को सब बातें बता देता है, ठाकुर भी वैसे ही जगन्माता के पास कहते, 'माँ, मेरे दर्शनादि को ये सब मन का भ्रम कहते हैं।' जगन्माता कहतीं, 'मन का भ्रम क्योंकर हुआ बेटा? जो बोले हो, सब ही तो मिलता जा रहा है। तुम जो बोलते हो सब सत्य।' भ्रम कैसे होगा? ईश्वर जो बातें करते हैं। दक्षिणेश्वर में कमरा-भरा लोग। ठाकुर कहने लगे, 'यह जो माँ आईं हैं, यही जो माँ आईं हैं— प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, माँ आईं हैं।' और माँ के साथ बातें होने लगीं। एक ओर की बातें अर्थात् ठाकुर की सब बातें सुनाई पड़ती हैं। इतना करके बतलाया करते, इतनी बातें बोलते, तब भी क्या लोागों को चैतन्य होता है?

''एकजन *(शिवनाथ शास्त्री)* ने कहा था, 'सब समय यही लेकर रहने से सिर फिर जाएगा।' ठाकुर ने सुनकर उत्तर दिया, 'वह कैसे होता है? जिनके चैतन्य से जगत् का चैतन्य, उनका चिन्तन करने से पागल कब होता है?' विषय-चिन्ता करके यदि पागल नहीं होता तो जगत्चैतन्य का चिन्तन करके सिर फिरता है?''

(2)

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— गुरु के शरणागत हो जाने पर गलत पाँव पड़ता नहीं। वे सर्वदा रक्षा करते हैं— सर्वदा पीछे-पीछे चलते हैं। ईश्वर ही गुरु। उनके अतिरिक्त और कोई गुरु नहीं। उन्हें ही ठाकुर 'माँ' कहकर पुकारते। कोई कुछ कहता तो झट उत्तर देते, 'मुझे क्या चिन्ता, 'माँ' हैं— सब देखती हैं, सब जानती हैं, सब करवाती हैं वे। मैं खाता-पीता हूँ और माँ, माँ कहता हूँ।' गुरु ऐसी चीज़! वे भक्त के लिए व्याकुल; सब देखते हैं। अच्छा, हम उनकी बातें अधिक चिन्तन करते हैं या वे अधिक सोचते हैं हमारे लिए— भला कौन? वे ही अधिक भावना करते हैं हमारे लिए। हमें इतनी भावना होती नहीं। यही ठीक करके स्थिर होकर बैठे रहना ठीक। इसलिए जो वे कहते हैं, वही करना चाहिए— जप, ध्यान ये सब।

''विद्यासागर महाशय की चर्चा में, उनकी दया की बात सुनी लोगों के मुख से। तुरन्त निमन्त्रण की अपेक्षा किए बिना ही स्वयं जा हुए हाजिर उनके यहाँ। हरीतकी बाग में एक भक्त निर्जने गोपने ईश्वर को पुकारते थे। ओ माँ, उनके घर जा हाज़िर! कोई खबर आदि बिना दिए ही जा हाज़िर। भक्त तो एकदम अवाक् हो मिन्नत करके कहने लगा, 'कहाँ तो मैं जाता आपके पास, कहाँ आप ही ढूँढते-ढूँढते आ पहुँचे!'

''ठाकुर कहा करते, 'उनको जरा-जरा सा पुकारो, तो फिर वे आकर बतला देंगे यह-यह करो।' जभी तो इतना व्याकुल होते भक्तों के लिए। नरेन्द्र आदि के वहाँ न जाने पर गाड़ी करके उनके घर जाकर खोज-खबर करते। कुछ दिन ही न जाने से जाकर हाजिर हो जाते। और फिर जिन्होंने विवाह किया हुआ था ऐसे भक्तों के घर जाकर उपस्थित होते, खबर लेने। ऐसा प्राय: ही होता। हम उनकी बातें कितनी सोचेंगे और कितनी कह सकेंगे? एक सेर के लोटे में क्या दस सेर दूध धरा जा सकता है? नमक के पुतले सब हम— जानते तो हो ना कहानी? एक नमक का पुतला अति साहस करके समुद्र मापने गया, किन्तु फिर बेचारा लौट कर कोई भी खबर दे नहीं सका— no message! वे कर्त्ता, हम अकर्त्ता। उनकी बात सुननी चाहिए—

ध्यान-जप करना चाहिए।

''इतना करके बतलाया है तब भी क्या चैतन्य होता है लोगों को? किसी से ही हमें विश्वास होता नहीं। विश्वास की भी फिर डिग्रियाँ हैं, कहा करते। किसी ने दूध की बात सुनी है, किसी ने देखा है, किसी ने पिया है। गुरु के मुख से, शास्त्रमुख से सुनकर विश्वास एक, निज कितनी धारणा हुई एक, और फिर जब ईश्वर-दर्शन होता है, तब एक। दूध पिया है माने उनका दर्शन हुआ है, कथावार्त्ता हुई है उनके संग। यही है पक्का विश्वास— विज्ञानी की अवस्था। इसी विश्वास को लेकर ही क्राइस्ट क्रूस-विद्ध हुए थे।''

बड़े जितेन— ईश्वर की कथा जितनी सुनी जाती है, तृप्ति होती नहीं।

श्री म— वह क्या फिर होती है? कितना बड़ा सागर! ईश्वर अनन्त, कैसे होगी तृप्ति!

श्री म पुनराय गुरु-माहात्म्य वर्णन करने लगे।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— एक बार एकजन भक्त *(श्री म)* संसार की ज्वाला में जलभुन कर ठाकुर के यहाँ गया और बोला : Life is not worth living— सांसारिक दु:ख-कष्ट भोग करने से तो मरना ही अच्छा। ठाकुर सुनकर कहने लगे, 'क्यों जाओगे तुम मरने, क्या विपत्ति आ पड़ी? तुम्हारे तो गुरु हैं, वे ही सब कुछ देख रहे हैं।' गुरु क्या साधारण-सी बात? कहने से ही क्या मरा जाता है? ठाकुर कहा करते, 'गुरु को मनुष्य समझने से कुछ भी होगा नहीं।' कुलगुरु व अन्य जो मन्त्र देते हैं, मन में सोचना होगा, ईश्वर ही उनके मुख द्वारा बोल रहे हैं, वे तो यन्त्र मात्र हैं।

''ठाकुर कहा करते : यह संसार-समुद्र एक गुरु ही पार करा सकते हैं और किसी की शक्ति नहीं। गुरु माने ईश्वर। 'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।' (गीता 7:14)— मेरे शरणागत होने पर ही केवल मायापाश छिन्न हो सकता है, अन्य पथ नहीं।

''मैं जब द्वितीय दर्शन के समय गया, तब तर्क-प्रवृत्ति थी भीतर। ठाकुर ने मुझ से पूछा, 'तुम्हें साकार भला लगता है कि निराकार?' मैंने कहा,

निराकार। और भी कहा था, मिट्टी की मूर्ति की पूजा में तो कुछ भी नहीं है। भगवान को (उस मूर्ति में) उद्देश्य करके पूजा करनी उचित। यह बात लोगों को समझा देनी उचित। इन सब बातों पर तब खूब लैक्चर हुआ करते थे कि ना कोलकता में। झट मुझे निर्वाक् कर दिया यह कह कर— 'तुम्हारा कलकत्ता के लोगों का यही एक दोष है, खाली लैक्चर देना। स्वयं करेंगे नहीं कुछ भी, किन्तु अन्य को समझाने जाएँगे।' कहने लगे, इस विषय में तुम्हें अपना माथा घुमाना नहीं होगा। यह जगत् देखो। वे सूर्य को रोज भेज देते हैं, ऋतुएँ सारी कर दी हैं। वर्षा में जल होता है। उससे धान होता है। उसे खाकर मनुष्य जीता है। जन्म से पूर्व ही माँ के स्तन में दूध दिया। सारा बन्दोबस्त ठीक करके रखा है। Spiritual world, (धर्म जगत्) ही देखो। घाटी-घाटी में देवालय, तीर्थ, शास्त्र, साधु ये सब कर रखे हैं। जो यह पथ चाहेंगे वे यही लेकर रहेंगे। वे सबके लिए चिन्ता करते हैं। हमें कुछ भी सोचना नहीं। ये सारी बातें सुनकर मैं तो अवाक्, एकदम निरुत्तर। तर्क बन्द हो गया चिरकाल के लिए। जभी वे कर्त्ता, हम अकर्त्ता।

''और फिर क्या लेकर ही 'हम कर्त्ता' कहते हैं। यह शरीर लेकर ही तो। किन्तु यह भी जो उन्होंने ही दिया है। देखिए ना, कैसा सुन्दर system (नियम-प्रणाली), इसकी digestive power (पाचन शक्ति), लीवर स्प्लीन, nervous system (स्नायुमण्डल), कितना कुछ कर दिया है। जभी कलेवर कहते हैं। Sensual instinct (विषय-भोग प्रवृत्ति), जिसकी ज्वाला में है सब कुछ अस्थिर, यह भी उन्होंने किया। थोड़ा परिश्रम हुआ कि झट निद्रा। ऐसा सब काण्ड रच डाला उन्होंने, और मैं कहता हूँ कर्त्ता मैं!

''ठाकुर आप-ही-आप कहते रहते, लोग यह 'कर्त्ता-कर्त्ता' बोलते हैं कैसे, मैं तो देख रहा हूँ सब ही वे। किन्तु 'मैं' भी तो जाने वाला नहीं। जभी 'मैं उनका दास', यह भाव लेकर रहने को बतलाया। वे ही सब कर रहे हैं, और फिर सबको देख रहे हैं। एकजन बोझा लिए रास्ते में जा रहा है। सामने 'काली-मन्दिर' पड़ा। सिर पर बोझा रखे ही टेढ़ा हो प्रणाम करने लगा। वे उसे भी देखते हैं, उसके लिए भी सोचते हैं। हो सकता है तुरन्त ही सामने आकर दर्शन दे दिए। देह भी तो बोझा। उन्हें निर्जने गोपने रो-रोकर बोलना

चाहिए। उससे उनकी कृपा होती है, कृपा होने से ही हो जाता है सब— निश्चिन्ति। उन्हें पुकारने से कर्म कम हो जाते हैं, कर्म कम होने से कर्त्तापन भी कम हो जाता है। यह दोनों हैं, relative (परस्पर सम्बन्धित)।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— वे कहा करते : माँ ने मुझे 'विद्या का मैं' दे रखा है, तभी रह रहा हूँ। 'विद्या का मैं' माने, उनका नाम-गुणगान, कीर्त्तन, भक्ति, भक्त ये सब लेकर रहना। अन्तिम अवस्था में काशीपुर में शरीर जाने के कई दिन पूर्व कहा था, 'मैं' को खोज नहीं पा रहा, सब ही देख रहा हूँ 'वे'। जब तक काज करवाएँगे तब तक अवतार की 'मैं' रखी थी। जब काज समाप्त हो गया है, जभी उठा ली है। किन्तु जीव की 'मैं' जाती नहीं। फुनगी निकलती ही रहती है अश्वत्थ-वृक्ष वत्। अवतार जैसे मूलीगाछ— जड़ समेत उखड़ आता है— मैं रहता नहीं। जभी ठाकुर ने कहा, 'मैं' ढूँढने पर भी मिलता नहीं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर जो कितने बड़े हैं, वह क्या हम समझ सकते हैं? निज की तुलना निज ही और निज-ही-निज को पहचाना था। गीता में भी यही बात ही है— 'स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम,' (10:15) 'स्वयं चैव ब्रवीषि मे।' (गीता 10:13) अर्जुन ने कहा था, 'आप निज ही निज को ईश्वर कहकर प्रचार करते हैं, जभी विश्वास करता हूँ।' और फिर 'अवजानन्ति मां मूढ़ाः मानुषीं तनुमाश्रितम्।' (गीता 9:11)— मैं जो हूँ अव्यय अक्षर पुरुष, यह बात न जानकर मूर्ख लोग मुझे मनुष्य समझते हैं। ठाकुर ने भक्तों को कहा, 'तुम्हें कुछ भी करना होगा नहीं। यहाँ आने-जाने से ही होगा।' यह बात कौन कह सकता है? वे निज ही पूर्णब्रह्म भगवान, निज ही यह कथा जानते, जभी तो यह बात कहते। जप-तप का उद्देश्य है उनको पाना। यहाँ साक्षात् वह प्राप्त हो रहा है। वह हो ही रहा है, तो उन सब की फिर और क्या आवश्यकता? उनकी वाणी पर विश्वास हो जाने से ही हो गया।

श्री म के इस अपूर्व ईश्वरीय भाव-प्रवाह में अभिभूत होकर बड़े जितेन आज भी बोल पड़े, 'Thy will be done,' (तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो)। जीव का 'मैं' जाने वाला नहीं, तो फिर 'दास मैं' भी होता नहीं— उनकी

वाणी पर भी विश्वास स्थायी होता नहीं— इन दो चाहों की खींच में पड़कर ही सम्भवत: जितेन बाबू आर्त्तस्वर में प्रार्थना कर रहे हैं। किन्तु श्री म ने आज भी पूर्वदिनों की भान्ति पुन: अंकुश-विद्ध कर दिया।

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— ठाकुर कहते, चौधराई बन्द करो। प्रार्थना करो मने-मने व्याकुल होकर केवल। मुख से बोलने से क्या होगा? क्रन्दन करो निर्जने गोपने। 'Ask and it shall be given to you;'... व्याकुल होकर माँगने से वे सब कर देते हैं। What man is there of you, whom if son ask bread, will he give him a stone?... if ye then, being evil, know how to give good gifts unto your children, how much more your Father, which is in heaven, give good things to them that ask Him?' (St. Matthew 7 : 7, 9, 11) क्राइस्ट ने कही थी यह बात। मनुष्य ही जब सन्तान की प्रार्थनाओं के अनुसार सब कर देता है, तो फिर क्या ईश्वर भक्त की प्रार्थना पूर्ण कर सकते नहीं? 'अन्तर' से कहना चाहिए, मन-मन में। वे सब पूर्ण करते हैं।

कोलकता; 13 मई, 1923 ईसवी, रविवार।
30 वैशाख, 1330 (बंगला) साल, कृष्णा त्रयोदशी।

पञ्चम अध्याय

उद्देश्य, ईश्वर-दर्शन— उपाय, दासीवत् संसार में रहना

(1)

श्री म भूमि पर चटाई के ऊपर बैठे हैं। मॉर्टन का द्वितल का कमरा। नित्य के भक्तों को छोड़ और भी बहुत से भक्तों का समागम हुआ है। खड़दाह से एकजन गोस्वामी आए हैं। देवघर से विद्यापीठ के अध्यक्ष स्वामी सद्भावानन्द भी आए हुए हैं। वे विद्यापीठ के सम्बन्ध में नाना परामर्श कर रहे हैं। सन्ध्या-प्रदीप आने पर श्री म बातें बन्द करके ध्यान करने लगे। अब रमेश रामकृष्ण-वन्दना गा रहे हैं। शान्ति ने गाया, 'श्मशाने केनो मा श्यामा।' (हे श्यामा माँ, श्मशान में क्यों हो?) श्री म के पौत्र अरुण गा रहे हैं, 'विकल्प-विहीन समाधि मगन ब्रह्मे चिरलीन आसन तोमार।' भजन शेष हुआ। श्री म का मन, जान पड़ता है, अन्त के संगीत के साथ-साथ रामकृष्ण-भावसागर में डूबा हुआ है। वे उनकी ही बातें कर रहे हैं, आवेग से भर कर।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— साधन-भजन कितना ही चाहे करो, test (परीक्षा) तो है उनके दर्शन करके उनके संग आलाप करना। जरा-सा आँख बन्द करके, ध्यान करके कहने से कि हमारा realisation (ईश्वर-दर्शन) हो गया है, मैंने सब देख लिया है, ऐसे नहीं होता। दक्षिणेश्वर में ठाकुर के पास कमरा-भरा लोग बैठे थे— विजयकृष्ण गोस्वामी भी थे। ठाकुर ने कहा, 'प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, माँ आई हैं।' यह है test (परीक्षा)— दर्शन और आलापन।

चार जन भक्तों ने कमरे में प्रवेश किया।

श्री म *(नवागतों के प्रति)*— समझे, साधन-भजन की परीक्षा है दर्शन

करके, आलापन करना। कल्पना में नहीं, साक्षात्कार करके बातचीत करना।

श्री म *(बड़े जितेन के प्रवेश करने पर)*— सुना जितेन बाबू, साधन-भजन का test है साक्षात् करके बातें करना। जरा-सा आँखें बन्द करके कहने से नहीं होगा कि मेरा दर्शन हो गया है— दर्शन, स्पर्शन और आलापन। जगत् की माता के संग बातें करते कमरा भरे लोगों के सामने। और फिर प्रतिज्ञा करके कह रहे हैं, 'प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, माँ आई हैं।' एक पक्ष की बातें सब सुन पाते। ऐसा व्यापार! ऐसा क्यों किया उन्होंने— ढोंग करके नहीं! मनुष्य कहते हैं कि ना, मेरा ईश्वर-दर्शन हो गया है, किंवा अमुक ने ईश्वर-दर्शन किया है। जभी स्पष्ट करके सब बतला गए हैं। इस अविश्वास के युग में सबको दिखाना जहाँ तक सम्भव है, वही दिखा गए हैं। यह जैसे public demonstration of God (जनसाधारण को ईश्वर-अस्तित्व में विश्वास करवाना), आँखों के सामने लाकर रखना। कमरा-भरा लोग बैठे हैं। वे भी फिर कैसे, सब ही प्राय: modern sceptical outlook (वैज्ञानिक दृष्टिकोण के), अंग्रेज़ी शिक्षा से जो होता है। शीघ्र ही विश्वास करना नहीं चाहते हैं कि ना लोग। जभी उन्हें इस प्रकार परीक्षा देनी पड़ी। उसमें और कुछ नहीं है। जभी डिगबी (Digby) साहब ने कहा है, 'He revealed God to weary travellers'— उन्होंने रास्ते चलते क्लान्त पथिकों तक को ईश्वर-दर्शन करवा दिया है।

एटॉरनी बोस आए हैं। श्री म पुनराय बातें करते हैं।

श्री म— सुनते हो वीरेन बाबू, कमरा-भरा लोग; उनमें विजय गोस्वामी भी हैं। ठाकुर ने कहा, 'माँ आई हैं।' फिर बातें करने लग गए। जभी साधन, भजन जितना भी चाहे करो; test (परिचय) वही है, दर्शन के पश्चात् बातचीत। इसे ही realisation (भगवद्दर्शन) कहते हैं।

बड़े जितेन— जी, हमारी अन्तरात्मा ही तो बातें करती है?

श्री म *(उपहास करके)*— वाह-जी-वाह, इतनी दूर से क्या बोला जाता है? हाट (मण्डी) में बिना ढुके (घुसे) ये सब बोलने से चलता नहीं। दूर रहने पर हाट का 'शाँय-शाँय' शब्द ही सुन पड़ता है। घुसने से सब कुछ

दिखता है— स्पष्ट करके समझ में आ जाता है। ये सब बातें आराम कुर्सी पर बैठकर, सिगरेट मुँह में दबाकर कहने की नहीं हैं। *(हास्य!)*

बड़े जितेन— आज आने में देर हो गई, व्यर्थ बातें करते-करते।

श्री म— नहीं, आप व्यर्थ बातें कैसे करेंगे? मूली खाओ तो मूली की डकार आती है, रबड़ी खाओ तो रबड़ी की। आपने तो रबड़ी खाई है, उसी की ही डकार देंगे।

बड़े जितेन *(विनीत भावे)*— आप किसी की सेवा नहीं लेते हैं ना! वही देखकर मैं भी करता हूँ वही अभ्यास कुछ-कुछ। स्त्री से कहता हूँ, स्वयं ही सब कुछ करूँगा।

श्री म— अरे ना, ना, यह नहीं; आप सेवा का अर्थ ही समझे नहीं। सेवा का अर्थ है— प्रत्येक के भीतर नारायण हैं, उनकी सेवा स्वयं करना— अन्य को न करने देना। उससे है अपना ही लाभ। मैं क्या अपनी सेवा करता हूँ? उत्तम भक्त देखते हैं, सर्वत्र भगवान हैं विराजमान। तभी सब जीवों का सम्मान और सेवा करते हैं। अपने भीतर ही भगवान के दर्शन करते हैं, जभी उनकी सेवा करते हैं स्वयं ही। लोगों का मन शुद्ध नहीं, तभी सब में उन्हें देख पाते नहीं। श्रीकृष्ण ने इसीलिए तो बड़े-बड़े कई चुन लिए थे— जैसे पीपल, हिमालय, चन्द्र, सूर्य, सागर। इनमें है उनका अधिक प्रकाश।

''(जनैक भक्त के प्रति) आँखें बन्द करो अथवा जो कुछ भी करो, test, ईश्वर-दर्शन की परीक्षा है वही— बातें करना; दर्शन, स्पर्शन और आलापन।''

14 मई, 1923 ईसवी, सोमवार।
31 वैशाख, 1330 (बंगला) साल, कृष्णा चतुर्दशी।

(2)

अगले दिन उसी कमरे में श्री म फर्श पर भक्तों के संग बैठे हैं। आज महीने का पहला दिन है, तभी अनेक भक्त आए हुए हैं। अब सन्ध्या-ध्यान के पश्चात् भजन हो रहे हैं। राखाल गा रहे हैं, 'रामकृष्ण चरण-सरोजे मज रे मन-मधुप मोर।' (रामकृष्ण-चरण-कमलों में डूब रे मेरे मन रूपी भौंरे।) दूसरे एकजन गा रहे हैं 'तुमि ब्रह्म रामकृष्ण। तुमि कृष्ण, तुमि राम।'

श्री म को सर्दी हुई है। वे भक्तों को कथामृत-पाठ में लगा कर स्वयं आहार करने के लिए तिमंजिले पर चले गए। डॉक्टर बक्शी पढ़ रहे हैं, 'मणि का गुरुगृह में वास।' अब साढ़े आठ। श्री म आकर फिर भक्तसभा में बैठ गए।

डॉक्टर *(पढ़ रहे हैं)*— श्रीरामकृष्ण कहने लगे : ईश्वर-लीला, देव-लीला, नरलीला, जगतलीला। नरलीला में अवतार। नरलीला कैसी है, जानते हो? जैसे बड़ी छत का जल, नल द्वारा हुड़-हुड़ करके पड़ता है। वे ही सच्चिदानन्द, उनकी ही शक्ति एक प्रणाली द्वारा नल के भीतर से निकलती है। केवल भरद्वाज आदि बारह ऋषि रामचन्द्र को अवतार रूप में पहचान पाए थे। अवतार को सब ही पहचान नहीं सकते।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— भगवान को अवतार होकर आना पड़ता है ज्ञान-भक्ति की शिक्षा देने के लिए— और शास्त्र की व्याख्या करने के लिए। उनके आगमन से पहले शास्त्र का अर्थ कदर्थ हो जाता है। श्रीकृष्ण आए, आकर गीता में सर्वशास्त्रों का मर्म प्रचार किया। गीता है सर्वशास्त्रों का सार। गीता का सब सत्य। ठाकुर ने कहा, 'गीता की प्रत्येक बात सत्य— एक बिन्दु भी बदली नहीं जा सकती।' बहुत जन कहते हैं, शास्त्रादि में बहुत सी बातें प्रक्षिप्त (interpolation) हैं; किन्तु गीता के लिए *(ठाकुर ने)* कहा, सब ठीक हैं। भगवान न आएँ तो कौन समझाएगा शास्त्र? पण्डितों का कर्म नहीं। साधन-भजन बिना किए अर्थ-बोध ही कहाँ होता है?

''केवल शास्त्रों से क्या होगा? उनमें तो फिर भगवान नहीं हैं। पहले-पहले तनिक देख लेना चाहिए, फिर साधन। साधन की शिक्षा देने

अवतार आते हैं। 'आन्तरिक व्याकुल होकर शास्त्र का भाव साधन करो जाकर,' यह बात बतलाते हैं। और जो जन लोक-शिक्षा देंगे उन्हें विभिन्न शास्त्र जानना आवश्यक है। स्वामी विवेकानन्द जी उस देश में *(विलायत में)* केवल quote (उल्लेख) करते थे authority (महाजन) वाक्य ही— काण्ट ने यह कहा है, हेगल ने यह कहा है। यह न होता तो लोग बात ही नहीं लेते।

''वे ही शास्त्र की व्याख्या कर सके हैं जो गुणातीत हैं, जिन्होंने colourless (रंगहीन) चश्मा पहना हुआ है। ठाकुर का वही था, श्रीकृष्ण का भी वही। नहीं तो लाल चश्मा पहनो, सब लाल ही देखोगे। नीला, पीला जैसा-जैसा चश्मा पहनो वैसा-वैसा ही देखोगे। अपने-अपने भाव का होगा। गीता में निरपेक्ष अर्थ दिखाई देता है। ठाकुर ने जब कह दिया गीता ठीक— It is a Gospel truth (यह ध्रुवसत्य) है।''

जनैक भक्त— जी, संसार में कैसे रहना उचित?

श्री म— बड़े व्यक्ति के घर की दासी की भान्ति। ठाकुर ने यही बात कह कर एकजन को कहा था 'मेरा हरि', 'मेरा घर'— इस प्रकार कहती हुई दासी घर में रहती है और सब काम गृहस्थ का करती है। किन्तु मन पड़ा रहता है अपने गाँव के अपने घर में, अपने लड़के-लड़कियों पर। इसी प्रकार सब कुछ करना होगा संसार में, किन्तु मन रहेगा ईश्वर में।

''कछुए की तरह संसार में रहेगा— यह भी कहा था। कछुए अण्डे किनारे पर पृथ्वी पर रखता है। स्वयं पानी में रहता है, किन्तु मन पड़ा रहता है अण्डों में।

'' 'नष्टा-स्त्री' की भान्ति संसार में रहना चाहिए—यह बात भी कही थी ठाकुर ने। नष्टा स्त्री घर का सब कार्य करती है, किन्तु मन उसका रहता है उपपति पर। इसी प्रकार संसार का सब करना और मन-मन में जानना कि अपना है केवल एक ईश्वर।

''पांकाल मछली की तरह से संसार में रहना। कीचड़ में रहती है, किन्तु शरीर मसृण— ज़रा भी कीचड़ लगती नहीं।

''और कहा करते, हाथों में तेल मलकर कटहल तोड़ना चाहिए, तब फिर लेस नहीं लगता। ज्ञान-भक्ति प्राप्त करके संसार में रहने से फिर डर नहीं।

''बात तो यही है, ईश्वर में मन रखकर सब कुछ करो। कुछ दिन निर्जने, गोपने साधन-भजन करके, भक्ति प्राप्त करके तब संसार में जाओ, संसार करो। इससे अनिष्ट होगा नहीं। तब संसार, संसार नहीं रहता।

''ठाकुर बतलाया करते, जैसे चूना लगाने से जोंक छूट जाती है, वैसे ही भक्तिलाभ के बाद काम, क्रोध, मोह अपने आप झड़ पड़ते हैं। कठिन तो चाहे है, किन्तु अभ्यास से सहज हो जाता है। उनके पास प्रार्थना करनी चाहिए, निर्जने गोपने। और सत्संग करना चाहिए— कभी-कभी निर्जनवास। ये सकल उपाय वे बतला गए हैं।''

भक्त— इतना सब जानते-सुनते हुए भी क्यों भूल हो जाती है काज के समय?

श्री म— यही तो है उनकी चातुरी— इसे ही माया कहते हैं। यह न हो तो सृष्टि की रक्षा ही होती नहीं जो। यह सृष्टि की पुष्टि के लिए है, उनकी लीला-जन्य यह तो होगा ही। भूल-भ्रान्ति न रहे तो जगत् चले कैसे? सब ही यदि ब्रह्म-ज्ञान-लाभ कर डालें तो सृष्टि रहे कैसे? उनकी scheme (योजना) ही ऐसी है कि अज्ञानता रहेगी ही। उपाय है उनकी शरण। शरणागत होने पर फिर संसार में बद्ध करते नहीं, तब भूल होती नहीं।

''सब ही तो भूले हुए रह रहे हैं। दैवात् दो-एकजन की ही भूल टूटी हुई दिखाई देती है। मनुष्यों को देखो ना क्या करते हैं, सुबह से अर्थोपार्जन की चेष्टा, आहार, विश्राम और सन्तानोत्पादन, ये ही लेकर व्यस्त हैं। कै जन हैं ईश्वर के लिए व्याकुल? मिहिजाम में बकरियों को देखा करता, बच्चों को लेकर बाहर निकल पड़ीं, उन्हें घास खाना सिखा रही हैं, और माताएँ आत्म-रक्षा के लिए 'ढू' (सिर) मारना सिखा रही हैं। ऐसा काण्ड!

''सृष्टि की scheme (परिकल्पना) में अज्ञानता न रहे तो वे आवें कैसे? कलुषभाव जब बहुत बढ़ जाता है तब ही आते हैं— 'संभवामि युगे-

युगे।' (गीता 4:8) भूल-भ्रान्ति रहेगी ही, यही जानकर चलना होगा। तभी तो देवता गण देवी का स्तव कर रहे हैं :

'या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्ति रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।' (चण्डी : 5/74-76)

''उन्होंने ही भ्रान्ति बनाई है, और फिर उन्होंने ही शान्ति का पथ दिखा दिया है।'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते' (गीता 7:14) उनकी शरण ग्रहण कर लेने पर इस भूल-भ्रान्ति से छुटकारा मिल जाता है। ठाकुर कहा करते, 'माँ परदा हटा लेती हैं, तब उनके मुख का दर्शन होता है। भूल-भ्रान्ति तब ही जाती है।' ''

(3)

आज एक भक्त उत्तराखण्ड से होकर आए हैं। उन्होंने ऋषिकेश, स्वर्गाश्रम, हरिद्वार, कनखल आदि तीर्थ-स्थान और साधु-दर्शन किया है। श्री म पवित्र ब्रह्मकुण्ड का गंगाजल और प्रसाद भक्तों के संग दर्शन, स्पर्शन और सेवन कर रहे हैं; और तपोभूमि व महात्माओं की बातें परमाग्रह से सुन रहे हैं। सुनते-सुनते ही एकदम आत्म-विस्मृत हुए जा रहे हैं। कोई उत्तराखण्ड जाएगा, सुनते ही श्री म आनन्द से आप्लुत हो जाते हैं। और कोई लौट कर आता है तो मन में जानते हैं, मानो अपना जन अपने ही घर से आया है। फिर पुंखानुपुंख रूप से साधु, तीर्थ, देवालय और हिमालय की बातें सुनते हैं। कोई हिमालय में वास कर लेता है तो श्री म उसे कहते हैं, 'बड़े घर का बेटा।' वे कहते हैं, उत्तराखण्ड युगयुगान्तर से भारत की संचित आध्यात्मिक सम्पदा, यक्ष के धन की न्यायीं अपने वक्ष में रक्षा करता आ रहा है। जो चाहता है अकातरे (उदारता से) उसे देता है। दर्शन से ही कितना पुण्य! और जो उस स्थान पर रहकर ईश्वर-चिन्तन करते हैं, उनकी तो बात ही क्या! उस स्थान पर रह कर निर्जने, गोपने ईश्वर-आराधना का संकल्प करते ही वे कह उठते हैं— It is a sight for the gods to see (यह दृश्य देवताओं को भी वाञ्छनीय है)। आज श्री म की भक्त-मजलिस में अन्य कोई बात नहीं।

अन्य चिन्तन नहीं। हिमालय, गङ्गा, साधु, तीर्थ, तपोवन, तपस्या इन्हीं की सकल पवित्र वाणी ध्वनित और प्रतिध्वनित हो रही है।

सन्ध्या-प्रदीप आ गया। अल्पक्षण ईश्वर-चिन्तन के पश्चात् फिर उत्तराखण्ड की बातें उठीं। श्री म के हाथ में एक पत्र है। पत्र को माथे से स्पर्श कर रहे हैं। एकजन साधु ने लिखा है हरिद्वार से।

श्री म (भक्तों के प्रति)— देखिए, महात्माओं का यही प्रसाद! प्रसन्न होकर जो दें वही प्रसाद। इस साधु ने ही अढ़ाई वर्ष पूर्व गृहस्थ छोड़ा है, छिप-छिप कर साधुसंग किया करता था। पैसा नहीं, युवक। पैदल ही यहाँ मठ, उद्बोधन आदि सब स्थानों पर यातायात किया करता था। पाँच मील से ऊपर होगा यहाँ से उनका घर भी। तीन जन आया करते थे, दो जन साधु हो गए हैं। ठाकुर के एक-एक करके मठ, आश्रम हो रहे हैं, और उनसे कितने लड़के तैयार हो रहे हैं। आहा, कैसा serious (गम्भीर) दृढ़ संकल्प! ईश्वर के लिए एकदम व्याकुल! अब संन्यासी हुए हैं। चिट्ठी लिखते हैं, वह भी कैसी अभिमान शून्य। यही हुई concrete example (व्याकुलता का ज्वलन्त उदाहरण)। इन सब के सम्बन्ध में discussion (आलोचना) तो academic discussion (किताबी आलोचना) मात्र होकर रह जाती है। किन्तु यह हुआ practical life (व्यावहारिक जीवन)। सब भोग-वासनाएँ छोड़ दी हैं— केवल ईश्वर को चाहते हैं। और फिर लिखा भी है कैसे, 'इसी जीवन में ही जैसे उन्हें पा जाऊँ। और जिस प्रकार ठीक-ठीक साधु-जीवन यापन कर सकूँ।' मैं देखा करता, किस प्रकार दोपहर की रौद्र धूप में पसीने-पसीने हुआ पैदल आ उपस्थित हुआ करता। हाथ में माँ काली का प्रसादी फूल। ऐसा न हो तो क्या इतना serious (व्याकुल) हुआ जाता है? 'न हि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।' (गीता 6:40)— इनका कल्याण किए बिना क्या ईश्वर रह सकेंगे?

बड़े जितेन ने कमरे में प्रवेश किया। कमरा भक्तों से परिपूर्ण है— सब ही श्री म को घेर कर बैठे हुए हैं।

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— आज a voice (एक वाणी) उत्तराखण्ड

से आई है। ठाकुर ने ही भेजी है हमारे सुनने के लिए— शिक्षा के लिए। अहा, ऐसा होगा नहीं तो क्या? कैसा ideal (आदर्श)! 'केवल तुम्हें ही चाहता हूँ और कुछ नहीं।' यह ideal (आदर्श) पकड़ कर बैठने पर होगा नहीं तो क्या?

''ठाकुर तभी कहा करते, जिन्होंने विवाह किया नहीं, उनके लिए है बड़ा chance (सुयोग)। *(तर्जनी से शून्य में एक रेखा खींचते हुए)* यही एक लाइन है। इसके इस पार है पशुत्व, मनुष्यत्व ये सब। इसको cross (पार) करने पर है देवत्व। यह लाइन हुई भोग की। भोग त्याग करते ही एकदम देवत्व। इन्होंने यही किया है।

''और जिन्होंने विवाह कर लिया है, उनके लिए भी chance (सुयोग) है बहुत। क्योंकि अब अवतार जो आए हैं। सीधा पथ दिखा गए हैं। इसे ही पकड़े रहने से हो जाएगा। थोड़ा-थोड़ा प्रकाश पाते हैं slow but sure, (धीरे-धीरे, किन्तु निश्चित) और जिन्होंने गृहस्थ में प्रवेश किया नहीं, वे मानो एकदम मैदान में खड़े हैं— एकदम flood of light (प्रकाशालोक)में। तभी तो केशवसेन को कहा, 'घर में रहते हो, एक chink (झरीत) से प्रकाश पाते हो, मैदान में खड़े हो सकते नहीं। वहाँ है प्रकाश की छड़ाछड़ि*।' ''

(4)

एकजन गृहस्थ भक्त— हमें तो आशा नहीं; इधर, उधर कुछ भी तो हुआ नहीं। उनकी वाणी पालन ही कहाँ कर सकता हूँ?

श्री म— ठाकुर ने एकजन भक्त को कहा था, 'तुम्हारे लिए ही तो है इतनी चिन्ता, ब्याह जो कर लिया है।' जिन्होंने ब्याह नहीं किया, उनके लिए इतनी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। देखिए, जिन्होंने विवाह कर लिया है, ईश्वर उनके लिए ही चिन्ता करते हैं। अत्यधिक भावना है, तभी तो कह रहे हैं। उनका case complicated (मामला जटिल) है कि ना? सिर पर बोझा— माँ काली को नमस्कार करता है टेढ़ा-मेढ़ा होकर। उसके लिए ही माँ भावना करती हैं अधिक। मुख में सिगार, हाथ में छड़ी, सामने पड़ने पर ज़रा-सा

---

* छड़ाछड़ि = ढेर-के-ढेर। भरमार। बाढ़।

'नॉड' कर दिया— ये भी एक प्रकार के भक्त होते हैं। उनको (माँ को) बाहों में जकड़ कर रखने की चेष्टा करनी उचित। इतना होने पर शेष वे स्वयं कर देती हैं। 'पंके बद्ध करो करी, पंगुके लंघाओ गिरि।' (हाथी को कीचड़ में बद्ध कर देती हो, पंगु को पहाड़ पार करा देती हो।) Complicated, difficult case (कठिन, जटिल अवस्था) को यदि सीधा, सरल न कर सकें तो फिर अवतार कैसे? शरणागत होने पर 'दुरत्यया' माया से परित्राण मिल जाता है।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— भोग तो महापुरुषों के मध्य भी रहता देखा गया है। भोगत्याग का नाम ही है संन्यास। वह घर में रहकर भी हो जाता है। है तो बहुत कठिन, किन्तु उनकी इच्छा से हो जाता है। देखता हूँ, ऐसे कोई-कोई हैं— गेरुआ चाहे न ही लिया। गेरुआ तो केवल साइन बोर्ड के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वे घर में रहकर ही भोगत्याग करके रहते हैं। ऐसे-ऐसे महान पुरुष भी हैं। जभी उनके लिए भी chance (सुअवसर) है अब। कारण, अब अवतार जो आए हुए हैं। उनका अल्प-अल्प करके छुड़वा लेते हैं। और वे, जिन्होंने ब्याह नहीं किया, वे तो बिलकुल ही खड़े हुए हैं मैदान में— एकदम ही प्रकाश की बाढ़ में!

''एक भक्त की प्रकृति में अल्प भोग था। ठाकुर ने थोड़ा-थोड़ा करके छुड़वा दिया था। विवाह किया हुआ था, बीच-बीच में घर भेज दिया करते। फिर मध्य रात्रि को जगन्माता के निकट प्रार्थना किया करते, 'माँ, उसे डुबाना मत।' उधर तो घर भेज देते और इधर 'कल' दबाते। उन्हें मछली पकड़ना पसन्द था। ठाकुर ने कह दिया, अमुक के संग आलाप रखो, तो वे मछली पकड़ने देंगे। थोड़ा-सा भी काज बाकी रहे, या भोग रहे तो गुरु उसे करवा लेते हैं। अन्त में पूर्ण त्याग।''

शुकलाल— जी, भोग का तो शेष नहीं, अफुरन्त अनन्त— एक के पश्चात् एक आता ही जाता है। शेष होगा कैसे?

श्री म— ईश्वर जो पकड़े हुए हैं, गुरु सर्वदा पीछे से पकड़े हुए हैं। भोग भी क्या उस भक्त ने किया था? ठाकुर ने करवा लिया। क्यों? निश्चिन्त होने के लिए। गुरु पकड़ लें, फिर भय नहीं। जैसे बालक खा रहा

है, माँ जानती है कितना खाने से पेट भरेगा और कितना खाने से असुख होगा। पेट भरते ही झट सरका लेती है।

''ईश्वर ही अधिक चिन्ता करते हैं हमारे लिए, हम उनके लिए कितनी चिन्ता करते हैं? *(भक्तों के प्रति)* हम अधिक उनकी चिन्ता करते हैं, कि वे हमारी अधिक चिन्ता करते हैं? कौन करता है अधिक? वे ही अधिक चिन्ता करते हैं। पंगु के द्वारा वे ही पहाड़ पार करवा ले सकते हैं। एकजन भक्त दु:ख-कष्ट पाकर देहत्याग करने के लिए जा रहा था। ठाकुर सुनकर कहने लगे, 'तुम क्यों वैसा करने जाओगे? तुम्हारे तो गुरु हैं, चिन्ता क्या?'

''ईसु के पास एक धनी भक्त गए। खूब धर्मपरायण, दान-ध्यान करते, सत्य पालन, संयम आदि सभी पालन करते— Ten Commandments (दसों आदेश) पालन करते थे। उन्हें देखकर कहने लगे— तुम्हारा सब कुछ ही बहुत अच्छा है, किन्तु फिर भी एक वस्तु का अभाव है— 'One thing thou lackest... Give (your all) to the poor... and come... and follow me' (St. Mark 10:21) धन, दौलत सब गरीबों में बाँटकर मेरे साथ चले आओ। तब तुम्हें धर्म-शिक्षा दूँगा। भक्त नहीं कर सका— आसक्ति प्रबल थी, तभी तो। इनकी यह दशा देखकर अन्य भक्त गाल पर हाथ धरे विषण्ण-चित्त होकर बैठ गए। कारण पूछने पर उन्होंने बतलाया, 'प्रभो, हमारी अवस्था भी ऐसी ही है— भीतर भोग-वासनाओं से पूर्ण है। पकड़े चाहे वे ही गए हैं।' क्राइस्ट ने तब अभय देते हुए कहा— 'उस विषय में तुम्हें चिन्ता नहीं करनी होगी, मैं सब जानता हूँ। क्योंकि तुमने ईश्वर की शरण ली है, मैं सब दूर कर दूँगा सारी बाधाएँ। तुम्हें कोई भय नहीं।' असम्भव सम्भव हो जाता है उनकी इच्छा से— insuperable difficulties (दुर्लंघ्य विपदाएँ) भी दूर हो जाती हैं उनकी कृपा से— 'With men this is impossible; but with God all things are possible.' (St. Matthew 19:26)। बाजीगर ने हाथ हिलाकर रस्सी की हजार गाँठें खोल डालीं। किन्तु दस हजार लोग थे— उनमें से कोई भी एक को भी खोल नहीं सका था। ऐसा व्यापार! जभी गुरु के शरणागत होना होता है। गुरु माने ईश्वर। वे सद्य अवतार होकर आए हैं। धनिकों की चर्चा में कहा था— वे

भोग छोड़ सकते नहीं, ना ही ईश्वर की शरण ले सकते हैं। 'It is easier for a camel to pass through the eye of a needle, than for a rich man to enter into the kingdom of God.' (St. Mathew 19:24)— सूई के छिद्र के भीतर से ऊँट का निकल जाना चाहे सम्भव हो, किन्तु धनासक्त का ईश्वरलाभ है असम्भव।''

साधु का पत्र श्री म की इच्छा से डॉक्टर द्वितीय बार पाठ करके सबको सुना रहे हैं। पत्र-पाठ समाप्त हुआ। श्री म पुन: बातें करने लगे।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— आहा, कैसे व्याकुल! लिखते हैं जैसे इसी जीवन में हो जाए— ईश्वर-दर्शन। जभी कहता हूँ, अभी तक जिन्होंने विवाह नहीं किया, उनके लिए है बड़ा chance (सुयोग)! इच्छा करने से ही इस अतुल सम्पद् के अधिकारी हो सकते हैं। अफुरन्त शान्ति-सुख प्राप्त कर सकते हैं। विवाह हो जाने पर तनिक मुश्किल में पड़ना होता है। पथ इतना सहज रहता नहीं। इनका क्रम-क्रम से होता है। और उनका, जैसे इन साधु का, चट् करके हो जाता है। मैदान के बीच जैसे खड़ा है— प्रकाश का अभाव नहीं, चारों ओर छड़ाछड़ि।

''ईश्वर सबके लिए ही भावते हैं। योगियों के लिए भी भावना करते हैं, जैसे यह साधु। और फिर योगी-भोगी, जैसे— पाण्डवगण, उनके लिए भी चिन्ता करते हैं। श्रीकृष्ण पाण्डवों के संग-संग सर्वदा रहा करते। कुरुक्षेत्र युद्ध में भी War Council (युद्ध सभा) के प्रेसिडेन्ट (प्रधान) हुए और फिर अर्जुन के सारथी रहे। ईश्वर भोगियों के लिए भी भावते हैं। तो भी भक्तों के लिए उनकी भावना है अधिक।''

16 मई, 1923 ईसवी।

(5)

अपराह्ण साढ़े छ:। मॉर्टन स्कूल के दोमंजिल के कमरे में श्री म भक्तों के संग बैठे हैं। 'आगरपाड़ा का लड़का'— अब ठाकुर के वृद्ध भक्त—

आशुबाबू आए हुए हैं; और ढाका से एक प्राचीन भक्त आए हुए हैं। उनके साथ पूर्वी बंगाल में ठाकुर के भाव-प्रचार की बातें हो रही हैं।

श्री म *(ढाका के भक्त के प्रति)*— हाँ, पूर्वबंग में यह भाव लिया गया है अधिक। उनमें रोख* है। इस देश के लोग बहुत सोच समझ कर लेते हैं। आजकल बोध होता है, मठ में अधिकांश ही पूर्वबंग के लोग हैं।

''ठाकुर ने उस देश में जाना चाहा था। किसी-किसी को भेज भी दिया था देखने के लिए। पद्मा (नदी) देखने की बड़ी इच्छा थी। वे पहले (पूर्वावतार में) वहाँ से, सिलहट से आए थे कि ना, जभी पूर्व कथा मन में होने से देखना चाहते थे। विवेकानन्द से एक दिन कहा, तब वे नए-नए ही आने-जाने लगे थे, उन्नीस वर्ष मात्र वयस्— 'गौरांग का नाम सुना है, वही जिसे लोग 'गौर-गौर' कहते हैं। वही गौरांग मैं हूँ।' विवेकानन्द सुनकर सोचने लगे, यह व्यक्ति पागल तो नहीं है, कहता क्या है? पीछे बन्धुओं को (श्री म आदि को) यही बात बतलाई थी। विजयकृष्ण गोस्वामी ने बतलाया, 'ध्यान करते समय मैंने आपको देखा ढाका में, ऐसे ही जैसे निकट बैठे हुए हैं।' विवेकानन्द प्रथम तो ज़रा वैसे (दर्शनादि में अविश्वासी) थे न! पीछे कहा करते थे, 'किस प्रकार फिर अस्वीकार ही करूँ?' अर्थात् उन्हें भी दर्शनादि हुआ है।

''ईश्वर-दर्शन की बात अधिक करते नहीं। ठाकुर यदि देखते कि कोई फड़-फड़ करता है, तब उसे धमक देकर कहते, 'मेरे से भी नहीं कहोगे दर्शनादि की बात।' ईश्वर गोपन धन— गोपन में रखना चाहिए। नहीं तो भाव नष्ट हो जाता है। निर्जने गोपने उन्हें पुकारना चाहिए। और जब दर्शन हो जाए तब :

यतने हृदये रेखो आदरिणी श्यामा मा के।
(ओ मन) तुई देख आर आमि देखि, आर जेनो केऊ नाहि देखे॥

[यत्न से हृदय में रखो आदरिणी श्यामा माँ को। अरे मन, तुम देखो और मैं देखूँ, और जैसे कोई न देखे।]

---

* रोख = तेज, दृढ़ता, स्फूर्ति, जोश, उद्दीपनामिश्रित भाव।

''ईश्वर-दर्शन का sign (लक्षण) है— बालकवत्, उन्मादवत्, जड़वत् और पिशाचवत् हो जाता है। कर्म सब घट जाते हैं— 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि।' तब और वासना भी रहती नहीं। और संशय सब चले जाते हैं। वेद में हैं ये सब बातें— 'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।' (मुण्डकोपनिषद् : 2/2/8) जितेन्द्रिय हो जाता है— काम, क्रोध जय हो जाता है। शुचि-अशुचि रहती नहीं— हो सकता है शौच के लिए बैठा हुआ है, सामने एक बेर मिला, झट मुख में दे दिया और खा डाला। ठाकुर की ऐसी सारी अवस्थाएँ हुई हैं।''

डॉक्टर, विनय, बंकिम घोड़ई और वीरेन बोस ने एक संग ही कमरे में प्रवेश किया। संग-संग ही बड़े जितेन भी आकर उपस्थित हो गए।

श्री म क्षण भर अन्यमनस्क हुए बैठे रहे। बातें बन्द हो गईं। पुनः बातें करने लगे।

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— यही सुनो, ईद का बाजा। उनके मुसलमान भक्तगण उनको लेकर आनन्द कर रहे हैं। उनकी ही है यह एक religious community (धर्म सम्प्रदाय), तभी इतनी रोख। इसी मास में रोज रात को तीन बजे सब मस्जिदों से priest (मुल्लागण) पुकारते हैं लोगों को : 'उठिए, उठिए, अब और सोइए नहीं। समय जा रहा है, अल्लाह का नाम करिए।' कैसी सुन्दर पुकार है यह— grave moment (गम्भीर रजनी) में। यह बड़ा ही उद्दीपन करती है। और कैसी सुन्दर व्यवस्था की है मुहम्मद ने— रोज़ों का एक मास उपवास, तत्पश्चात् उत्सव! खाली हविष्य अच्छा नहीं लगता, तभी उत्सव चाहिए।

''मुसलमान धर्म के यही कुछ प्रधान करणीय हैं। पाँच बार नमाज़, एक मास रोज़े, हज और poor-rate, ज़कात (निर्धन सहायता)। तभी सब रोज़ा करते हैं। आज पृथ्वी भर के भक्तगण मिल कर आनन्द मनाते हैं। बड़ी निष्ठा है उनमें। नमाज़ का समय होते ही सब काज पटक देते हैं। गाड़ीवान गाड़ी थामकर उसके ऊपर ही नमाज़ पढ़ने लग जाएगा। कैसी सुन्दर व्यवस्था!

''मुहम्मद ने कहा था, 'धन, जन, जीवन— सब ईश्वर के लिए उत्सर्ग करो। ईश्वर ही सत्य है, उसे पुकारो। उसे छोड़ अन्य किसी को

पुकारना मिथ्या।'— 'Allah is truth, and that which they call upon besides Him is falsehood.' जो सब की सेवा करता है, अल्लाह उसे प्यार करते हैं— 'Allah loves those who do good to others.' और भी कहा, उनके शरणागत होना ही है श्रेष्ठ धर्म— 'He who submits entirely to God, has the best of religions.' गीता का सार भी वही, 'मामेकं शरणं व्रज (गीता 18:66)— मेरी शरण ग्रहण करो। यह ही है श्रेष्ठ धर्म। ठाकुर ने जभी तो मुहम्मद के भाव में साधन किया। तब ब्राह्मण बुला कर पुलाओ इत्यादि पकवाकर उनकी ही भान्ति सानकी (मिट्टी की थाली) में खाया करते। ईश्वर के दर्शनादि भी हुए थे।

''सब लोग, एक ईश्वर को लेकर ही नाना देशों में, नाना कालों में, नाना भावों में आनन्द मनाते हैं। इसे ही समझ लेने पर सब अपने हो जाते हैं। तब पराया कोई नहीं रहता। तभी झगड़ा भी नहीं रहता। यही बात समझाने के लिए ठाकुर आए और नाना पथों द्वारा साधन किया। सब रास्तों द्वारा जाकर अन्त में एक ही स्थान पर पहुँचे। तभी कहा, 'जतो मत, ततो पथ; मत पथ।' (जितने मत, उतने पथ, मत पथ।) यही भाव जब जगत् में बिखर जाएगा, तभी शान्ति होगी।''

कोलकता; 18 मई, 1923 ईसवी, शुक्रवार।
4 ज्येष्ठ, 1330 (बंगला) साल, शुक्ला चतुर्थी।

षष्ठ अध्याय

ठाकुर ने जो बोला सब मन्त्र

(1)

मॉर्टन स्कूल का द्वितल गृह। श्री म फर्श पर चटाई पर बैठे हैं, पूर्वास्य। चारों ओर बहु भक्त और साधु। आज बेलुड़मठ से स्वामी अरूपानन्द, ब्रजेश्वरानन्द, ब्रह्मचारी रमेश, सूर्य तथा और एकजन आए हैं। भवानीपुर से भी आए हैं एकदल भक्त। आगरपाड़ा के आशुबाबू आए हुए हैं। इन्हें छोड़ नित्य के भक्तगण तो आए ही हुए हैं। दुर्गापद और सुरपति पीछे आ गए।

अब अपराह्ण पौने सात, ग्रीष्मकाल। भजन के सम्बन्ध में बात उठी।

श्री म *(साधुओं के प्रति)*— समय निश्चित करके जप-ध्यान करने के लिए कहा करते। जिस समय जो करना निश्चय किया है उस समय वही करूँगा ही, ऐसी रोख चाहिए। एकजन को कहा, 'सन्ध्या के समय जप-ध्यान करेगा नहीं, अन्त में क्या पराए घर की बहु-बेटी को भगा बाहर करेगा?' काशीपुर उद्यान में रह रहे थे— अस्वस्थ थे तब। जभी तो सन्ध्या के समय सब काज छोड़ कर उन्हें पुकारना उचित। कहा करते, ऋषियों ने कितना कष्ट करके फिर उनका दर्शन पाया। भोर वेला ही आश्रम से बाहर गम्भीर वनों में चले जाते— पीछे लोग आकर भजन में व्याघात न करें। और सन्ध्या को लौट आया करते। इतना किया करते, तभी तो दर्शन पाया करते। अब उनकी सब बातें हैं वेदमन्त्र।

''ठाकुर ने जो कहा, वे भी मन्त्र— प्रत्येक बात ही मन्त्र। मन्त्र माने भगवान जो कहते हैं, वही। ऋषि, महापुरुष, अवतारादि के मुख द्वारा वे बात करते हैं। इसीलिए उनकी वाणी सब मन्त्र हैं। संस्कृत में होने से ही क्या

केवल मन्त्र होता है? बंगला में भी होता है, अन्य भाषा में भी होता है। 'सब ही वे होकर रह रहे हैं— जीव, जन्तु, चतुर्विंशति तत्त्व' ठाकुर का यही है एक मन्त्र। यही है फिर गायत्री का भी सार। गायत्री है वेद का सार। देवी भागवत में भी यही बात है। शुकदेव ने तपस्या की, तब आकाशवाणी हुई— 'वे ही सब होकर रह रहे हैं— संसार में जो कुछ भी है।'

"माँ ने मुझे इसी अवस्था में रखा है, तभी रह रहा हूँ, 'भक्ति-भक्त लेकर।' और फिर लीला-संवरण के कुछ पूर्व कहा, 'मैं' को खोजता हूँ, मिलता ही नहीं; अब सब ही देख रहा हूँ 'वे'।"

वृद्ध भक्त *(भवानीपुर के)*— तब ही (आप) पहचान पाए हैं कि वे अवतार हैं और अब अप्रकट होंगे!

श्री म— नहीं, नहीं। हम क्या समझ सकते हैं उन्हें? हमारी बुद्धि ही फिर कितनी है? एक सेर के लोटे में क्या दस सेर दूध समाता है? इतने बड़े उच्च अधिकारी अर्जुन, वे ही पहचान सके नहीं। उन्होंने कहा— असित, देवल, व्यास प्रभृति ऋषियों ने कहा है, तुम हो अवतार। और तुम निज कह रहे हो— 'स्वयं चैव ब्रवीषि मे।' (गीता 10:13) जभी विश्वास होता है, तुम्हीं ईश्वर। अर्जुन ने ही यदि यह बात कही; तो हम क्या हैं?

"अवतार को कोई पहचान सकता नहीं— वे ही यदि न पहचनवा दें। उनकी कृपा हो तो पकड़ सकते हैं, नचेत् नहीं। अवतार तत्त्व है ऐसा रहस्यपूर्ण! Man with limitations— a conditioned being (क्षुद्र बुद्धि मानव) किस प्रकार समझेगा उन्हें? यह क्या two plus two equal to four— finite things (दो और दो चार— जागतिक वस्तु) का विचार है? वे हैं infinite (अनन्त), उन्हें लेकर विचार चलता नहीं।"

श्री म *(सब के प्रति)*— एकजन ने पूछा ठाकुर से— उपाय क्या है? तत्क्षण एक मुहूर्त्त विचार किए बिना ही उत्तर दिया, 'गुरुवाक्य में विश्वास।' यह भी है और एक महामन्त्र। और कहा, 'गुरुवाक्य है कैसा? जैसे, उत्ताल तरंग-विक्षोभित-सागर, उसमें एकजन 'हाबुडुबु' कर रहा है। ऐसे समय में एक नाव मिल गई। गुरुवाक्य है वही नाव।' संसार-समुद्र में एकमात्र

तरणी। गुरुवाक्य छोड़ हमारा और क्या सम्बल है? गुरुवाक्य में विश्वास चाहिए।

"*(सहास्य)* ठाकुर ने बतलाया वैद्य तीन प्रकार के हैं— उत्तम, मध्यम और अधम। अधम वैद्य विज़िट (फीस) लेकर चला जाता है— केवल एक prescription (नुसखा) लिखकर। मध्यम वैद्य रोगी को तनिक समझा-बुझा कर औषध-पथ्य खाने के लिए कहता है और उत्तम वैद्य रोगी की छाती पर घुटने रख कर बैठकर औषध खिलाता है। वैसे ही गुरु भी तीन प्रकार के बतलाए थे। अधम गुरु मन्त्र देकर चला जाता है, और खोज-खबर नहीं। मध्यम गुरु तनिक उपदेश देता है, ध्यान-जप करने के लिए। और उत्तम गुरु जोर करके करवाता है। ठाकुर थे उत्तम गुरु, जोर करके सब करवाया करते।"

वृद्ध भक्त— अच्छा महाशय, सद्‌गुरु कौन हैं?

श्री म— सत् माने जो नित्य है, और असत् जो दो दिन के लिए है। वे नित्य सच्चिदानन्द ही हैं सद्‌गुरु। वे ही अवतार होकर आते हैं गुरुरूप में।

जनैक भक्त— तब तो फिर hereditary (कुलगुरु) जो हैं, वे क्या हैं?

श्री म— हाँ, उन्हें भी उसी सच्चिदानन्द भगवान का रूप मन में जानना होगा— ठाकुर यही बात कहा करते। जानना होगा वे ही इस मुख द्वारा हमें मन्त्र दे रहे हैं। 'गुरुते जे मानुष-बुद्धि करे तार छाई होबे।' (गुरु को जो मनुष्य मानेगा उसका सब व्यर्थ होगा।) यह बात कही थी। जभी गुरु में ईश्वरबुद्धि करनी चाहिए।

जनैक भक्त— अच्छा, गुरु यदि अन्याय की बात कहें?

श्री म— उनका अन्याय देखते नहीं। वह क्यों देखूँ? मेरा कर्त्तव्य मैं करूँ।

अपर भक्त— अच्छा, गुरु यदि कहें, काली, कृष्ण इन्हें छोड़कर केवल मेरी पूजा करो, उस दशा में क्या करना उचित?

श्री म— हाँ, ठाकुर ने और भी एक बात बतलाई, गुरु करना चाहिए

अनेक देख-सुनकर। एक बार कर लिया तो फिर छोड़ने का उपाय नहीं है। गुरु है कि धुलाई के कपड़े हैं? दस जगह बदले जाएँगे।— एक बार यहाँ, एक बार वहाँ। और मन्त्र तब लेना चाहिए जब गुरु पर भगवद्-बुद्धि आ जाए। दस जने ले रहे हैं, मैं भी लिए लेता हूँ— उससे कुछ भी नहीं होगा। निष्ठा चाहिए भीतर। गुरु ही ईश्वर हैं, जब यह बोध हो जाए, तब मन्त्र लिया जाए। यह क्या देखा-देखी लेने का व्यापार है— वह ले रहा है तो मैं भी ले लेता हूँ।

अन्य भक्त— मन्त्र लेने के सम्बन्ध में ठाकुर ने क्या कहा?

श्री म— किसी को कहते, यहाँ आने-जाने से ही होगा। किसी की फिर जिह्वा पर ही लिख देते। किसी को अन्य उपाय से बतला देते। जिन्होंने कुलगुरु से मन्त्र लिया हुआ था, देखा है, उन्हें भी कहा करते, यहाँ आने-जाने से ही हो जाएगा।

''ठाकुर ने एक गल्प सुनाई थी गुरुभक्ति के सम्बन्ध में।*

''इस गल्प में क्या है? यही ना कि शिष्या ने गुरु में ईश्वर-बुद्धि कर ली थी। और अपना कर्त्तव्य-पालन किया था। जभी भगवान ने उसे दर्शन दिया। शिष्या ने गुरु को ईश्वर के दर्शन तक करवा दिए। शिष्या गुरु हो गई। गुरु का दोष देखते नहीं। गुरु ने कहा, जल में डूब मरने को। शिष्या वही करने गई। क्यों, क्योंकि गुरु में उसकी ईश्वर-बुद्धि जो हो गई थी। गुरु का आदेश, ईश्वर का ही आदेश; तभी जल में डूबने गई। गुरु का दोष देखते नहीं।''

श्री म *(साधुओं के प्रति)*— अवतार के दर्शन करने से ईश्वर के दर्शन करना हुआ— यही बात ठाकुर ने बतलाई थी। क्राइस्ट ने भी यही कहा था— 'He that hath seen me hath seen the Father'. (St. John 14:9).... 'I and my Father are one.' (St. John 10:30) क्यों कहते थे, 'यहाँ आने-जाने से ही होगा'— क्योंकि उनके दर्शन करने पर उद्दीपन होगा। जप-तप किसलिए करते हैं?— भगवान का उद्दीपन हो जाएगा। इसीलिए तो यहाँ जो स्वयं भगवान बैठे हुए हैं। एकदम ही साक्षात्कार हो रहा

---

* श्री म-दर्शन, प्रथम भाग, द्वाविंश अध्याय, परिच्छेद दो द्रष्टव्य।

है। मनुष्य होकर बैठे हुए हैं। जभी तो कहा, 'यहाँ आने-जाने से ही होगा।' निज को निज ही जानते हैं।

'' *(सहास्य)* हाजरा एक दिन माला जप रहे थे। ठाकुर ने माला खींच ली और दूर फेंक दी। और कहने लगे, 'यहाँ बैठकर भी माला-जप!' अर्थात् माला जपने का उद्दीपन जो है— ईश्वर-दर्शन, वह यहाँ पर एकदम ही तो हो रहा है। जप का प्रयोजन फिर रहा भी कहाँ, वह होने पर।

''एकजन भक्त आकर (उनकी) आँखों में आँखें जमाए लगातार देखते रहते। भक्त के चले जाने पर अन्य लोगों से कहते, 'सारा ही मन यदि एकाग्र करके यहाँ दे दिया है, तो फिर बाकी रह ही क्या गया?' अर्थात् 'जिसके उद्देश्य से साधन-भजन है, वही तो मैं हूँ।' एकजन भक्त के द्वारा अन्य एकजन भक्त के निकट सम्वाद भेजा, 'उसको कह आओ— मेरा ध्यान करने से ही हो जाएगा, और कुछ करना होगा नहीं।' रात्रि में माँ से कहते 'अच्छा माँ, उसे यह बात कहला भेजी है, अन्याय किया है क्या? मैं तो देख रहा हूँ माँ, तुम्हीं सब होकर रह रही हो— पञ्चभूत, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, चतुर्विंशति तत्त्व सब ही तुम हो।' निज को निज ही जानते थे, जभी यह बात। ईश्वर छोड़ ऐसी बात कहने का किसमें है साहस? कौन पहचानेगा उन्हें, निज को स्वयं न पहचनवावें यदि?''

जनैक भक्त— अवतार में ईश्वर-बुद्धि न आए तो क्या होगा?

श्री म— ठाकुर कहा करते, मिरच अनजाने खा लेने पर भी झाल लगेगी ही। उनको न पहचानने से भी दर्शन का आनन्द जाएगा कहाँ?

स्वामी अरूपानन्द— उनको देखकर जो आनन्द होता था लोगों को, अब लाख description (वर्णन) करने पर भी उसका एक कण भी नहीं मिलता।

श्री म *(अन्यमनस्क भाव से)*— उसका क्या कहना!

एकजन भक्त— गृहस्थ भक्तों के संग किस प्रकार का व्यवहार किया करते?

श्री म— एक दिन छोकरे सब बैठे हुए हैं। उनमें से एक ने विवाह

कर लिया है। उसको ही लक्ष्य करके कह रहे हैं, 'तेरे लिए ही तो है भावना अधिक, तूने विवाह जो कर डाला है।' इनके लिए इतना नहीं। माने, विवाह करने से problem complicated (समस्या जटिल) हो गई है, जभी उसके लिए भावना अधिक है। कारण, बोझा सिर पर उठाकर चलना पड़ता है ना!

अपर भक्त— विवाह कर डाला है, सुनकर कष्ट पाते थे?

श्री म— वह पाएँगे नहीं क्या? कहा करते— विवाह करना तो ज्वलन्त अग्निकुण्ड में प्रवेश करना है।

जनैक भक्त— अधिक प्रकाश होते ही चले जाते हैं, इसीलिए क्या गोपने रहना चाहते हैं?

श्री म— हाँ, किन्तु अन्तरंगों के संग में हुआ करता स्वतन्त्र व्यवहार। उनके लिए व्याकुल रहा करते, बुला-बुला कर लाते— और उनके पास स्वयं को प्रकट किया करते।

सूर्य ब्रह्मचारी— जप-ध्यान की बात कैसे बतलाया करते?

श्री म— जप की बात— मन्त्र पा लेने पर जप करने को कहा करते। ध्यान खूब करने को कहते।

अपर ब्रह्मचारी— उन्होंने स्वयं ही कही है यह बात, 'मेरा ध्यान करने से ही होगा।'

श्री म— हाँ, अनेक बार। कितनी ही बार कहा, 'मेरा ध्यान करने से ही होगा।' देख सकते थे कि ना निज को। गर्भधारिणी की अन्तर्जली* के समय बकुलतले के घाट पर पैर पकड़ कर रोते हुए बोले थे, 'ओ माँ, तुम कौन हो जिसने मुझे गर्भ में धारण किया।'

वृद्ध भक्त— निज को निज ही यदि जानते थे, तब फिर रोए क्यों पैर पकड़ कर, 'ओ माँ, तुम कौन हो' कहकर?

श्री म— निज को पूर्णब्रह्म नारायण रूप में जानते थे। जभी तो

* अन्तिम काल में मुमूर्षु को चारपाई पर लिटाकर गंगादि पवित्र नदियों के तीर पर ले जाते हैं। खाट का निम्नार्ध पवित्र जल में और अपरार्ध पृथ्वी पर रखते हैं। इस प्रथा को 'अन्तर्जली' कहते हैं।

कहा : तुम कौन हो माँ, मुझ को गर्भ में धारण किया जो? वे क्या कोई compare (तुलना) कर रहे हैं? कह रहे हैं, तुम साधारण माँ नहीं हो। क्यों?— क्योंकि अवतार को जो पेट में धारण किया है!

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— '....he maketh His sun to rise on the evil and on the good, and sendeth rain on the just and on the unjust.' (St. Matthew 5:45) क्राइस्ट ने कहा था : सूर्य जैसे सबको समभाव से किरणें प्रदान करते हैं, मेघ जैसे वारिवर्षण करते हैं, वैसे ही वे हैं। उनकी कृपा सबके ऊपर समान, अयाचित है। उनमें क्या फिर अमुक के प्रति प्यार, अमुक के प्रति नहीं, यह है? सबको प्यार करते हैं, सबके लिए चिन्ता करते हैं। इधर साधारण ब्राह्म समाज में जाते, और फिर नवविधान में भी जाते। और फिर आदि समाज में भी। सहजिया, कर्ताभजा इनको भी छोड़ा नहीं। वैष्णव, शाक्त आदि सब ही समभाव से उनका प्यार पाया करते। मुसलमान, क्रिश्चियन भक्तगणों को भी प्यार करते एक ही भाव में। रसिक* के ऊपर भी कृपा समभाव में वर्षित हुई थी। क्यों जाते नाना भक्तों के पास? वे ईश्वर को जो पुकारते हैं। एक बार एकजन भक्त के निकट जा उपस्थित हुए। भक्त अप्रस्तुत, कहने लगे, 'कहाँ तो मैंने जाना था आपके पास, आप ही आ गए।' ठाकुर हँसते हुए बोले, 'सुई भी कभी-कभी चुम्बक को खींचती है।' क्यों ऐसा आचरण?— समदर्शन जो वे।

स्वामी अरूपानन्द— माँ बतलातीं, 'ऐसा आनन्दमय पुरुष और कहीं देखा नहीं, मानो पाँच वर्ष का बालक। ऐसा क्या कोई और होता है?'

श्री म *(सहास्य)*— हाँ। केशवसेन के यहाँ खाकर आए। हम से कहा : किसी को कहना मत। नहीं तो काली-मन्दिर में घुसने नहीं देंगे ना। अगले दिन देखा, खजांची पास से जा रहे हैं। ठाकुर स्वयं ही बतला रहे हैं, 'देखो, कल केशवसेन के यहाँ गया था। खूब खिला दिया। वह धोबी या नाई ने खिलाया, यह पता नहीं। अच्छा, इससे मेरी कुछ हानि हुई?' खजांची हँसकर कहने लगे, 'उससे क्या हुआ, आपके लिए तो किसी में भी दोष नहीं है।' कैसे बालक स्वभाव!

---

* श्री दक्षिणेश्वर का भंगी।

''*(सहास्य)* केशवसेन के यहाँ जाने के कारण कप्तान बड़ा क्रोध किया करते। केशवसेन ने लड़की ब्याह दी थी कूचविहार में, और फिर विलायत भी हो आए थे; कप्तान ये सब बातें पसन्द नहीं करते थे। रोज़-रोज़ कहा करते, तब एक दिन ऐसा जवाब दिया कि मुख एकदम बन्द हो गया। कहा था, 'तुम क्यों जाते हो लाट साहब के पास हैण्डशेक करने? तुम रुपए के लिए तो जा सकते हो, और हरिनाम के लिए जाने में ही है जितना भी दोष!' कप्तान तो एकदम चुप। वे थे नेपाल के राजप्रतिनिधि। ठाकुर उन्हें खूब प्यार किया करते थे। वे कहा करते, 'बंगाली लोग कैसे मूर्ख हैं— पास में ही माणिक (श्रीरामकृष्ण) रहते हैं, पहचानते नहीं।' बिना माणिक बने क्या माणिक को पहचान सकता है कोई?

''ठाकुर का भाव है, बेर के वृक्ष पर काँटा रहेगा ही। हमें उसे देखने की क्या जरूरत? बेर तोड़कर *(हाथ से अभिनय करके मुख में देते हुए)* बेर खाने आया हूँ, बेर खाऊँगा।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर की भावना समस्त जगत् के लिए। वे आए थे सकल जीवों के लिए। *(सहास्य)* ब्राह्म समाज के दल-वल देखकर pun (ठट्ठा) करके कहा करते, 'अच्छा, दल-वल कहाँ होता है— गड्ढ़े तालाब में ही ना?' नदी, सागर इन सब में वह ठहर सकता नहीं। इंगित किया था, 'मैं सागर हूँ, मुझ में दल* नहीं।'

''आहा, उनके बिना क्या हमारा और कोई उपाय है? कितनी चिन्ता किया करते! 'ढू' (सिर) मारना (रक्षा करना) तक सिखला दिया। मिहिजाम में देखा करता बकरियाँ बच्चे को 'ढू' मारना सिखा रही हैं— माथा ऊँचा करके। आत्मरक्षा किस प्रकार करेंगे, वही सिखा रही थीं। ठाकुर ने भी भक्तों को आत्मरक्षा करना सिखला दिया था। नूतन ब्रह्मचारी जो संन्यास लेंगे, उनके लिए बातें बतलाते, 'वे स्त्रियों का चित्रपट तक भी नहीं देखेंगे।' गृहियों के लिए कहा, 'एक बिछौने पर सोएँगे नहीं।' अन्तरंगों को ऐसे सिखाते— माँ की न्यायीं। उनके पालन करने से दूसरे भी सीखेंगे।''

---

* दल = जल में होने वाली एक बेल, तृण विशेष; दूसरा अर्थ सम्प्रदाय

(3)

जनैक भक्त— ठाकुर के चले जाने पर माँ की क्या अवस्था हुई ?

श्री म— जब ठाकुर की देह गई, माँ ने कहा, 'यह उनकी माया-देह चली गई। चिन्मय देह नित्य विराजमान है।' *(सहास्य)* एक बार हृदय मुखर्जी ने कहा, 'मामी, मामा जी को आप पिता कह दें, तो पाँच सेर 'सन्देश' खिलाऊँगा।' माँ ने कहा, 'बेटा, तुम्हें सन्देश खिलाने नहीं पड़ेंगे। मैं वैसे ही कहे देती हूँ, वे मेरे बाप, माँ, गुरु, सखा, पति— सब ही वे हैं।' सब अवस्थाओं में ही पा लिया था कि ना। कैसा विश्वास है माँ का!

जनैक भक्त— माँ की उन्होंने पूजा की थी ना?

श्री म— हाँ।

स्वामी अरूपानन्द— मैंने माँ से पूछा था। उन्होंने बतलाया : फलहारिणी पूजा के दिन हुई थी। जहाँ पर अब ठाकुरघर में गंगाजल का मटका है, वहीं पर आसन हुआ था। एकजन ने आयोजन कर दिया था। ठाकुर ने कपड़े पहना दिए थे, पैरों में आलता (महावर) तक लगा दिया था।

वृद्ध भक्त— माँ को लज्जा नहीं हुई ?

श्री म— वे भाव में जो थीं। उन्हें क्या बाह्य ज्ञान था?

स्वामी अरूपानन्द— इस बात की भी जिज्ञासा की थी। माँ ने बताया, 'मुझे बाह्य ज्ञान नहीं था। जब ज्ञान हुआ, तब मन-ही-मन नमस्कार किया था।'

यह कथा सुनकर श्री म ने जिह्वा द्वारा दो बार आवेग-सूचक ध्वनि की।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— माँ की तब उन्नीस वर्ष वयस् थी, 1872 ईसवी में पूजा हुई थी। पचास वर्ष हो गए।*

स्वामी अरूपानन्द— माँ थीं तब सोलह वर्ष की।

श्री म— नहीं, रिपोर्ट पाने में तुम्हें भूल हुई है। उन्नीस वर्ष की थीं।

---

* अब तो प्राय: एक सौ पैंतालीस वर्ष ही हो गए हैं।

जनैक भक्त— क्या आपने ठाकुर और माँ में बातें होती देखी हैं, जब वे खाना देने जातीं थीं।

श्री म— कभी-कभी उस ओर जाकर वहाँ नहबत के परे खड़े बातें करते हुए देखा गया है। माँ के संग गोलाप माँ, योगीन माँ, गौर माँ, ये सब रहती थीं; बिन्दा दासी बीच-बीच में आती थी— थोड़े समय के लिए। साबिर माँ भी थीं। इतना-सा कमरा, इतने लोग! और फिर इसमें ही सब चीज-बस्त भी रखी रहतीं।

स्वामी अरूपानन्द— माँ बतलातीं, इसी घर में ही जीवित सींगी मछलियाँ भी रहती थीं ठाकुर के लिए। उनका कल-कल शब्द होता रहता था। माँ दो तले की सीढ़ी पर बैठकर जप करतीं। षोडशी पूजा के दिन कपड़े पहनाने की बात का उल्लेख करके पीछे लक्ष्मी दीदी ठट्ठा करके माँ को कहा करतीं थीं, 'तुम्हें लज्जा नहीं आई, वह किस प्रकार करवाया पति द्वारा?'

नवागत भक्त— साधन-भजन के विषय में क्या कहा करते?

श्री म— एक दिन एक भक्त कुछ चने लिए जा रहे थे, जप की संख्या रखने के लिए। एक सौ आठ जप होने पर एक को अलग करके रख देंगे। यह देखकर ठाकुर चने माँग कर ले गए और कहने लगे, 'यह क्या? इससे तो अहंकार हो जाएगा कि मैं इतना जप करता हूँ! इससे तो अच्छा है कि बैठे-बैठे खूब जप करते जाओ। ये चने तो चाहे मुझे दे दो, मैं पकाकर खा लूँगा।' *(सब का हास्य)*। खूब जप-ध्यान करने को कहा करते।

''अहंकार होगा, इस कारण अधिक तीर्थ-दर्शन करने के लिए भी नहीं कहते थे। पूछते, 'काशी, वृन्दावन तो हो आए हो?' यही काफी है। एक ज्ञान का और एक भक्ति का स्थान। अधिक करने पर गप्पें मारेगा मैंने यह कर लिया है, मैंने वह कर लिया है। कितना करके रक्षा किया करते।

''यदुमल्लिक की बाड़ी पर एक बड़ी सभा हुई— बहुत लोग थे। ठाकुर ने केशव बाबू से पूछा 'कहो, मेरी कितनी (ज्ञान-भक्ति) हुई है, वजन बताओ।' बार-बार कहने पर केशव संशयचित्त से कहने लगे, 'सोलह आना।'

---

* लोक-पोक = कीड़े-मकौड़े

झट उत्तर दिया, 'नहीं, तुम्हारी बात का विश्वास नहीं होता, तुम नाम-यश, देह-सुख लिए हुए हो। नारद, शुकदेव कहते तो चाहे विश्वास होता।' देखिए, जगत् जिसे मानता है उसी केशव बाबू की बात भी नहीं ली। फिर साधारण जन की बात, popular applause, का क्या मूल्य? लोक-पोक।* उनको पहचानने की सामर्थ्य किसमें है? निज को निज ही पहचाना था।

''सर्वदा समाधिस्थ पुरुष! सब ही माँ— सर्वदा माँ-माँ! सीता की बात कहकर निज की अवस्था का संकेत किया करते। सीता लंका में रहती थीं बन्दिनी। हनुमान ने देखकर आकर राम को बतलाया, 'यम आना-जाना कर रहा है।' राम के चिन्तन में बाह्यज्ञान लुप्त हो गया है— प्राय: शववत्। जभी यम आना-जाना करता है। यम तो सूक्ष्म शरीर लेता है— वह तो राम के चिन्तन में निमग्न है। अब यम क्या ले जाए फिर? जभी आना-जाना करता है। ठाकुर की अवस्था भी वही— माँ को छोड़ कुछ जानते ही नहीं।''

जनैक भक्त— किस भाव में उनका चिन्तन करना उचित?

श्री म— जिस किसी भी भाव में करने से होगा— रूप, लीला, महावाक्य। अनजाने में चिन्तन कर लेने पर भी उद्दीपन होगा। महेन्द्र डॉक्टर की चर्चा में कहा करते, 'इसे, 'जपध्यान करो', यह बात कहने से वह सुनेगा नहीं।' अंग्रेज़ी पढ़ा व्यक्ति जो है! उसके द्वारा अन्य भाव में चिन्तन करवा लिया करते। महेन्द्रबाबू ने बतलाया था, 'कल रात्रि में मुझे निद्रा नहीं हुई। केवल भय होने लगा, ठण्ड न लग जाए— खिड़कियाँ सब खुली हुई हैं।' काशीपुर उद्यान में ठाकुर तब अस्वस्थ थे। उनकी चिन्ता में ही तो निद्रा नहीं हुई। उनके द्वारा इसी भाव में चिन्तन करवा लेते।

भक्त— ठाकुर को स्पर्श करने मात्र से ही भाव हो जाया करता?

श्री म— होता था, तो भी सब को नहीं। शुद्ध सत्त्व जो होते, उनको हुआ करता। जिनका मन शुद्ध नहीं, उन्हें नहीं होता था। किन्तु देखने से उद्दीपन हो जाता था।

अब रात्रि प्राय: नौ। श्री म अरूपानन्द के हाथ में जयरामवाटी के मातृ-मन्दिर-प्रतिष्ठा-उत्सव की विवरणी देकर कहने लगे : उद्बोधन में प्रकाशित

होने से बहु लोगों का कल्याण होगा।

भक्तों के संग श्री म गा रहे हैं— 'जय-जय रामकृष्ण नाम गाओ रे।'

कोलकता; 19 मई, 1923 ईसवी, शनिवार।
5 ज्येष्ठ, 1330 (बंगला) साल, शुक्ला पञ्चमी।

सप्तम अध्याय

काण्ट का 'अज्ञात और अज्ञेय' श्रीरामकृष्ण का प्रत्यक्ष

(1)

मिहिजाम में श्री म के स्वास्थ्य में बहुत उन्नति हुई थी। कोलकता के जलवायु में स्वास्थ्य अब फिर खराब हो रहा है। तीन-चार दिन हुए सर्दी लग गई— गले का स्वर भारी है; तथापि दोतल की बैठक में भक्तों के संग बैठे हैं। अब वेला प्रायः छः। शुकलाल, डॉक्टर, विनय, छोटे जितेन और नलिनी तथा जगबन्धु हैं। एक नूतन भक्त आए हैं, वयस तीस के ऊपर। उनके साथ बातें कर रहे हैं।

श्री म *(नवागत के प्रति)*— मरुभूमि में जैसे ओएसिस (मरूद्यान), वैसे ही है संसार में साधुसंग। मरुभूमि में तृष्णार्त्त हो जन छटपट करता है, और सम्मुख ओएसिस देखकर उसमें जाकर आश्रय लेता है, तब प्राण बचता है। उसी प्रकार संसार की यातना से अस्थिर होकर व्यक्ति साधुसंग रूपी ओएसिस में आश्रय लेता है।

श्री म *(नवागत के प्रति)*— ज्योग्राफी (भूगोल) पढ़ा तो है ना? ओ-ए-एस-आई-एस (oasis) मरुभूमि में ओएसिस देखकर क्या करता है व्यक्ति?

नवागत— उसमें आश्रय लेता है।

श्री म *(संग-संग)*— उसमें आश्रय लेता है। न ले तो क्या हो?— मर जाता है।

भक्त— मर जाता है।

श्री म— उसी भान्ति संसार के ओएसिस— साधुसंग का जो आश्रय नहीं लेता, वह मर जाता है।

इतने में योगेन, शान्ति, अमृत, बड़े अमूल्य, सुखेन्दु, सुरपति और गदाधर आ उपस्थित हुए। गोआलन्द से एक भक्त आए हैं। श्री म का शरीर है अस्वस्थ, इसीलिए 'कथामृत' पाठ करने को कहा।

छोटे नलिनी पढ़ रहे हैं— प्रह्लाद ने बालक की न्यायीं स्तव किया। भक्त-वत्सल नृसिंह स्नेह से देह चाट रहे हैं।

श्री म— भक्त ऐसा प्रिय! नृसिंह की रुद्र मूर्त्ति देखकर देवगण भयभीत। सबने परामर्श करके उनके अति प्रिय भक्त प्रह्लाद को सम्मुख भेज दिया। भगवान वात्सल्य से उनकी देह चाटने लगे। तब जगत् शान्त हुआ। तभी तो ठाकुर कहते, 'भक्त और भगवान एक।'

पाठ चल रहा है :

ठाकुर मणि को कह रहे हैं— लज्जा नहीं आती, लड़के-बच्चे हो गए हैं और फिर स्त्री-संग? घृणा नहीं आती पशुवत् व्यवहार से भी? लार, रक्त, मल-मूत्र इनसे भी घृणा नहीं करता? जो भगवान के पादपद्म का चिन्तन करता है उसको परम सुन्दरी स्त्री भी चिताभस्म की भान्ति बोध होती है। जो शरीर रहेगा नहीं— जिसके भीतर हैं कृमि, क्लेद, श्लेष्मा इत्यादि अपवित्र वस्तुएँ— उसी शरीर को लेकर आनन्द— लज्जा नहीं आती?...

श्री म— गुरु-कृपा बिना ये काम, क्रोधादि जय करना है असम्भव। शून्य (अन्धकार) में चलना जैसे है असम्भव, वैसा ही असम्भव। उनकी कृपा होने पर, भक्ति-लाभ होने पर, होता है। वे कहते, चूना लगाने से जैसे जोंक झड़ पड़ती है, वैसे ही भक्ति होने पर ये सब चले जाते हैं। उनके प्रेम की एक बूँद पा लेने पर कामिनी-काञ्चन तुच्छ हो जाते हैं।

पाठक पढ़ रहे हैं :

किन्तु संसारी लोगों को सर्वदा साधुसंग आवश्यक। सब को ही दरकार, संन्यासी को भी दरकार। तो भी संसारियों को विशेषत:। रोग लगा ही है, कामिनी-काञ्चन के मध्य में सर्वदा रहना पड़ता है।

श्री म— साधुसंग सिवा और उपाय नहीं है। यही एक ही सब कुछ ठीक कर देता है। शास्त्र पढ़ो— उसका अर्थ ही बोध नहीं होगा, साधुसंग बिना किए। साधुसंग करने पर तपस्या करने की इच्छा होती है, तब धारणा होती है। अनेक ही शास्त्र खरीद कर अपने आप पढ़ते हैं, किन्तु उसमें धारणा नहीं होती। Concentration (एकाग्रता) कहाँ? साधुसंग करने से वह होती है। *(भक्तों के प्रति)* यही जो आप मठ में जाते हैं, साधुसंग करते हैं, इससे हजार शास्त्रों के पढ़ने का काज हो जाता है।

''ठाकुर बतलाते, 'कामिनी-काञ्चन ही माया।' यह योगभ्रष्ट करती है। मन स्वभावत: कामिनी-काञ्चन में जाता है। यही है महाव्याधि। किन्तु औषध खा लेने पर आराम हो जाता है। औषध है साधुसंग और प्रार्थना— निर्जने गोपने व्याकुल होकर प्रार्थना।

''केवल पढ़ने से कुछ भी होता नहीं— साधन बिना किए। साधुसंग करने से साधन करने की इच्छा होती है, साधु को साधन करते हुए देख कर। जो धनी हैं, तथापि भक्तिमान हैं, समझना होगा पूर्वजन्म में साधन करते-करते भोग-वासना आने से योगभ्रष्ट हो गए थे। तो भी इस जीवन में बाकी भोग शेष हो जाने पर ही शान्ति प्राप्त करेंगे।''

पाठक पुन: पढ़ रहे हैं— मणि ने अल्प वेदान्त देखा हुआ है; और फिर वेदान्त की अस्फुट प्रतिध्वनि काण्ट, हेगल आदि जर्मन पण्डितों के विचार कुछ पढ़े हुए हैं।....

श्री म *(सहास्य)*— जिसे काण्ट Unknown and Unknowable (अज्ञात और अज्ञेय) कहते हैं, उसके ही ठाकुर ने दर्शन किए। और फिर कमरा-भरे लोगों के सामने प्रतिज्ञा करके कहते हैं 'माइरि बोलछि, मा ऐयेछेन।' (प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, माँ आई हैं।) इसी बुद्धि द्वारा समझने जाओ तो यहाँ तक ही होता है। किन्तु वे हैं शुद्ध बुद्धि और शुद्ध मन के गोचर। जहाँ ऋषियों ने छोड़ दिया और साधन आरम्भ कर दिया, केवल वहाँ तक मात्र ही वे (काण्टादि) पहुँचे हैं। अब तक भी साधन का सम्वाद जानते नहीं। साधन की अवस्था में सब छोड़ते जाना पड़ता है— 'नेति नेति'। छत पर चढ़कर

दिखाई देता है— जिस ईंट, सुरखी द्वारा छत बनी है, उसी से ही सीढ़ियाँ भी बनी हैं। उनके दर्शन के पश्चात् समझ में आ जाता है, वे ही जीव-जगत् होकर रह रहे हैं। किन्तु साधना की अवस्था में 'नेति नेति'।

रात्रि के नौ। श्री म का शरीर अस्वस्थ। भक्तगण प्राय: सब ही चले गए। केवल कुछेक जन हैं। बड़े अमूल्य श्री म के निकट निजी दु:ख निवेदन कर रहे हैं।

बड़े अमूल्य *(विनीत भाव से)*— मन ऐसा क्यों होता है? कभी ऊपर उठ जाता है, कभी नीचे गिर जाता है।

श्री म *(कोमल स्वर से)*— गिरीष घोष ने भी ठाकुर से यही बात कही थी। ठाकुर ने उत्तर दिया, 'संसारे थाकले तरंग उठबेइ।' (संसार में रहने से तरंग उठेगी ही।) जभी दूर रहने की चेष्टा करना उचित। एक बोतल मद पीकर मतवाला हुआ हूँ क्यों? यह प्रश्न ही है पागलपन। तभी निर्जन में रहकर तना मोटा करके फिर संसार करने में दोष नहीं— ज्ञान, भक्ति लाभ करके संसार में रहना। तब भय कुछ कम है, किन्तु भय रहता ही है। तो भी वे यदि case (मुकद्दमा) take-up (ग्रहण) कर लें, तब फिर भय नहीं रहता। उनकी इच्छा हो तो वे ज्ञानियों को गृहस्थ में रख सकते हैं। उनके दर्शन के पश्चात् पैर बेताल नहीं पड़ता। जभी तो जब तक उनका दर्शन होता नहीं, तब तक साधुसंग, बीच-बीच में निर्जनवास, और रो-रो कर प्रार्थना करनी चाहिए। शरणागत होकर रहना।

''पाण्डवों को इतनी विपद्, किन्तु भगवान रहे संग-संग। क्यों? क्योंकि वे उनके ही जो शरणागत। उन्होंने उनका भार लिया हुआ था। सब का ही भार वे लेते हैं। उन्होंने सृष्टि की है कि ना— तुम कहो, चाहे न कहो। उनका look-out (कर्त्तव्य) है सब को देखना। तब भी तुम यदि शान्ति चाहते हो— अभय होना चाहते हो, उनके शरणागत हो जाओ। इसे छोड़ और पथ नहीं। 'तत्प्रसादात्परां शान्तिम्' (गीता 18:62)— उनकी कृपा से ही केवल शान्ति-लाभ होती है।

श्री म *(अमूल्य के प्रति)*— गढ़ के मैदान में ठाकुर को लेकर गए

भक्त लोग; बड़ा सरकस आया हुआ था, उसे दिखाने। एक रिंग (चक्कर) के भीतर वायुवेग से घोड़ा दौड़ रहा था। एक मेम इसी चलन्त घोड़े के ऊपर उचक कर चढ़ जाती थी और एक पैर पर खड़ी रहती थी। घोड़ा बेदम दौड़ रहा था। उसे देखकर आश्चर्य होता था। बाहर आकर ठाकुर भक्तों से कहने लगे, 'इस बीबी ने कितनी साधना की है, तब एक पैर पर चढ़ना सीखा है। इसी प्रकार पहले जो जन साधना करके, तपस्या करके, ज्ञान-भक्ति लाभ करके संसार में रहते हैं, उनके गिरने का भय नहीं रहता उतना। जभी उन्हें अपना बनाकर संसार में रहना चाहिए। उनसे ही कहना।'

बड़े अमूल्य— उन्हें पुकारता तो हूँ, प्राणों द्वारा अथवा मुख द्वारा, समझ नहीं पाता।

श्री म— इसकी कसौटी भी साधुसंग ही। साधुसंग करने पर समझ में आता है आन्तरिक या क्या। साधुसंग चाहिए— साधुसंग ही एकमात्र औषध।

20 मई, 1923 ईसवी।

(2)

ग्रीष्म काल। मॉर्टन स्कूल, दो तल का पश्चिम का बरामदा, अपराह्ण साढ़े छः। श्री म खड़े हुए रास्ते के लोगों का चलाचल दर्शन कर रहे हैं। सुखेन्दु, शान्ति, योगेन, शुकलाल और जगबन्धु भी संग खड़े हुए हैं। निविष्ट चित्त से जनता-दर्शन कर रहे हैं। कुछ काल पश्चात् स्वगत बोल रहे हैं, ''विकार के रोगी; विकार के रोगी को कुछ भी अच्छा नहीं लगता।'' यह मानो श्री म के भावसागर की एक लहरी। क्षणभर में ही मस्त होकर दाशरथि राय का गान पकड़ लिया— 'ए कि विकार शंकरी पेये चरणतरी।' (यह कैसा विकार, शंकरी के चरण रूपी नैया पाकर भी!) गाना गाते-गाते कमरे में आकर भक्तों के संग में बैठ गए। अब बातें कर रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— आजकल है बड़ा chance (सुयोग), जिन्होंने ब्याह नहीं किया। ईश्वर के लिए जो हैं व्याकुल और अन्य के चाकर नहीं जो,

उनके लिए बड़ा chance (सुयोग) है। ठाकुर ने कितनी बार कहा था अन्तरंगों से, 'मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, जो मेरा चिन्तन करेगा सो मेरा ऐश्वर्य-लाभ करेगा, पिता का ऐश्वर्य जैसे पुत्र लाभ करता है।' जिन्होंने विवाह नहीं किया, वे इच्छा करने से अनायास ही इस ऐश्वर्य के मालिक हो सकते हैं। जो बहुदिन से विषयों में घुटते चले आ रहे हैं, वे हैं विकार के रोगी, कुछ भी अच्छा लगता नहीं, भोगवासना में डूबे हुए हैं, जभी सब अलूना लगता है।

सन्ध्या हो रही है। अब तक डॉक्टर, विनय, राखाल और मनोरंजन आ गए हैं। भक्तों के संग श्री म ने डेढ़ घण्टा ध्यान किया। तत्पश्चात् भक्तगण मिलकर गा रहे हैं, 'ऐसेछे नूतन मानुष देखबि यदि आय चले।' (नूतन मनुष्य (अवतार) आया हुआ है, चलो चलें यदि देखना चाहो।) राखाल गा रहे हैं, 'रामकृष्ण चरण-सरोजे मज रे मन-मधुप मोर।' (रामकृष्ण के चरण-कमलों में ए मेरे मन-मधुप, निमग्न हो जा।)

भजन समाप्त हुआ। बड़े जितेन और विरिंचि कविराज ने गृह में प्रवेश किया।

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— सुनते हो जितेन बाबू, जिन्होंने ब्याह नहीं किया और जो ईश्वर-जन्य हैं व्याकुल, उनके लिए है बड़ा chance (सुयोग)। बहुत से हैं विवाह बिना किए हुए— वे और प्रकार के हैं। उससे होगा नहीं— व्याकुल होना चाहिए। यदि कोई इच्छा करे तो इसी अतुल ऐश्वर्य का मालिक हो सकता है। जो बहुत दिनों से विषय-भोग करते आ रहे हैं, वे विकार के रोगी हो गए हैं, प्रलाप करते हैं, कुछ भी अच्छा नहीं लगता। एक कोठा भर मिठाई, बढ़िया-बढ़िया सब आहार। एक लड़के को छोड़ दो। वह यह खाएगा, वह खाएगा। और एकजन विकार-ग्रस्त को छोड़ो। कुछ भी उसे बढ़िया लगेगा नहीं। 'रबड़ी?' नहीं। 'बढ़िया सन्देश?' नहीं। 'आलूदम?' न। कुछ भी उसे अच्छा लगता नहीं। क्यों हुई यह अवस्था? बहु दिनों तक विषयों के मध्य रहने से अरुचि हो गई बढ़िया वस्तुओं से भी।

"आज प्रातः एकजन आया। ये सब बातें सुनकर रोने लगा। देखा, विकार कट गया है। नहीं तो क्या फिर ऐसी बातें अच्छी लगती हैं? कहने लगा, 'इसे छोड़ स्वर्ग और है कहाँ?' मठ में गया था एक दिन। मैदान में

बैठा। साँझ की बेला में साधुगण दल-के-दल टहल रहे हैं, देखकर सोचने लगा, 'इसे छोड़ स्वर्ग और कहाँ पाऊँगा?' कैसी उच्च भावना कर रहा है! विकार कट गए हैं, जभी तो सब लाल ही देख रहा है।

''विषय-वासना भीतर रहे— एक बिन्दु भी रहे तो भी समाधि होती नहीं। विषय-वासना— केवल रुपया-पैसा ही वासना नहीं। रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श आदि सब ही हैं। जिन्होंने विवाह किया नहीं, इच्छा करने से ही वे इस ऐश्वर्य के अधिकारी हो सकते हैं; ज्ञान-भक्ति, विवेक-वैराग्य, प्रेम-समाधि लाभ कर सकते हैं।''

कथामृत पाठ हो रहा है। 'मणि का गुरु-गृह में वास' पाठ चल रहा है। मणि जिज्ञासा कर रहे हैं, ''जी, निराकार साधन क्या होता नहीं?'' श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, 'होगा क्यों नहीं? वह पथ बड़ा कठिन है। प्राचीन ऋषि तपस्या द्वारा बुद्धि में बोध करते थे, ब्रह्म क्या वस्तु है, यह अनुभव करते थे। ऋषियों का परिश्रम कितना था! निज कुटीरों से प्रातः काल ही बाहर निकल जाया करते। समस्त दिन तपस्या करके सन्ध्या के पश्चात् लौटते। तत्पश्चात् आकर अल्प फल-मूल खाते।'

श्री म— ये सब बातें क्यों बतलाईं? क्योंकि, सम्भवतः उपस्थितों के मध्य से किसी को भी चैतन्य हो जाए, यदि वे कुछ भी करें। ठाकुर जो कह गए हैं, उसका टुक भी यदि कोई करे, तब भी हो जाता है।

बड़े जितेन— अच्छा, यह छोड़ क्या और कोई उपाय नहीं है?

श्री म *(गम्भीर भाव से)*— होगा नहीं क्यों? वे इच्छा कर लें तो क्या नहीं कर सकते। तथापि हैं साधन-सिद्ध, कृपा-सिद्ध, स्वप्न-सिद्ध। ऋषि-मुनि साधन-भजन करते हैं लोक-शिक्षा के लिए। एकजन को झट से हो गया, क्यों? क्योंकि उसका भाग्य सुन्दर था, तभी हो गया उनकी कृपा से। इसलिए क्या सब को ही इस भान्ति हो जाएगा? साधन करने से सबको हो सकता है। इसीलिए ऋषियों ने तपस्या की थी— उन्हें देखकर यदि कोई अल्प करे।

बड़े जितेन— संसारियों का है case serious (अवस्था गुरुतर)!

सुख, दुःख कितना कुछ तो!

श्री म— नहीं नहीं, यह नहीं। सुख-दुःख तो अवस्था-भेद के बिना और कुछ भी नहीं है। असल में तो सुख-दुःख नाम का कुछ भी नहीं— स्वप्न की भान्ति है। लड़कपन में ऐसा ही स्वप्न देखा करता था, गला दबा दिया है, निमन्त्रण खा रहा हूँ। स्वप्न भंग होने पर देखा करता, सब मिथ्या। ये सुख-दुःख भी वैसे ही। ईश्वर-दर्शन हो जाने पर तब इनका बोध नहीं रहता। 'सुखदुःखे समे कृत्वा' (गीता 2:38) 'समलोष्टाश्मकाञ्चनः' (गीता 14:24)— मिट्टी, पत्थर और सोना समान बोध होते हैं ईश्वर-दर्शन होने पर। सब सच्चिदानन्द।

21 मई, 1923 ईसवी।

(3)

श्री म दोतल के कमरे में फर्श पर बैठे हैं— पास में एक वृद्ध संन्यासी और कई जन भक्त हैं। अब अपराह्ण साढ़े छः। संन्यासी ढाका से आए हैं। श्री म आनन्द से उनके साथ बातें कर रहे हैं।

संन्यासी *(श्री म के प्रति)*— तब मेरा संन्यास नहीं हुआ था। ठाकुर के दर्शन करने का सौभाग्य मुझे मिला था। किन्तु मैं बड़ा अभागा हूँ। दर्शन होने पर भी कुछ हुआ नहीं। अब उनकी वाणी कुछ-कुछ समझ सक रहा हूँ।

श्री म— आप हैं परम सौभाग्यवान्। उनके दर्शन किए हैं और उनकी वाणी की सब धारणा हो रही है। अवतार का दर्शन करना और ईश्वर का दर्शन करना एक। जभी तो क्राइस्ट ने कहा था, '...he that hath seen me hath seen the Father.' (St. John 14:9) दर्शन और फिर उनकी वाणी की धारणा, यह क्या कोई कम सौभाग्य की बात? प्रतीत होता है तब आपका संन्यास नहीं हुआ था?

संन्यासी— न, तब तक जानता नहीं था कि मुझे यह चाकरी करनी होगी। अच्छा ही चल रहा है, किन्तु इस चाकरी में इन्कम टैक्स नहीं, चौकीदारी नहीं, न मालगुजारी है, कुछ भी नहीं।

श्री म *(सहास्य)*— हाँ।

तभी शुकलाल, डॉक्टर, विनय, राखाल, तारक, सुखेन्दु, छोटे जितेन, मुकुन्द प्रभृति भक्तगण आ जुटे।

संन्यासी— स्वामीजी (विवेकानन्द) के संग आलाप था। और विजयकृष्ण गोस्वामी भी स्नेह करते थे। स्वामीजी जब ढाका गए थे तब गोयालन्द से नारायणगंज तक स्टीमर में साथ गया था। उनके दर्शन किए थे और अब आपके दर्शन कर रहा हूँ। कोलकता आकर माँ काली के दर्शन करना जैसा है, आपके दर्शन करना भी वैसा ही है।

श्री म *(ईषत्हास्य सहित)*— न। आपने उनके दर्शन किए हैं, आप सौभाग्यवान्।

मीठा मुख करके संन्यासी ने विदा ली। अब सन्ध्या समागता। सब ईश्वर-चिन्तन कर रहे हैं। ध्यानान्ते मुकुन्द ने गाया, 'जय जय रामकृष्ण नाम गाओ रे।' इसके पश्चात् अन्तेवासी ने गाया, 'एई जे देखा जाय आनन्द धाम, अपूर्व शोभन भव-जलधिर पारे— ज्योतिर्मय।'

गान समाप्त होने पर श्री म ने छोटे जितेन से गत रात्रि का मठ विवरण सुना। जगबन्धु आज सुबह से शाम तक का विवरण बतला रहे हैं। बड़े जितेन ने प्रवेश किया, संग में एकजन पैन्शनर।

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— सुनिए, सुनिए जितेन बाबू, मठ का सम्वाद सुनिए— साधुओं की कथा हो रही है। गीता में है स्थितप्रज्ञ की बात। क्या डॉक्टर बाबू?

डॉक्टर— स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधी:किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥ (गीता 2:54)

श्री म— 'स्थितधी: किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्' अर्थात् (ब्रह्मज्ञ) साधु कैसी बातें करते हैं, किस प्रकार रहते हैं, कैसे चलते-फिरते हैं। मनुष्य के दैनन्दिन जीवन के ऊपर और एक higher life (उच्च जीवन) है, इसका विश्वास हो जाए तब फिर यह प्रश्न आता है। मठ में ऐसे ही सब महात्मा रहते हैं जो 'स्थितधी' हैं। उनकी ही कथा हो रही है। उनकी बातें छोड़ हम

संसारियों के लिए और उपाय नहीं है। उनकी घड़ी है right (ठीक), हमारी घड़ी wrong (गलत)। इसीलिए नित्य मिलानी चाहिए, तब ही शान्ति, तभी आनन्द। उनकी बातें सुनकर चैतन्य हो जाता है।

जगबन्धु— आज महापुरुष महाराज ने कहा था, ''ढाका से एक युवक आए हुए थे एम.एस-सी. की परीक्षा देकर। कई दिन तक रहे थे, अब चले गए हैं। कहा था, मुझे भय लगता है, विवाह की बात हो रही है कि ना, वही सुनकर। उसका बड़ा भाई एम.ए. पास है। वह कहता है, विवाह नहीं करूँगा। बाप हेडमास्टर हैं पश्चिम में, मिर्जापुर में।''

श्री म— हाँ, इसी भान्ति चलता है संसार। कोई विवाह के डर से भागता है, कोई विवाह की बात होने पर दौड़कर आता है। कोई छोड़ता है, कोई पकड़ता है। यही है महामाया का खेल। संस्कार न रहें तो चैतन्य होते हुए भी विवाह कर लेता है। ऐसा खेल!

''ठाकुर ने कहा था, एक slender (सूक्ष्म) लाइन है। इसके इस पार पशुत्व, मनुष्यत्व— पार होते ही देवत्व। लाइन हुई भोग-वासना की अर्थात् कामिनी-काञ्चन की। कामिनी-काञ्चन छोड़ते ही देवता!''

बड़े जितेन *(हताश भावे)*—

'सकलि तोमारि इच्छा इच्छामयी तारा तुमि
तोमार कर्म तुमि करो मा, लोके बोले करि आमि।'

[सब तुम्हारी इच्छा है। तुम इच्छामयी तारा हो। तुम्हारा कर्म तुम करती हो माँ, लोग कहते हैं, मैं करता हूँ।]

श्री म— ठाकुर से एकजन ने यही बात कही थी, ईश्वर ही जब सब कुछ कर रहे हैं, तब हमारा कुछ न करने से भी तो चल जाता है। तत्क्षण ठाकुर धमक देकर बोले, 'तुम्हें और चौधराई करनी नहीं पड़ेगी। जब तक उन्होंने 'मैं' रखा हुआ है, तब तक उनसे प्रार्थना करनी होगी। इस 'मैं' को जब वे पोंछ लेंगे, तब वही बात। जब तक वह नहीं होता, तब तक उन्हें निर्जने गोपने रो-रो कर पुकारना चाहिए। जब तक 'मैं', तब तक 'तुम'; तब तक प्रार्थना।

पैन्शनर— जी, एक गाने में है, 'एक डाकेते फुरिये दे मा, जन्मेर जत

डाका-डाकि।' (हे माँ, एक ही पुकार से समाप्त कर दो मेरे सब जन्मों की पुकार।) वह कैसी 'डाक' (पुकार) है, कब आती है?

श्री म— ऐसे पुकारते-पुकारते ही आती है। मौखिक से आन्तरिक हो जाती है। ठाकुर ने कहा कि जल में डुबोने से जैसे प्राण छटपटाता है, वैसे ही ईश्वर-जन्य जब प्राण जाय-जाय होता है, तब ही वह 'डाक' आती है। ठाकुर ने 'डाकी' थी वह 'डाक'। माँ ने दर्शन दिया। प्रथम जबानी पुकारना चाहिए। अन्त में व्याकुल हो जाने पर अन्तर से आती है वह 'डाक'। तब ही उनका दर्शन।

बड़े जितेन— जी, 'आमि मले घुचिबे जंजाल' (मैं के मरने पर सारा जंजाल समाप्त हो जाता है) यह कौन-सा 'मैं' है?

श्री म— बज्जात 'मैं'। भक्त की 'मैं' में दोष नहीं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर निर्जने गोपने रो-रोकर पुकारने के लिए कहा करते थे, क्यों? क्योंकि उन्होंने स्वयं यह सब किया था कि ना। और यह है सहज पथ सबसे। कहा करते, कलि में अन्नगत प्राण, तिस पर आयु कम। समय कहाँ? अन्न की व्यवस्था करने में ही सब समय कट जाता है। पुकारूँगा-पुकारूँगा करते-करते ही बस इस ओर हो जाता है। जभी तो कहा करते, 'रो-रो कर केवल कहो उन्हें।' और भी कहा करते, भिन्न-भिन्न पथों द्वारा जो लाभ होता है, जो ज्ञान-ध्यान-भक्ति-कर्मयोग से लाभ होता है— रो-रो कर पुकारने से उनका दर्शन मात्र एक बार पा लेने पर भी वही लाभ होता है। तभी कहा करते, 'जो-सो करके उनका दर्शन करो। सब पथों का गन्तव्यस्थल हैं वे। मूल एक।' तभी कहा करते, 'माँ, मैं उतना कुछ नहीं जानता। तुम माँ और मैं पुत्र— यही मात्र जानता हूँ। तुम जो बोलोगी वही सुनूँगा, वही करूँगा।' ओह, कैसा त्याग! धोती तक अन्त में बगल में उठ गई— दिगम्बर, मानो पाँच बरस का बालक! कहा करते, 'विचार-शिचार बहुत हो गया। अब व्याकुल होकर निर्जने-गोपने कुछ दिन उन्हें पुकारो।' उनका दर्शन पा लेने पर तब सब पता लग जाता है, सब समझ में आ जाता है, सब संशय दूर हो जाते हैं— 'छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।' तब मन में फिर 'किन्तु' रहता नहीं। यह है सब से सीधा पथ; और इस समय के उपयुक्त।

''आहा, ऐसे हो गए थे, अन्य बात, अन्य चिन्तन सहन ही नहीं कर सकते थे— खाली 'माँ, माँ'। एक दिन छोटी खाट पर बैठे हुए हैं समाधिस्थ— दोपहर के पश्चात्। समाधि से नीचे आकर सुना अश्विनी बाबू के पिता अन्य सब बातें कर रहे हैं। झट हाथ जोड़कर कहा, 'आप लोग ऐसी बातें नहीं करें, इनसे मुझे कष्ट होता है; ईश्वर की बातें करें।' शरीर, मन ऐसे साँचे में गढ़े हुए थे कि अन्य बात सुनते ही शरीर में काँटे चुभने लगते।''

बड़े जितेन— जिसे जो विषय अच्छा लगता है, जिससे pleasure (आनन्द) होता है, वही विषय life की vitality (जीवनीशक्ति) बढ़ाता है। 'Survival of the fittest,' (शक्तिवान् ही बचता है), डार्विन का यह एक अन्यतम 'लॉ' (law) है।

श्री म— हाँ, सत्यशरण बाबू, डॉक्टर ने मेरे लिए यही व्यवस्था दी थी। घर के लोगों से कह दिया था, 'जो इन्हें अच्छा लगे, वही करने दीजिए।' अन्य डॉक्टरों ने मेरा बातें करना बन्द कर दिया था। एक मास तक ज्वर ने नहीं छोड़ा। सत्य बाबू की व्यवस्था के पश्चात् भक्तों के संग ईश्वरीय वार्त्ता करते-करते ज्वर बन्द हो गया— मैं ठीक हो गया! ठाकुर इसीलिए तो ईश्वरीय कथा छोड़ अन्य बात सुन अथवा बोल भी नहीं सकते थे। जभी कहा था, 'भक्त एक अलग ही जात है।' साधारण लोगों की भान्ति नहीं। भक्त ईश्वरीय बातों के बिना रह ही नहीं सकते। प्राण गया-कि-गया हो जाता है।

बड़े जितेन— ठाकुर को तो देखा नहीं, बालक की अवस्था समझ सकता नहीं। किन्तु उस दिन देखा जयरामवाटी माँ के मन्दिर का नक्शा और उत्सव का विवरण लेकर मानो बालकों की तरह छीना-झपटी आरम्भ कर दी थी (आपने)।

श्री म— वे जो क्या वस्तु थीं— माँ ठाकुरण! यह तो आप जानते ही नहीं ना। ठाकुर को तो पाया मात्र पाँच वर्ष; और माँ हमारी पैंतीस वर्ष तक रक्षा करती आईं। उन्हीं माँ की कथा— उनका मन्दिर।

कोलकता; 22 मई, 1923 ईसवी, मंगलवार।
8 ज्येष्ठ, 1330 (बंगला) साल, शुक्ला अष्टमी।

अष्टम अध्याय

अर्थ होने से अर्ध जीवन्मुक्त

(1)

ग्रीष्मकाल, अपराह्ण पौने सात। श्री म दोतल के कमरे में फर्श पर बैठे हैं। नित्य के भक्तगण अनेक ही आए हुए हैं। बेलुड़मठ से एकजन संन्यासी और नरेन ब्रह्मचारी आए हुए हैं। कुशल प्रश्नादि पर, सन्ध्या-दीप के आ जाने पर, श्री म ध्यान करने बैठ गए। अल्पक्षण परे श्री म मठागत साधुओं से आनन्दे वार्त्ता करने लगे। वे लोग कितने ही प्रश्न कर रहे हैं।

संन्यासी *(श्री म के प्रति)*— ठाकुर की कौन-कौन सी फोटो ठीक हैं?

श्री म — एक तो वह जो अब सर्वत्र पूजित होती है। शिव-मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठे थे— गम्भीर समाधि में थे, तब उतारी गई थी। भवनाथ फोटोग्राफर को ले आए थे, 1882 ईसवी। खड़े हुए की है एक— यह राधाबाजार में फोटोग्राफर की दुकान में ले जाकर ली गई थी। उस दिन वे झामापुकुर में आर० मित्र के घर आए थे, 9 दिसम्बर, 1881, शनिवार को। वह भी है उच्च समाधि की व्यवस्था की ही। और एक केशव सेन ने ली थी, संग में हृदय थे। ब्राह्मभक्तों के पास खूब जाया करते थे कि ना। वहाँ भी खड़े हुए हैं समाधिस्थ। कभी-कभी यह भी दिखलाई पड़ती है।

संन्यासी— आपने मथुर बाबू को नहीं देखा?

श्री म— न, उनके चले जाने के दस-ग्यारह वर्ष पश्चात् गया। शम्भुमल्लिक को भी नहीं देखा, नारायण शास्त्री को भी नहीं। हृदय मुखर्जी महाशय को देखा है।

''ऐसी अवस्था हो गई थी ठाकुर की— ईश्वर की कथा के सिवा और कुछ भी अच्छा लगता नहीं था। अन्य बात सुन भी नहीं सकते थे— सुन लेने पर ज्वाला होती। कोई अन्य बात बोलता तो हाथ जोड़कर मना कर देते। ठीक जैसे जलविहीन मछली की अवस्था। मछली को भूमि पर रखने से क्या करती है?— छटपट करती है। जल में छोड़ दो, फिर प्राण आ जाता है। वैसी ही ठाकुर की अवस्था— प्राण जाय-जाय होता अन्य बातों से। ईश्वर की बात होती, प्राण फिर आ जाता। पहनने के कपड़े बगल में, जैसे बालक! आहा, कितना प्यार होने से यह अवस्था होती है। 'माँ-माँ मुख में— कपड़े बगल में।' कभी-कभी सीता की बात से निजी अवस्था इंगित किया करते। कहा करते, राम ने जब सीता की खबर पूछी तब हनुमान ने कहा, 'देह भूमि पर पड़ी हुई है— और यम आना-जाना कर रहा है।' यह सूक्ष्म देह लेता है। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सूक्ष्म देह में रहता है। वही मन राम की चिन्ता में मग्न है। यम फिर और क्या करे— जभी आना-जाना करता है। ठाकुर भी माँ के चिन्तन में निमग्न। प्राय: ही कहा करते कमरा-भरे लोगों के सामने, 'माइरि बोलछि मा एसेछेन' (प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, माँ आई हैं।) और फिर बातें किया करते!''

संन्यासी— ठाकुर साधन-भजन की बात आप लोगों से किस प्रकार कहा करते?

श्री म—लाटू महाराज सोकर देरी से उठा करते। ठाकुर ने जभी एक दिन तिरस्कार किया था। इससे लाटू कोलकता भाग गए— देह नहीं रखूँगा, यह कहकर। राम दत्त चार-पाँच दिन बाद फिर लौटा ले आए दक्षिणेश्वर में। ठाकुर से अनुयोग करके कहने लगे, 'लाटू देह-त्याग करने गया था।' ठाकुर ने बालकवत् उत्तर दिया, 'मैंने तो ऐसा कुछ नहीं बोला। कहा, समय पर उठते नहीं क्यों? शरीर खराब हो, हाथ मुख धोकर ईश्वर का नाम करके फिर लेटे रहो।' राम बाबू के पूछने पर, लाटू यहाँ रहेगा कि नहीं, ठाकुर बोले, 'इच्छा हो तो रह सकता है।' इसके पश्चात् अपने हाथ से सब को प्रसाद दिया। लाटू को भी दिया। इस भाव से सिखाते, strict (कठोर) होकर।

''एक व्यक्ति सन्ध्या के समय ध्यान-जप नहीं करता था। एक दिन

सन्ध्या के समय निकट बिठाकर तिरस्कार करके कहा, 'साँझ-सवेरे सब काम छोड़ कर ध्यान-जप करना चाहिए। अब हो-हो करते फिरते हो— पीछे क्या पराई बहु-बेटी को भगा ले जाओगे?' इस भान्ति discipline (धर्मनीति) की शिक्षा दिया करते।

''एकजन भक्त एक बार रात्रि में कोलकता गए। अगले दिन उसी भक्त के आने पर पूछने लगे, रात्रि में कल कैसे जाना हुआ। भक्त ने बताया, 'यहाँ से बाहर जाकर बड़े फाटक से ज्यों ही पार हुआ, एक गाड़ी मिल गई। छः पैसे की सवारी से एकदम बीड़न स्क्वेयर पहुँचा। ऐसा क्यों नहीं होगा, आपके दर्शन करके जो जा रहा था।' ज्यों ही यह बात कही, त्यों ही तिरस्कार करने लगे। कहने लगे, 'यह कैसी बात तुम्हारी? ईश्वर क्या 'लाउ-कुमड़ा' (घीया कद्दू) फल देते हैं? वे अमृत फल देते हैं, eternal life— अमृतत्वम्।' उनसे 'लाउ-कुमड़ा' माँगना ही है कामिनी-काञ्चन माँगना।

''गिरीश घोष का चाकर बीमार हुआ। उसको ठाकुर का चरणामृत पिलाया गया। चंगा हो जाने पर एक दिन ठाकुर को यह बात बतलाते हुए कहा, 'अच्छा क्यों नहीं होगा— आपका प्रसाद जो खाया था।' संग-संग ही उत्तर दिया, 'यह कैसी हीन बुद्धि की बात है तुम्हारी! ईश्वर से 'लाउ-कुमड़ा' फल माँगना चाहिए? उनके पास से अमृतत्व लाभ होता है। रोग आराम करना— उसके लिए तो उन्होंने डॉक्टर कविराज कर दिए हैं, औषध कर रखी है।' आहा, कैसा ideal (आदर्श)! केवल ईश्वर, और कुछ भी चाहता नहीं। कहाँ मिलेगा यह ideal (आदर्श)?

''पश्चिम* के साधु सिद्धियाँ दिखलाते हैं। हो सकता है, दीवार में से पेड़ा बाहर निकाल दिया! पैदल गङ्गा पार हो गए! चुटकी राख से रोग हटा दिया! ऐसा ही अधिकांश करते हैं। ठाकुर इन सब से आन्तरिक घृणा किया करते।

''एक बार हृदय मुखर्जी ने कह दिया— कुछ शक्ति माँगने के लिए। ठाकुर का है बालक का स्वभाव। माँ से वही माँग ली। पीछे भक्तों को

* पश्चिम = बंगाल के पश्चिम के प्रान्त : पंजाब, उत्तर प्रदेश आदि।

बतलाया करते, 'माँ ने मुझे दिखा दिया : यह सब है 'वेश्या का 'गू'।' दिखलाया— वेश्या पड़-पड़ करके हग रही है। तब हृदय को धमकाना आरम्भ कर दिया, 'क्यों मुझे शक्ति माँगने को सिखलाया था?'

''सिद्धिशक्ति वेश्या का गू, अर्थात् अकिंचित्कर पदार्थ— तुच्छ वस्तु, कौन कह सकता है यह बात उन्हें छोड़? नाम-यश की चर्चा में कहा करते, 'झाड़ू मारता हूँ लोकमान्य को।' राधाकान्त-मन्दिर में गहने चोरी हो गए। मथुरबाबू ठाकुर को संग लेकर मन्दिर गए और कहने लगे, 'क्या देवता जी, अपने गहनों की भी रक्षा कर सके नहीं? किन्तु हंसेश्वरी देवी ने तो चोर पकड़वा दिया था।' ज्यों ही कहा, त्यों ही गर्जन कर उठे, और कहने लगे, 'छि: सेजो बाबू, तुम्हारी कैसी हीन बुद्धि की बात है यह? स्वयं श्रीलक्ष्मी जिनकी पद-सेवा करती हैं, उन्हें क्या इन सब का अभाव है? तुम्हारे निकट ही ये सोने के गहने हैं— ईश्वर के निकट मिट्टी के ढेलों के सिवा ये कुछ नहीं। उनकी बला जाती है देखने, तुम्हारे ये कुछ गहने रहें या जाएँ। तुम ही इन्हें बड़ा देखते हो, उनके पास तो ये हैं तुच्छ— अति तुच्छ।' कौन बोल सकता है ऐसी बात ठाकुर को छोड़?

''कैसी-कैसी अवस्थाएँ गई हैं— रुपया-पैसा छू तक भी नहीं सकते थे। केवल छूना ही नहीं, ग्रहण भी कर सकते थे नहीं— संचय करना तो दूर की बात। बराहनगर के महेन्द्र कविराज, पाँच रुपये दे गए रामलाल के हाथ में, ठाकुर की सेवा के लिए। सुनकर सोचा, दूध का देना है, दे दिया जाएगा। उसके दो घण्टे परे 'राम लाल, राम लाल' करके उसे निद्रा से उठा दिया। पूछा, 'रुपया किसको दिया है— तुम्हारी चाची को क्या?' रामलाल ने कहा, 'ना, आपको।' तब बोले, 'ना, ये रुपये रखे नहीं जाएँगे। जा, शीघ्र लौटा कर आ।' तब रात के बारह बजे थे। बहुत समझा-बुझा कर उस समय के लिए शान्त किया। अगले दिन प्रात: ही जाकर रुपए लौटा कर आया। भक्तों को पीछे कहा था, 'रुपये रखने पर मैं सो नहीं सका, मानो बिल्ली पंजों से खरोंच रही है।' ऐसी अवस्था!

''एम०डी० पास डॉक्टर भगवान रुद्र, एक बार आए। उनसे कहने

लगे, 'देखिए, मुझे यह क्या हो गया है, रुपया-पैसा छू तक नहीं सकता।' यह कहकर हाथ बढ़ा दिया और कहा, 'तुम एक रुपया रखकर देखो हाथों के ऊपर।' ज्यों ही रुपया रखा त्यों ही निश्वास बन्द हो गया और हाथ आड़ष्ट हो गया। देखकर डॉक्टर तो अवाक्! उनकी साइन्स में तो ये सब बातें नहीं हैं ना।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— सर्वदा कहा करते, निर्जने, गोपने रो-रो कर प्रार्थना करनी चाहिए। जितने कम लोग जान पाएँ, उतना ही भला। अन्तरंगों से कहा करते, 'मेरा चिन्तन करने से ही होगा।' कहा, 'प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, मेरा चिन्तन जो करेगा सो मेरा ऐश्वर्य लाभ करेगा, जैसे पिता का ऐश्वर्य पुत्र लाभ करता है।' उनका ऐश्वर्य है— ज्ञान-भक्ति, विवेक-वैराग्य, प्रेम-समाधि। आहा, कैसा आदर्श! रुपया-पैसा छू तक भी सके नहीं। 'लोकमान्य' को झाड़ू मारी। सिद्धाई को 'वेश्या का गू' कहा— और सोना-चाँदी 'मिट्टी के ढेले।' ईश्वर को छोड़ और कौन कह सकता है ये सब बातें?

''कहा करते, 'माँ, लोगों को रुपया इतना प्रिय है, वह उनके पास ही रहे।' उसकी बात कहने से तो फिर लोग आएँगे ही नहीं। वे तो लोगों का मंगल ही देखा करते केवल। जभी तो रुपए-पैसे की बात नहीं करते। सर्वदा माँ, माँ, किया करते। और भक्तों का कैसे कल्याण होगा, यही भावते। अन्य साधुओं के पास जाओ, यह चाहेंगे, वह चाहेंगे, फिर जाना ही नहीं होगा। यहाँ यह सब कुछ नहीं है। कहा करते, यहाँ पर पेला* नहीं। किस प्रकार भक्तों को अवसर हो और कर्म-त्याग हो,वही चेष्टा किया करते।''

संन्यासी— जी, पञ्चवटी के ध्यानकक्ष में जो शिवमूर्ति है वह क्या ठाकुर की प्रतिष्ठित है? कोई-कोई ऐसा कहते हैं।

श्री म— नहीं। वहाँ पर वह कुछ भी नहीं था। कुछ दिन ही तो हुए हैं ठाकुर को गए। इस बीच ही सुन रहा हूँ नाना प्रकार का सब होता जा रहा है। उनके सम्बन्ध में नाना बातें बोलते हैं। वहाँ पर यह कमरा ही नहीं था— पीछे सब हुआ है। उनके समय में केवल एक मिट्टी का कच्चा घर मात्र था।

---

* पेला = उत्सव उपलक्ष्य में संगीत आदि में दी जाने वाली दर्शनी, भेंट।

(2)

श्री म *(साधुओं के प्रति)*— एक बार बिशप-ऑफ-नॉरफोक (Bishop of Norfolk) ने 'टाइम' पत्र में एक चिट्ठी लिखी थी— क्रिश्चियन धर्म की वर्तमान अवस्था की आलोचना करते हुए। उसमें कहा था : ईशु क्राइस्ट का धर्म क्या अब कोई पालन करते हैं मिशनरी लोग? अब तो केवल चन्दा उठाना, चर्च बनाना इत्यादि ही ये लोग लिए हुए हैं। किन्तु ईसु के आदर्श से उनके apostles (शिष्यों) ने vow of mendicancy (संन्यास) लिया हुआ था। और अब ये क्या कर रहे हैं मिशनरी लोग? रुपया-पैसा, बाड़ी-घर, subscription (चन्दा) आदि ही में व्यस्त हैं। और फिर अन्त में लिखा था : मेरी इस बात पर सम्भवत: अनेक ही रोष करेंगे, किन्तु क्या करूँ, सत्य जो है, वही कह रहा हूँ। ईसु का कभी भी यह आदर्श नहीं था।

''पहले भगवान का दर्शन है या चन्दा उठाना, चर्च बनाना, ये समस्त कर्म हैं? उससे हुआ क्या है? रुपया जमा किया। उससे बड़ी-बड़ी हवेलियाँ हुईं। इससे अपने लिए सुविधा हो गई। दो कमरे मिल गए, नौकर-चाकर, गाड़ी सब हो गया। निजी सुख खूब हुआ। किन्तु असल काज का क्या हुआ— भगवान प्राप्ति का? जिसके लिए सब छोड़-छाड़ कर यह जीवन ग्रहण किया था, उसका क्या हुआ?

''अवतार जो शिक्षा देते हैं, वह क्या फिर बिल्कुल ठीक रहती है। ग्लानि तो आएगी ही। ठाकुर कहा करते, चैतन्यदेव केवल मात्र चार सौ वर्ष हुए आए थे। इस बीच ही क्या हो गया देखो! जिस चैतन्यदेव ने स्त्री के संग बात करने के कारण हरिदास का त्याग कर दिया था, उसी चैतन्यदेव के अनुवर्त्ती ही तो अब नेड़ानेड़ी में परिणत हो गए हैं। चैतन्यदेव स्वयं अवतार— उनकी शिक्षा ही रही नहीं।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर के पास 'पेला' नहीं था। किस प्रकार भक्तों का कल्याण हो— उनका कर्मत्याग हो और उन्हें (ईश्वर को) पुकारने के लिए अवसर हो, यही चिन्तन सदा किया करते थे। रुपए-पैसे का नाम तक भी लेते थे नहीं। खाली किस प्रकार उन्हें चैतन्य हो, यही चेष्टा रहती। वे ऐसे थे

कि देखने से ही चैतन्य हो जाता। अवतार का ठीक-ठीक भाव रहता नहीं, अन्त में ग्लानि आएगी ही। *(संन्यासी के प्रति)* 'पेला' के माने जानते हो?

संन्यासी— जी हाँ, यात्रा-वात्रा गाने की दर्शनी (प्रणामी, भेंट)।

श्री म— हाँ, वही 'पेला' ठाकुर कहते, यहाँ पर नहीं है। यहाँ पर सब 'फुरण' (मुफ्त) है। *(हास्य)* लोगों से रुपया माँगो तो आएँगे ही क्यों? पहले आते तो रहें। आने-जाने से ही चैतन्य हो जाएगा। रुपए की बात उठाने से फिर कौन आएगा? इतनी प्रिय वस्तु है रुपया।

''एक गल्प सुनाई थी : एक स्थान पर नाटक हो रहा था। एक ने चुपके से देखा, यहाँ 'पेला' है, देना पड़ेगा। तुरन्त भागा। और एक स्थान पर जाकर देखा, पेला नहीं है। लोगों की थी खूब भीड़। झट कोहनी से ऐसा करके *(अभिनय करते हुए)* ठेलठूल कर बीच में जाकर आसन जमा लिया। और मूछों पर ताव देकर गाना सुनने लगा। *(सब का हास्य)* यहाँ पर 'फुरण'— कुछ भी जो देना होगा नहीं। ठाकुर के पास वैसा ही 'फुरण'। पेला-शेला था नहीं। *(ब्रह्मचारी नरेन के प्रति)* क्या कहते हो, आपके देश में भी है यह सब कुछ?— इधर तो है।

ब्रह्मचारी— जी हाँ, सर्वत्र ही है यह प्रथा।

संन्यासी— इतना सब कुछ करके दिखा गए हैं, तब भी लोगों को चैतन्य होता है कहाँ?

श्री म— कठोपनिषद् में है श्रेय और प्रेय। प्रेय हुआ यही संसार— सुख-सुविधा। श्रेय हुआ ईश्वर। ईश्वर को कितने जन चाहते हैं? सुख-सुविधा ही खोजते हैं लोग। आहा, उनकी बातें क्या कहें— कैसी-कैसी अवस्थाएँ होती थीं! सर्वदा समाधिस्थ— नाना प्रकार की समाधियाँ, जैसे समाधियों की demonstration (प्रदर्शनी)। चक्षु स्थिर— पलकशून्य, मुखमण्डल ज्योतिर्मय। मन किसी (भाव) राज्य में विचरण कर रहा है। चक्षु कभी निमीलित, कभी अर्धनिमीलित, कभी खुले हुए— नाना अवस्थाएँ।

संन्यासी— एकजन ने कहा था, माँ की मृण्मय मूर्ति। ठाकुर ने कहा, चिन्मय; मृण्मय नहीं।

श्री म— हाँ, उन्होंने देखी थी माँ की चिन्मय मूर्ति। फर्श का संगमरमर, चौखट, दरवाजा, वेदी सब ही चिन्मय देखे थे एक दिन। वह प्रथम— पीछे तो सर्वदा ही माँ को चिन्मय रूप में देखा करते। प्रथम दर्शन में तो घर में जो बिल्ली थी, उसके भी चिन्मय रूप में दर्शन किए थे; और भोग की पूरी खिलाने लग गए थे। यह भी माँ का ही एक रूप, तभी।

''रुपया-पैसा माँग कर लेना तो दूर की बात, कोई अगर देना चाहता भी था तो कहते, 'नहीं, इसके द्वारा अपने परिवार का provision (बन्दोबस्त) करके निश्चिन्त मन से उनका नाम करो।' कहा करते, सर्वदा रुपए की चिन्ता रहने से अवसर ही होगा कब। जभी कभी-कभी कहा करते, 'जिनके पास धन है, वे हैं अर्ध जीवन्मुक्त। इच्छा करते ही निश्चिन्त मन से ईश्वर का नाम कर सकते हैं। किसी के ऊपर कोई भी बोझ जिससे न पड़े, सर्वदा यही लक्ष्य रखते। गृहियों के लिए ही उनको चिन्ता अधिक थी— जो विवाह करके कर्म में आबद्ध हो गए थे। उनको उनका नाम करने का अवसर किस प्रकार हो सकता है, सर्वदा ही यही भावना रहती।

''शम्भुमल्लिक को कहा था, ईश्वर तुम्हारे सामने आएँगे, तो तुम क्या हस्पताल, डिस्पेन्सरी माँगोगे, कि अमृतत्व माँगोगे? पहले ईश्वर, कि ये कर्म? ईश्वर क्या फिर इस प्रकार के कुछ कर्मों से तुष्ट होते हैं? वे ज्ञान, भक्ति चाहते हैं। कैसे ईश्वर-लाभ कर सकते हैं, उनका चिन्तन कर सकते हैं, निर्जने-गोपने रो-रो कर पुकार सकते हैं— इसी की चेष्टा किया करते ठाकुर। केवल मन्दिर, चर्च से वे तुष्ट नहीं। उनका श्रेष्ठ मन्दिर है भक्त का हृदय।''

साधु अब विदा ले रहे हैं— मठ में जाएँगे। मीठा मुख करवाकर एक भक्त ने सदर फाटक तक हरिकेन (लालटेन) के आलोक में पहुँचा दिया।

अब रात्रि सवा आठ।

(3)

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— महापुरुष दीर्घ काल तक साधन करते हैं, तब भी दर्शन नहीं देते। इसका अर्थ क्या है? इसके माने, इससे लोक-शिक्षा

होगी। लोग उन्हें देखकर तपस्यादि करेंगे।

''भक्तों के लिए ठाकुर की कैसी भावना (चिन्ता)! भक्त लोग सेवा नहीं जानते, इससे अपराध होता है, इसीलिए माँ के निकट plead (प्रार्थना) करते हैं, 'माँ, उनका दोष क्या? इतने समस्त काज में वे आ सकते नहीं ना।' माँ पीछे रोष न करें, तभी कहा करते ऐसी बातें। हाथ टूट गया एक बार, तारों की बाड़ थी, उसमें उलझकर गिर गए थे। माँ से कहने लगे, 'उससे तो यहाँ तक आने की बात नहीं हुई थी— उसका दोष क्या माँ?' राखाल गाड़ू लेकर पञ्चवटी पर्यन्त जाते थे। बाड़ थी पञ्चवटी और झाऊतले के बीच में। ठाकुर झाऊतले में बाह्य जाया करते। आहा, किस प्रकार रक्षा कर रहे हैं!

''एक बार मणि को लेकर पञ्चवटी में गए। पुराने बड़ के तले जहाँ डाली टूटी पड़ी है,वहाँ प्रणाम करवाया। कहा, यहाँ कितना ईश्वरीय दर्शन हुआ है— प्रणाम करो। मानो माँ हों! एक बार एकजन भक्त को एक कुरता (जामा) लाने के लिए कहा। तीन ले आए। एक रखकर बाकी लौटा दिए। भक्त के मन में कहीं पीछे कष्ट न हो, तभी किस प्रकार समझा रहे हैं— कह रहे हैं, 'अरे हाँ, कितनों की बात कही थी?' भक्त ने बतलाया, एक की। तब बोले, 'चाहे तुम अपने पास रख छोड़ो। दरकार होने पर फिर ले लूँगा।' कुछ पीछे फिर कहने लगे, 'यह भी ले जाओ। तुम्हारे पास ही रहें, तुम तो कोई फिर पराये नहीं हो।' देखिए कैसी बात! तब था उनका पूर्ण संन्यास, संचय कर ही नहीं सकते थे। भक्त से कहा, 'देखो, मेरे मन में कष्ट हो, ऐसा कुछ भी तुम लोग मत करना।' उनके मन में कष्ट होने से भक्तों का अकल्याण होगा, तभी ऐसा सावधान किया।

''एकजन को एक शतरंजी (दरी) लाने के लिए कहा। जानते थे, भक्त दूसरे से खरीदवा कर लाएगा। तभी बोल दिया, 'स्वयं जाकर खरीद कर लाना।' क्यों कही यह बात? क्योंकि यही एक संस्कार ही उसके मन में पड़ा रहेगा। सारा जीवन चिन्तन कर सकेगा उनकी बात— मैंने एक शतरंजी दी थी उन्हें। *(सहास्य)* शतरंजी खरीदने के लिए जाने पर हुआ बड़ा बखेड़ा। चाँदनी चौक में दुकान थी। एक जगह पूछते हैं, दाम कितना है? शतरंजी देखते हैं। पास वाली दुकान से और एकजन कहने लगा, यह अच्छी

नहीं है, दाम भी अधिक हैं। इस प्रकार दोनों में झगड़ा हो गया। इसी बीच भक्त भाग खड़े हुए। फिर अन्य दुकान से लाए। और एक बार एक भक्त को कुछ कलई की हुई कटोरियाँ लाने के लिए कहा। उसने कहा कि अमुक को जो बोल दिया है इनके लिए। ठाकुर ने कहा, 'होने दो। ले आने दो।' वे क्या अपने प्रयोजन के लिए कहा करते थे ऐसी बातें? भक्तों के कल्याण जन्य सेवा लिया करते। दो सैट कटोरियों की क्या आवश्यकता उन्हें? एक भक्त का थोड़ा–सा भोग बाकी था। उसे घर में भेज दिया। एक लड़का भी हुआ, दस वर्ष का होकर मर गया। उसे चाहे घर तो भेज दिया, किन्तु इधर 'कल' दबाते रहे। मध्य रात जगन्माता के पास रो–रो कर प्रार्थना करते रहे, 'माँ, उसे डुबाना मत।' लगाम अपने हाथ में है— इधर रहकर ही खींच रहे हैं।''

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— सुना जाता है, ठाकुर के भक्तों में से ऐसे भी हैं कोई–कोई, जो एक–दो सन्तान हो जाने पर भाई–बहन की तरह रह रहे हैं। एक बिछौने पर सोते नहीं। ठाकुर ने माँ को लाकर एक बिछौने पर आठ मास रखा। क्यों? भक्तों की शिक्षा के लिए। एक बिछौने पर शयन, तथापि देह–सम्पर्क नहीं— 'रमणी के संग में रह कर न रहे रमण।' जभी तो भक्त लोग साहस पाएँगे, उत्साह होगा भाई–बहन की भान्ति रहने का। सुनते हो शुकलाल बाबू, ऐसे भी कोई–कोई हैं, सुना जाता है। मन खराब होने के समय ये ही समस्त बातें चिन्तन करने से, ठाकुर का आचरण मन में लाने से साहस पाएँगे। इसीलिए था उनका सब ऐसा आचरण। उनका विवाह ही हुआ लोकशिक्षा जन्य। विवाह करके किस भान्ति रहना चाहिए वह स्वयं करके दिखलाया।

''कभी–कभी कहा करते, जल्दी–जल्दी कर–करा के खत्म करो। कब बस हो जाए, निश्चय नहीं। और कहा करते, कुछ थोड़ा–सा दूर निर्जने चले जाना चाहिए बीच–बीच में। लोग हिलना चाहते ही नहीं। पहले पचास होते ही काशी चले जाया करते थे। अब वैसा कहीं दिखाई नहीं देता। कितना क्रन्दन; जाने से चलेगा कैसे यह सब? क्यों? पहले लोग किस प्रकार किया करते थे? यही भावना करके करना चाहिए— आज मैं मर जाऊँ, चलेगा कैसे उनका? क्या सारा जीवन परिश्रम करना होगा संसार के लिए? जल्दी–

जल्दी बन्दोबस्त करके निकल पड़ना और बैठे-बैठे उनका नाम करना।''

(4)

अब कथामृत-पाठ हो रहा है। शुकलाल, डॉक्टर, बड़े जितेन, राखाल, सुखेन्दु, सुरपति, विरिंचि, ब्रह्मचारी रमेश आदि हैं। श्री म ने 'मणि का गुरु गृह में वास' निकाल दिया। जगबन्धु पाठ कर रहे हैं :

श्रीरामकृष्ण ने कहा— तुम्हारा योग भी है, भोग भी है। ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि। ब्रह्मर्षि, जैसे शुकदेव— एक भी पुस्तक पास में नहीं। देवर्षि जैसे नारद। राजर्षि जनक, निष्काम कर्म करते हैं।

श्री म— ठाकुर ने कहा, ईश्वर ने तीन श्रेणी के लोग किए हैं। प्रथम योगी। वे सर्वदा ही उनके चिन्तन में मग्न हैं। और कुछ भी माँगते नहीं— जैसे शुकदेव, नारद। फिर योग, भोग। यह भी है एक जमात। यह भी अच्छी। दोनों ओर ही हैं। उन्हें भी चाहते हैं और इधर का भी चाहते हैं— जैसे पाण्डव। इन्होंने जैसा भोग किया, वैसे ही भक्त भी। ईश्वर इनके संग-संग हैं। और केवल भोग, यह भी एक श्रेणी है। ये खाली हैं इसी में व्यस्त। इनसे यही creation (सृष्टि) रक्षा करवाते हैं। नाक सिकोड़ने से नहीं चलेगा— किसी से भी घृणा चलेगी नहीं। वे भ्रान्ति रूप में इनके भीतर रहकर यह समस्त करवाते हैं। उनकी माया से ही यह समस्त भागम-भाग हो रही है। सब कुछ ही आवश्यक है।

पाठ चल रहा है। ठाकुर सुरेन्द्र से पूछ रहे हैं, 'स्मरण, मनन तो है?'

श्री म— आहा, देखिए कैसा सहज कर दिया है। स्मरण, मनन रहने से ही हुआ। कितना नीचे उतरे हैं!

पाठक पढ़ रहे हैं। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं— अल्प साधन करना दरकार। गुरु ही सब करते हैं, तो भी अन्त में टुक साधन करवा लेते हैं।

श्री म— वे कहा करते, साधन करने से कोई-कोई सिद्ध हुए हैं। संगीत की साधना करके सिद्ध हुए रामप्रसाद। भक्तों से कहा था— निर्जन में

रो-रो कर गाना गाने से वे दर्शन देते हैं।

डॉक्टर बक्शी— साधन द्वारा होता है?

श्री म— निश्चय होता है। वह न होता तो क्यों गीता में कही यह बात— ''अनेकजन्मसंद्धिस्ततो याति परां गतिम्। (गीता 6:45) चाहे एक जन्म में न भी हो, कई जन्मों के बाद हो सकता है। महापुरुषों को भी साधना करनी पड़ती है— लोकशिक्षा जन्य।

''ठाकुर ने सुन्दर एक गल्प सुनाई थी : एक व्यक्ति ने शवसाधना करनी थी। वह शव के ऊपर आसन लगा कर बैठ गया। और एकजन बाग में टहलता हुआ छिप कर यह सब देखने लगा। इस समय एक बाघ आ गया। शव के ऊपर जो व्यक्ति बैठा हुआ था, उसे झपटकर ले गया। जो छिपा हुआ था वह तब आकर शव के ऊपर बैठकर माँ का नाम-जप करने लगा। देवी सम्मुख उपस्थित होकर कहने लगीं, 'वर माँगो।' व्यक्ति ने कहा, 'पहले एक बात का जवाब दो, पीछे वर माँगूँगा। इस व्यक्ति ने इतना करके सब आयोजन किया और उसे बाघ ले गया। मैं बाग में टहलता हुआ आया और उसकी वस्तुओं के द्वारा तुम्हें पा लिया— यह क्यों हुआ?' देवी ने कहा, 'बेटा, तुम्हारी अनेक जन्मों की साधना थी। टुक बाकी थी। वही अब हो गई। और उसका अब आरम्भ ही है।' ऐसा काण्ड है। साधन करके जो सिद्ध हुए हैं— वे ही अधिक हैं। कृपासिद्ध हैं कम।''

भक्त— समाधि किसे कहते हैं? कितने प्रकार की होती है?

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— समाधि क्या साधारण-सी बात? कितने जन्मों का परिश्रम हो, तब होती है। समाधि-लाभ को ही ईश्वरदर्शन कहते हैं। इसे ही सिद्धावस्था, आत्मदर्शन, भगवान-दर्शन, ब्रह्मदर्शन कहते हैं। समाधि साधारणत: दो प्रकार की है— सविकल्प और निर्विकल्प, अथवा साकार और निराकार। समाधि माने उनमें डूब जाना। Time and space (देश और काल) के पार चले जाना, perfect detachment from the sense-world (इन्द्रिय जगत् से परे चले जाना)। समाधिलाभ ही जीवन का उद्देश्य है। भोग-वासना की निवृत्ति होने पर यह अवस्था प्राप्त होती है।

''प्रथम दिन जब गया, देखा, वहाँ कमरा भरा लोग बैठे हैं। खड़े हुए ही मैंने सुना, ठाकुर बोल रहे हैं, 'जिसको ईश्वर की बात मन में आते ही किंवा बात सुनकर ही आँखों में जल आ जाए, और पुलक हो जाए, समझना होगा उसका कर्म-त्याग हो गया है, अधिक बाकी नहीं है।'

''कर्मत्याग हो जाने पर ही समाधि। समाधि में क्या होता है, कौन जाने? जिसको हुई है केवल वह ही समझ सकता है— मुख से बोला नहीं जाता। अवतारादियों की होती है यह अवस्था। दूर से तो 'हो-हो' शब्द सुना जाता है, किन्तु हाट में घुसने पर तब पता लगता है कहाँ क्या है। कौन-सी है आलू की दुकान, कौन-सी परवल की। हम हैं fortunate, (सौभाग्यवान)। जिसकी सर्वदा समाधि होती थी, ऐसे एकजन के संग में रहे हैं। जभी उनकी कृपा से कुछ-कुछ समझ में आ रहा है। ये सब कहने की बातें नहीं हैं— हृदय के अन्तर में अनुभव होता है। ठाकुर कृपा करके अपने स्पर्श द्वारा अथवा इच्छामात्र से ही यह अवस्था कर दे सकते थे। अपने भक्तों को उन्होंने यह अवस्था लाभ करवा दी थी।

''शास्त्र में समाधि की बात है— वह मानो बाजे के बोल मुखस्थ करना है। किन्तु हाथ में ला सकते नहीं। हाथ में लाना है जन्म-जन्म तपस्या करने पर उनकी कृपा द्वारा प्राप्त करना। समाधि एक बार ही प्राप्त करने में इतना कष्ट होता है और ठाकुर की नित्य मुहुर्मुहु यह अवस्था हुआ करती थी— मानो भूत चढ़ा हुआ हो। समाधि से नीचे उतरते समय कहा करते, 'अब कोरे पण्डित घासफूस की भान्ति लग रहे हैं।' अर्थात् तुच्छ, कुछ भी नहीं। हम भाग्यवान हैं। उनकी कृपा से इन समस्त बातों का glimpse (आभास) पा लिया है— कुछ-कुछ समझ में आ जाता है। नमक का पुतला समुद्र मापने गया, लौट कर फिर खबर ही नहीं दे सका— dissolve (लुप्त) हो गया। तब फिर कौन खबर दे? यही है Summum Bonum of life (मनुष्य जीवन का उद्देश्य)।''

कोलकता; 23 मई, 1923 ईसवी, बुधवार।
9 ज्येष्ठ, 1330 (बंगला) साल, शुक्ला नवमी।

नवम अध्याय

इसी पंक के भीतर से ही पद्मफूल फूटता है

(1)

ग्रीष्म के बाद आज प्रथम वृष्टि हुई है। श्री म वर्षा देखकर खूब आनन्द कर रहे हैं। इस जल में भी भक्तगण आए हैं। आठ-दस नूतन जन श्री म के साथ बातें कर रहे हैं। अब सन्ध्या प्राय: छ:।

श्री म *(नवागतों के प्रति)*— यही देखिए, वर्षा हो रही है, यह उनका ही विधान है। नहीं तो धान नहीं होगा, जभी वर्षा। यह सब देखकर भी मनुष्य क्या लेकर अहंकार करते हैं, बता सकते हैं आप लोग? ठाकुर ने एक भक्त को कहा था : तुम्हें यह सब सोचना नहीं होगा। तुम उन्हें पुकारो निर्जने, गोपने। कहो, दर्शन दो। यह सब लेकर सिर न घुमाना। यह उनका look-out (काज) है। जो सृष्टि-स्थिति-प्रलय करते हैं, उनकी सकल व्यवस्था ठीक है। जगत्-रक्षा इसी वृष्टि के होने से होगी, जभी इसे दिया है। जैसे वर्षा, वैसे ही सब ऋतुएँ उन्होंने की हैं, जब भी जिसका प्रयोजन है। खाली वर्षा होने से सब नष्ट हो जाएगा, जभी अन्य सारी ऋतुएँ। क्या कहते हो? मनुष्य चेष्टा करके यह सब कर सकता है? यदि नहीं कर सकता तो फिर कर्त्तागिरी ही नहीं रहती। कर्त्ता ही फिर कहाँ, एक बार भी तो विचार नहीं करता। इसी ग्रीष्म में प्राण जाय-जाय हो रहा था। कहीं कोई भी तो ग्रीष्म बन्द कर सका नहीं, कर्त्तागिरी करते हैं। सब उन्होंने करके रखा हुआ है— बीच में बोलता है, 'मैं कर्त्ता।' यह है उनकी ही माया का खेल। उन्होंने ही यह अज्ञान कर रखा है, नहीं तो जगत् ही न चले। यही जो वृष्टि हो रही है, इसमें क्या उनका हाथ नहीं देख पा रहे?

''मनुष्य इतना दुर्बल होता हुआ भी इसी मन, बुद्धि द्वारा उन्हें प्राप्त कर

सकता है। इसी पंक के भीतर से ही पद्मफूल फूटता है। मोड़ फिरा देना। जो मन-बुद्धि बद्ध करती है, वह ही फिर मुक्त करने का प्रयोग जान लेती है। जो विष प्राण लेता है, वही अमृत हो जाता है। प्रयोग जानना चाहिए। भगवान स्वयं आते हैं मनुष्य होकर यह सिखाने। ठाकुर यही अभी तो आए। उन्होंने सब से सीधा पथ दिखा दिया है। चलते रहो— शीघ्र काज होगा। कहा था, वह सब तुम लोगों को नहीं करना पड़ेगा, खाली निर्जने-गोपने रो-रोकर बोलो, 'दर्शन दो पिता'। और फिर अन्तरंगों से कहा, 'तुम्हें तो और कुछ करना नहीं होगा— मेरा ध्यान कर लेने से ही होगा।' कुछ तो करना चाहिए। कुछ करने पर ही उनकी कृपा होती है। तब सब समझ में आ जाता है।''

वृष्टि थम गई है। नवागत भक्तों ने विदा ली। सन्ध्या हो गई है। श्री म ध्यान करने लगे। अब रात्रि सवा आठ। श्री म उठकर बरामदे में गए। आहार करने ऊपर जाएँगे। भक्तों से कह रहे हैं, ''आप सब गान करें।''

सुखेन्दु भक्तों के संग गा रहे हैं :

'एमन मधुमाखा हरिनाम, निमाई कोथा पेयेछे।'

[ऐसा मधुमय हरिनाम निमाई ने कहाँ से पाया है?]

फिर ब्रह्मचारी रमेश के संग सब गा रहे हैं,

'जय जय रामकृष्ण नाम, गाओ रे।'

श्री म ने आकर इसी वन्दना में योगदान किया।

अब कथामृत-पाठ हो रहा है। वेदान्तवादी साधु को लेकर राम दक्षिणेश्वर आए हैं। तनिक पढ़ा जाने पर ही श्री म बातें करने लगे।

श्री म— एक बार पञ्चवटी में कई-एक साधु आए। वे ठाकुर के कमरे में गए। ठाकुर ने कहा, 'अच्छा जी, आप लोग जप-ध्यान निष्काम होकर तो करते हैं न?' साधुओं ने कहा, 'हाँ, जी।' 'जो करते हो, सब नारायण में तो अर्पण करके करते हो ना?' फिर और पूछने पर उन्होंने फिर कह दिया, 'हाँ, जी।' गीता में भी वही है— 'तत्कुरुष्व मदर्पणम्' (गीता 9:27)— आहार, यज्ञ, दान, तपस्या सब का फल मुझ में समर्पण करके करो, यह होने पर मुक्ति। बन्धन नहीं होगा। और इसके बाद ही छोटी खाट पर

जाकर गाउ-तकिये की ठेस देकर बैठ गए और मुस्करा रहे हैं। साधु देखकर आपस में कह रहे हैं, 'इसको परमहंस अवस्था बोलते हैं।'

''ठाकुर की शिक्षा-प्रणाली ही अन्य रूप। साधुओं को कैसे सिखा रहे हैं! वे लोग समझ ही न सके कि वे सिखा रहे हैं। कोई इसमें दोष नहीं पकड़ सकता। एक और है, जो जिसको मानता है, उसका नाम करके कहा करते। ब्राह्म लोगों के संग बातें होतीं तो विजय का नाम लिया करते— 'विजय यह कहता है।' इससे दो काज हो जाते। विजय के ऊपर उनकी श्रद्धा बढ़ जाती। और उनकी भी शिक्षा हो जाती। सम्भवत: ठाकुर की बात को तो वे लेते ही नहीं।''

तनिक चुप करके रहे। पुनराय बोलने लगे।

''एच० बोस के घर के लड़के बन्दूक से पक्षी मारा करते। उनके होते हुए भी मारा करते। कहने से बन्द हो गए थे। फिर मारने लग पड़े। तभी चिन्ता हुई, किस प्रकार यह बन्द हो। मना न किया गया तो मोहल्ले के सब लड़के निष्ठुर हो जाएँगे। सोच रहा था, उसी समय मन में आया एकजन ब्राह्म यदि मिल जाए, तो काम हो जाए। ओ माँ, सड़क पर ज्यों ही निकला, त्यों ही एकजन वृद्ध ब्राह्म बन्धु के संग मिलन हो गया। वे उसी समय उसी घर में गए— उनकी स्त्रियों से कह आए और पक्षी मारना मना कर दिया। घर के लोगों ने कहा, 'हमें पता नहीं था, लड़के अब और पक्षी नहीं मारेंगे।' मैं सड़क पर पौन घण्टा खड़ा रहा। आकर मुझे सब बतलाया। गुरु ही सब करते हैं। तभी भार देकर निश्चिन्त हो जाना।''

24 मई, 1923 ईसवी।

(2)

सन्ध्या का ध्यान हो गया है। श्री म दोतल के फर्श पर भक्तों के संग बैठे हुए हैं। बेलुड़ मठ से कई-एक साधु आए हैं। दो-एक साधु गृहस्थ की अत्यन्त प्रतिकूल अवस्था के भीतर से होकर बाहर निकले हैं। उनके त्याग, वैराग्य की बातें भक्तगण कर रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— आन्तरिक होने पर वे सब ठीक कर देते हैं। मनुष्य की बुद्धि में जो insuperable difficulty (दुर्लंघ्य विपद्) लगती है, उनकी इच्छा होने से वह भी दूर हो जाती है। अभावहीन, अचिन्तनीय, स्वप्न के अगोचर होने वाले व्यापार भी सब सरल हो जाते हैं। उनकी कृपा से पथ परिष्कृत हो जाता है। जभी आन्तरिक होना चाहिए। इन सब ने आन्तरिक कहा था, तभी हो गया।

बड़े अमूल्य— मठ में जितने भी साधु हैं, वे क्या सभी आन्तरिक होकर गए हैं?

श्री म— संन्यास ही जो सबसे अन्तिम है, सो तो नहीं। पथ पर खड़ा होना हो गया। वहाँ से गन्तव्य स्थल पर जाना सहज होता है। सम्पूर्ण क्या फिर एक दिन में होता है— चेष्टा करते-करते होता है। साधुसंग में भोग-नाश होता है, वह होते ही ईश्वर अच्छा लगने लगता है। ईश्वर अच्छा लगने लगे, उनकी ओर मन जाने लगे, तो दूसरी ओर कमी पड़ेगी। तब विषय अच्छे नहीं लगते, भोग में मन नहीं जाता। ध्रुव को राज्यलाभ हुआ, किन्तु उससे सन्तुष्ट नहीं हो सके। सत्संग की प्रार्थना की थी। सत्संग करने से ईश्वर सत्य, संसार अनित्य यह ज्ञान होता है।

"भगवान के दर्शन हो जाने पर, तब जगत् 'भूल' हो जाता है। अन्य कुछ भी मन में नहीं ठहरता। ठाकुर के यहाँ नाना प्रकार के संकल्प करके अनेक लोग जाया करते। कोई जप करेगा या ध्यान करेगा अथवा स्तव पाठ करेगा। ओ माँ, ज्यों ही उनके सामने पहुँचते, त्यों ही सब 'भूल' हो जाता। दर्शन ऐसी चीज! यहाँ आकर सब चुप। भगवान को पाने पर फिर सब विषयों से मन उठ जाता है। जैसे मधुमक्खी जब फूल पर बैठती है, तब अन्य ओर लक्ष्य नहीं रहता, मधुपान में मस्त। तब सब चुप।

"ठाकुर गल्प सुनाया करते : एकजन राजदर्शन करेगा। राजा इस समय सात ड्योढ़ियों के परे रहता है। दर्शक प्रथम ड्योढ़ी पार होकर देखता है, एक स्थूलकाय ऐश्वर्यशाली व्यक्ति बैठा हुआ है। मन-मन में सोचता है, यही राजा है। पूछने पर पता लगा कि यह राजा नहीं है। और एक ड्योढ़ी पर गया। यहाँ और भी ऐश्वर्यशाली और एक व्यक्ति दिखाई दिया। अब

जिज्ञासा करने पर पता चला यह भी राजा नहीं है। इस प्रकार करते-करते जितना ही आगे बढ़ता जाता है उतना ही ऐश्वर्य बढ़ता जाता है, और पूछने पर कहता है, मैं राजा नहीं हूँ। खाली, 'नहीं, नहीं।' सप्तम महल में ढुका, असली राजा को देखकर पूछने की और आवश्यकता ही नहीं हुई। वहाँ पर सब चुप। भगवान-दर्शन कर लेने पर बिलकुल चुप हो जाता है।

''जिस दिन तक दर्शन नहीं होता, उस दिन तक चेष्टा करनी चाहिए। चेष्टा के लिए संन्यास लेना, मठ में जाना, साधु होना। चेष्टा करते-करते आन्तरिक होता है। संन्यास-आश्रम और ब्रह्मचर्य-आश्रम इन स्थानों से गन्तव्य-स्थल पर पहुँचना सहज होता है। गन्तव्य-स्थल हैं भगवान। चार आश्रम हैं— ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास। प्रथम और चतुर्थ द्वारा सहज होता है। द्वितीय आश्रम में होना बहुत कठिन, प्राय: होता ही नहीं। तो भी ईसु जैसे कहा करते with men this is impossible but with God all things are possible. (St. Matthew 19:26) अर्थात् उनकी इच्छा से सब हो सकता है, जैसे जनकादिकों का हुआ। तृतीय आश्रम वानप्रस्थ, तब शरीर वृद्ध हो जाता है, देह और मन की शक्ति कम हो जाती है। तब भी पहुँचना कठिन।

''ईश्वर-दर्शन होने पर कैसा होता है, जानते हो? जैसे पाँच वर्ष का बालक, किसी भी गुण के वश नहीं। जैसे crystal (स्वच्छ स्फटिक) जवा कुसुम के सामने धरो, लाल दिखाई देगा, कोयले के सामने धरो, काला दिखाई देगा। त्रिगुणातीत। जभी ठाकुर को देखा करता, कोई नाम पूछता तो कहा करते, 'कोई कहता है भट्चाज्, कोई परमहंस।' किसी भी गुण के भीतर नहीं। जब ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में बातें करते तो ऐसा लगता मानो वे ब्रह्मचारी हैं। जब देश जाते, तो सब ही कहा करते, 'अब गदाई आया है। घर सजा रहा है, गृहस्थ करेगा।' और फिर जब भक्तों के संग में, तो कोई देखता है संन्यासी, कोई परमहंस। किसी भी गुण के वश में नहीं, मानो बालक— crystal (स्फटिक)।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— 'साधु-दर्शन करने के लिए आते समय हाथ में कुछ लेकर आना चाहिए,' यही कहा करते। क्यों? क्योंकि इससे मन में रहेगा, मैंने उनकी सेवा की हुई है। ठाकुर, देवता, साधु की सेवा स्वयं

करनी चाहिए। उससे impression (धारणा) अधिक होती है। ठाकुर किसी-किसी को और भी कहा करते, 'अपने हाथ से खरीद कर लाओगे।' दस रुपए से जो नहीं होती, उसकी अपेक्षा सामान्य-सी एक वस्तु से ढेर प्रीति हो जाती है। भक्तों में से अनेक ही थे गरीब— भूखे-नंगे। जभी कहा करते, 'एक पैसे की इलायची लेते आओगे। या दो पैसे की बर्फ लेते आओगे। कम-से-कम एक हरड़ ही हाथ में लेते आओगे।' कभी-कभी दस्तंदाजी से पूछा करते, 'बतलाओ, मैं पूर्ण हूँ कि अंश, वजन बतलाओ।' उसका अर्थ हुआ, मुझको जो जितना समझेगा, उतना ही ऊपर उठेगा। जो गुणातीत के रूप में जानेगा, वह वही होगा। गीता में है 'तरन्ति ते,' (गीता 7:14)। संसार-समुद्र पार हो जाएगा— जो उनको जानेगा। वजन की बात यूँ ही नहीं कहते थे, इसका significance (अर्थ) है।

''ईश्वर के दो विभाग (डिपार्टमैंट) हैं, विद्यामाया और अविद्यामाया। अविद्यामाया ही मन को घुमाती रहती है। रामप्रसाद ने एक बार कहा था, 'प्रवृत्ति, निवृत्ति जाया हैं, निवृत्ति का संग मैं लूँगा।' मन तब तक अज्ञान में पड़ा हुआ है, अविद्या के इलाके में है। और फिर कहा, 'आओ मन, टहलने चलें काली कल्पतरु के नीचे।' यहाँ प्रवृत्ति की निवृत्ति हो गई है, अज्ञान-अविद्या का नाश हो गया है। अवतार बिना किस की सामर्थ्य है यह mystery (रहस्य) समझाना? एक ठाकुर ही कर सकते हैं, और किसी का भी कर्म नहीं। उनको जो जितना ही समझेगा, वह उतना ही उठेगा। अपने विषय में आप ही बतलाया करते अन्तरंगों को, 'जो अखण्ड, सच्चिदानन्द, वाक्य-मन के अतीत, वे ही शरीर धारण करके आए हैं।' तभी तो कितनी ही बार कहा, 'जो मेरा चिन्तन करेगा, सो मेरा ऐश्वर्य लाभ करेगा— जैसे पिता का ऐश्वर्य पुत्र लाभ करता है।' इच्छा करने से ही यह अतुल सम्पद् प्राप्त हो सकती है— ज्ञान-भक्ति, विवेक-वैराग्य, प्रेम-समाधि।''

कोलकता; 25 मई, 1923 ईसवी, शुक्रवार।
11 ज्येष्ठ, 1330 (बंगला) साल, शुक्ला दशमी।

दशम अध्याय

वे इच्छा करने से सब उलट सकते हैं— कर्मफल

(1)

ग्रीष्मकाल, अपराह्ण पाँच। श्री म मॉर्टन के दो-तल के कमरे में बैठे हैं, फर्श पर। आज शनिवार है, तभी सवेरे-सवेरे बहु-भक्त समागम हो गया है। भाटपाड़ा के बड़े ललित, मॉर्टन के शिक्षक हरेन्द्र मुखर्जी प्रभृति आए। श्री म की इच्छा से ललित गंगास्तव-पाठ कर रहे हैं, ''मातः शैलसुता— सपत्नि,'' इत्यादि। तत्पश्चात् हरेन हारमोनियम के संयोग से गा रहे हैं। उनका कण्ठ है अति सुमिष्ट :

नाथ, तुमि सर्वस्व आमार, प्राणाधार सारात्सार।
नाहि तोमा बिने केहो त्रिभुवने बोलिबार आपनार॥

गाना समाप्त होने के संग-संग मेदिनीपुर के घाटाल इलाके के चार-पाँच जन आ गए। बातचीत से पता लगा कि सात मास के बीच उनमें से एकजन के परिवार में बहुत उलट-पलट हुआ है, कई-एक मर भी गए।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— हाँ, ऐसा होता है कभी-कभी। संसार में रहना हो तो पहले से ही तैयार होकर रहना चाहिए इसके लिए। देखिए ना, कैसा काण्ड हो गया सात मास के मध्य। वे गढ़ते हैं, और फिर तोड़ते हैं। सब भले के लिए ही करते हैं। उसमें अमंगल नहीं। उनका नाम मंगलमय। विपद् द्वारा खींच कर अपने निकट ले आते हैं। यह न हो तो संसार में लोग उन्हें भूल जाते हैं। उन्हें पकड़ कर संसार करना चाहिए, नहीं तो दुःख असहनीय हो जाता है। उनकी शरण लेकर संसार करने से विपद् में इतना मुह्यमान होना नहीं पड़ता। सात मास में कैसा काण्ड हो गया!

''गत सात मास मैं भी मिहिजाम में था। *(एकजन को दिखा कर)* ये भी थे। वहाँ देखा गाय, बकरी, पशु-पक्षी, सब दिन भर केवल खाते-ही-खाते हैं। *(सिर नीचा करके दिखला कर)* ऐसे करके। इसी मध्य और फिर बाल-बच्चों की वृद्धि की चेष्टा होती है। परिश्रान्त होने पर लेटकर जुगाली करते हैं।

''सब ही वे करवाते हैं— यह जान लेने पर ही निश्चिन्ति। बड़ा कठिन; जानने नहीं देते। कहाँ से अहंकार आ पड़ता है! एक दिन (कनस्तर) के नीचे एक मेंढक और उसके दो बच्चे थे। ज्यों ही मैंने उठाया त्यों ही उछल कर पड़ गई एक के ऊपर माँ। माने, मारना है तो मुझे मारो, उन्हें नहीं। अच्छा, कैसा मातृ-स्नेह! बकरी के बच्चे को मैंने गोद में लिया, माँ आ हाजिर, भय नहीं। यह मातृ-स्नेह किसने दिया? चण्डी में है, 'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।' (चण्डी० 5:71-73)

''माँ के स्नेह-रूप में वे सर्वजीवों में विराजमान हैं। वहाँ रहकर इस बार उनका मंगल हस्त देख कर आया हूँ। जैसे, सब नाच की पुतलियाँ हैं। वे नचा रहे हैं। जो निकट रहता है, वह देख सकता है पुरुष का हाथ। जो दूर है, वह उसे देख नहीं सकता। निकट जाकर अब की बार देख आया हूँ, सब पर है उनका मंगल हस्त। जैसे पशु, वैसा मनुष्य। केवल अन्तर— मनुष्य में ईश्वर को पुकारने की इच्छा दी हुई है। एकान्त में जाकर यह सब देखा जाता है। आप लोग गए नहीं उस ओर? खूब बड़े-बड़े मैदान और छोटे-छोटे पहाड़ हैं। पहाड़ों पर सूर्यास्त खूब उद्दीपन करता है। शीतकाल में वृक्षों की ओट से सूर्योदय देखा करता था और सोचता था— आहा, यही सूर्य देख कर ही ऋषियों के मुख से गायत्री बाहर हुई थी, 'तत्सवितुर्वरेण्यम्'। और एक वस्तु है वहाँ पर।''

नवागत भक्त— निर्मल आकाश।

श्री म— निर्मल आकाश ही केवल नहीं, असंख्य तारका और सप्तर्षि मण्डल। इन सब का नित्य दर्शन हुआ करता था। घड़ी की जरूरत नहीं होती थी रात्रि में। सप्तर्षि देखकर समय निश्चित किया करते थे। यहाँ पर भी

सप्तर्षि हैं। *(परिहास करते हुए)* एक व्यक्ति ने और एक से पूछा, 'तुम्हारे गाँव में चाँद निकलता है?' *(सब का हास्य)* हाँ जी हाँ, कवियों में एक-एक कवि एक-एक प्रकार का चाँद देखते हैं कि ना। वस्तुतः है एक चाँद ही सर्वत्र। *(स्वगत)* मनुष्य और पशु में अन्तर नहीं। मनुष्य में अल्प शक्ति उनको पुकारने की है, बस यही। *(भक्तों के प्रति)* ठाकुर गाड़ी से कलकत्ता आया करते। मुख निकाल कर मार्ग के सब लोगों को देखते और कहते, 'देख रहा हूँ, सब ही हैं निम्न दृष्टि।' ऊर्ध्व दृष्टि नहीं। अर्थात् भगवान में मन नहीं। क्वचित् दो-एक जन का ही वैसा दिखाई देता है। निम्न दृष्टि माने, पेट की ओर दृष्टि। यही लेकर सर्वदा व्यस्त, ईश्वर-चिन्तन का समय ही कहाँ?

''किन्तु अब बड़ी सुविधा। अवतार आए हैं। जभी तो खेतों में भी एक बाँस जल है। जितना चाहो लेते जाओ। 'धर्म की लूट' है। उसकी चेष्टा ही करते हैं कहाँ लोग? *(दीवार पर ठाकुर की छवि पर दृष्टि डाल कर)* ऐसा आदर्श सामने है। लोग चाहते ही कहाँ हैं? अवसर ही नहीं होता।

श्री म *(शोकातुर भक्तों के प्रति)*— साधु जन किन्तु सब समय उनको पुकारते हैं, उनका चिन्तन करते हैं। यहाँ पर आए हुए थे एक जन संन्यासी और एक नूतन ब्रह्मचारी। वे थे खूब scholar, gold medallist (सुवर्ण-पदक धारी सुपण्डित) थे। संन्यासी की थी साधारण education (शिक्षा); गाँव में जो पाई थी— the three R's— Reading, Writing, (A)rithmetic, (लिखना, पढ़ना और गणित)। इतना हुआ तो गाँव की पाठशाला की शिक्षा पूरी हो जाती है। किन्तु कैसा ज्ञान उनका! उनकी बातों से तो अवाक् हो गया। इतना ज्ञान, इतनी विद्या क्योंकर आई? इधर तो गाँव की elementary education (प्राथमिक शिक्षा)। वे ईश्वर का चिन्तन जो करते हैं सर्वदा। ईश्वर-चिन्तन करने से, तब सब अपने-आप आ जाता है— अपरा विद्या। किन्तु ब्रह्मचारी में यह दीखा नहीं। इन्होंने तो यहाँ के (विश्वविद्यालय) की इतनी education (शिक्षा) पाई हुई थी।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— जिस विद्या से ईश्वर को जाना जाता है वही विद्या और सब अविद्या। वेद-शास्त्र, साइन्स को इतना जानने से क्या होगा? जिससे ईश्वर-लाभ होता है वही विद्या। जो यह जानता है, उसकी education

(शिक्षा) ही है education (शिक्षा)। उसे छोड़ और सब अर्थकरी विद्या। इससे क्या होता है— नाम, यश, रुपया-पैसा, ये ही प्राप्त होते हैं, भोग बढ़ाती है केवल। जभी ठाकुर कहा करते, 'कोरे पण्डित खूब ऊँचे उड़ते हैं, किन्तु दृष्टि मरघट पर ही।' और एक गल्प सुनाई :

"एकजन को भागवत के पण्डित की आवश्यकता हुई। उसके बन्धु ने कहा— एक बहुत ऊँचे दर्जे का पण्डित है। किन्तु उसके पास अवसर कम है— खेती-बाड़ी, अनेक काम हैं। व्यक्ति सुनकर बोला, 'नहीं चाहिए मुझे ऐसा हाली पण्डित।' उसका सारा समय ही यदि उसी में जाता है तो ईश्वर-चिन्तन कब करता है? ईश्वर-चिन्तन बिना किए, तपस्या बिना किए, शास्त्र का मर्म समझ में ही नहीं आता।"

श्री म *(शोकातुर के प्रति)*— ठाकुर कहा करते, यहाँ का 'बड़ा' और एक प्रकार का है। जिसका ईश्वर के पाद-पद्मों में मन मग्न रहता है, वह बड़ा है। और संसार में कौन बड़ा? जिसके बड़ा परिवार, घर-मकान, धन-सम्पत्ति, किंवा नाना विद्याएँ हैं। किन्तु यहाँ पर यह नहीं— ठीक उल्टा। जो ईश्वर-भक्त, वही बड़ा। इतना बड़ा व्यक्ति केशवबाबू, ठाकुर ने उनको ही बड़ा नहीं कहा। यदुमल्लिक की कोठी में इतनी बड़ी सभा के मध्य में कहा, 'तुम्हारी बात का विश्वास नहीं कर सकता। तुम कामिनी-काञ्चन लेकर रहते हो। नारद, शुकदेव कहते तो विश्वास होता।' केशवसेन को ही यह बात, तो दूसरे की तो बात ही क्या? ठाकुर के पास बड़े हैं— नारद, शुकदेव।

श्री म *(क्षण भर मौन रह कर, भक्तों के प्रति)*— और एक थे distinguished (सुविज्ञ) ग्रेजुएट, खूब scholar (पण्डित), गङ्गा पर स्टीमर में जा रहे हैं, संग में एक और बन्धु। ये डेढ़ सौ रुपए मासिक पर काम करते हैं, विवाह हुआ नहीं। तीन-चार वर्ष काज करके मद्रास-मठ में योगदान किया है। स्टीमर में जा रहे हैं और संगी बन्धु से कह रहे हैं, moral obligation (कर्त्तव्य भावना) करने से religious life (धर्म जीवन) होता नहीं। उनके माँ, भाई आदि सब थे unprovided (असहाय)। किन्तु बाहर हो गए। बन्धु को भी कहा, 'बाहर हो जाओ।' Obligations (कर्त्तव्य) की इतनी भावना करने जाओ तो हो पाता नहीं। एक जाता है और एक आता

है। इसका शेष नहीं। ठाकुर के आने से ही समस्त बातें सुनी जाती हैं, और ऐसे लोग दिखाई पड़ते हैं। क्या आदर्श! आगे ईश्वर, परे अन्य सब। ठाकुर ने बताया, एक slender line (क्षीण रेखा) है। इसके इस पार पशुत्व, मनुष्यत्व प्रभृति। इसके पार होते ही देवत्व। लाइन ही भोग की। भोग छोड़ने से ही देवता। ये लोग ही इसी देवत्व के अधिकारी। जभी बड़ा chance (सुयोग)— जिन्होंने विवाह नहीं किया, संसार में आबद्ध हुए नहीं, इच्छा करने से ही अमृतत्व के अधिकारी हो सकते हैं।

''ठाकुर दिन-रात भावना किया करते, कैसे भक्तगण अमृत के अधिकारी हो सकते हैं— कैसे देवत्व लाभ हो। जिन्होंने विवाह नहीं किया, वे जिससे और आबद्ध न हों, उसी की चेष्टा किया करते थे। और जिन्होंने विवाह कर लिया है, उन्हें किस प्रकार अवसर हो, किस प्रकार कर्म कम हों, उनका (ईश्वर का) चिन्तन करने की सुविधा हो, उसी प्रकार का उपदेश देते। अन्तरंगों के लिए कितनी भावना! उनके लिए सीधा पथ दिखा गए। कहा, 'मेरा चिन्तन करने से ही होगा— और कुछ करना होगा नहीं।' देखो कितना सहज कर दिया— केवल उनका चिन्तन करने से ही होगा। बाकी सब वे करेंगे। यह भार कौन ले सकता है— ईश्वर को छोड़ किसके हृदय में यह बल है? गीता में भी देखता हूँ यह बात ही है— 'मामेकं शरणं व्रज।' (गीता 18:66) मेरा चिन्तन करो केवल— मैं सब भार ले लूँगा। ईश्वर छोड़ यह बात और कोई कह सकता नहीं।

''अवसर प्राप्ति का उपाय भी बता दिया। कहा— दो-एक पुत्र-कन्या हो जाने पर स्वामी-स्त्री भाई-बहन की भान्ति रहेंगे। अधिक बच्चे हो जाने से काज बढ़ जाएगा— अवसर होगा नहीं। अर्थ कमाना, मनुष्य बनाना, ब्याह देना कितने ही काज। ब्याह देने पर भी कितनी भावना। कन्या के ससुराल चली जाने पर उसके लिए कितनी भावना। कहते, एक बिछौने पर सोएँगे नहीं। देह की गरमी तक भी लगाएँगे नहीं। फिर कोई मन में न सोचे, 'आमरा रमणीर संगे थेके न करि रमण।' (हम रमणी के संग रहकर भी नहीं करेंगे रमण।) जभी पहले से ही सावधान कर दिया : एक बिछौने पर सोना नहीं। एक भक्त का कुछ भोग था बाकी। उसको घर भेज दिया। और इधर

आधी रात को जगन्माता के निकट प्रार्थना करते रहे, 'माँ, उसे डुबोना मत।' भक्तों के पास ईश्वर-चिन्तन का समय होता नहीं, सारा दिन नाना काजों में व्यस्त रहना पड़ता है। जभी बतला दिया, 'रात तीन बजे उठकर उनका चिन्तन करोगे।' तब कोई विघ्न होता नहीं। सब शान्त रहता है। उन्हें कितनी ओर भावना भक्तगण-जन्य!''

(2)

श्री म *(शुकलाल के प्रति)*— पहले के लोग पचास होते ही काशी चले जाते थे नौका करके। अब इतनी सुविधा है, तो भी जाना नहीं चाहते। हाँ, अब जैसे माया बढ़ गई है। *(सब का हास्य)* जभी देखता हूँ, प्रायः कोई भी जन हिलना ही नहीं चाहता। *(भक्तों के प्रति)* लोग विषय-चिन्ता में इतना मग्न हुए पड़े हैं कि ईश्वर को एकदम ही भूल गए हैं। इसी भूल के खण्डन के लिए ही उन्हें युग-युग में मानव-देह धारण करके आना पड़ता है। तब ही चैतन्य होता है भक्तों को।

अब तक डॉक्टर, मनोरंजन, योगेन, सुखेन्दु, प्रभृति बहु भक्त समवेत हो गए हैं।

श्री म *(शुकलाल के प्रति)*— वे कहते, कन्या-पुत्र दो-एक हो जाने पर उनकी दाल-भात का provision (व्यवस्था) करके ईश्वर-चिन्तन करो। क्या सारा जीवन ही परिश्रम में शेष करना होगा? सवेरे से लगातार परिश्रम करता है। लोग वाह-वाह देते हैं : आहा, कैसे परिश्रमी! किन्तु यह सब परिश्रम किस लिए? भोग के लिए; ईश्वर के लिए नहीं। रुपया-पैसा, मान-सम्भ्रम होगा, गाड़ी-घोड़ा, दास-दासी होंगे। बड़े-बड़े उपहार— splendid social presents दिए जाएँगे, इसलिए। कलिया, कोरमा, पुलाव खा सकेंगे, इसलिए। ईश्वर-लाभ के लिए नहीं बिलकुल भी। परिवार के लोग भी कैसे cruel (निष्ठुर)! इतना परिश्रम करते हैं, इस ओर टुक भी लक्ष्य नहीं। कोई कहे तो कहते हैं, क्यों, सब ही तो परिश्रम करते हैं। इससे फिर क्या होता है? और फिर जो परिश्रम करते हैं, उन्हें भी एक pleasure (आनन्द) आता है—

बीवी-बेटे को बढ़िया खिला, पहना सकेंगे इसलिए। किन्तु दाल-रोटी होने से ही तो चल जाता है। हाय, हाय! यह body-wearing and soul-killing labour (देहनाशी, आत्मघाती परिश्रम) करते हैं केवल भोग-जन्य, भगवान-जन्य नहीं।

''ठाकुर ने विवेकानन्द से जभी तो कहा था, 'दाल-भात होले होय— एर बेशी होय ना।' (दाल-रोटी होने से ही होता है, इससे अधिक से होता नहीं।) माँ-भाइयों को कष्ट होता था खाने-पहनने का। जभी ठाकुर से अनुरोध किया था, माँ काली से कहने के लिए। माँ ने तब यही बात कही थी। इसके माने वे जिसको प्यार करती हैं, उसे नाना अभावों में नहीं डालतीं। उसके लिए दाल-भात की व्यवस्था पहले से ही की हुई होती है। अभाव जितना ही कम होगा, उतना ही ईश्वर-चिन्तन को समय मिलेगा। Plain living and high thinking (सरल जीवन, उन्नत मनन) है आदर्श।

''इसी दाल-रोटी की व्यवस्था करके किसी भी निर्जन स्थान में चले जाना चाहिए— यही बात कहा करते। दो-तीन दिन निर्जन में रहने से ही world of difference (बड़ा अन्तर) पड़ जाता है। यही है partial (आंशिक) संन्यास। शरीर ही जो चला जाएगा, तब भी तो सब पड़ा रह जाएगा— यही भावना करके बाहर निकल जाना चाहिए।

''एकजन भक्त ने ठाकुर से पूछा, बाल-बच्चों के लिए परिश्रम कितने दिन करना होगा? ठाकुर ने उत्तर दिया, जब तक लायक न हो जाएँ, अर्थात् करके खा सकें; इसके पीछे जो हो करें। पशु-पक्षियों को देखा है, जितने दिन छोटे रहते हैं, माँ खिलाती है। बड़े होने पर स्तन पीने जाएँ किंवा माँ के मुख-में-मुख दें तो हटा देती है। अर्थात् अब बड़े हो गए हो, चुग कर खाना सीख गए हो, अपने लिए आप करो, खाओ। पशु-पक्षी बड़े होने पर बच्चों को खाने को देते नहीं। किन्तु मनुष्य में यह नहीं। West (पश्चिम) में भी तो है। लड़का बड़ा हो जाए तो बिठा कर खिलाते नहीं— रोजगार करके खाओ। ऐसे न किया जाए तो समय होगा कैसे? सारा जन्म कमाने पर भी शेष नहीं।

''अर्थ-वृद्धि की चेष्टा करना उचित है कि नहीं, पूछने पर ठाकुर ने

कहा, हाँ, 'जदि विद्यार संसार-जन्य होय।' (हाँ, यदि विद्या के संसार के लिए हो।) विद्या के संसार-जन्य माने, यदि भगवान-लाभ उद्देश्य हो। यदि उसके द्वारा देवसेवा, साधु-भक्त सेवा, दरिद्रनारायण सेवा हो, केवल मात्र आत्मीय परिजनों की सेवा-जन्य नहीं; मकान-कोठी, गाड़ी-घोड़ा जन्य नहीं; कोरमा, पुलाव खाने के लिए नहीं। बलराम बाबू वही किया करते। वे कहा करते, क्यों मैं इनके लिए इतना खर्च करने जाऊँ? देवता, साधु और दरिद्र की सेवा अधिक किया करते। इसी कारण आत्मीय जन अनेक ही असन्तुष्ट थे। देह जाने पर उन लोगों ने खूब खरच आरम्भ कर दिया। ठाकुर ने हृदय मुखर्जी से कहा था, 'ए अपदार्थगुलिके केनो खाबाच्छिस्— एइ चल्लूम तोर बाड़ी थेके।' (इन अयोग्य व्यक्तियों को क्यों खिला रहा है? अभी चला तेरे घर से।) उसने कुटुम्बियों को निमन्त्रित किया था। साधु-भक्तों की सेवा का नाम नहीं, ऐसे इन सब अपदार्थ व्यक्तियों के लिए रोजगार करना, ऐसा हो तो धन-वृद्धि नहीं करनी चाहिए। अधिक धन उपार्जन किया जाता है, यदि साधु, भक्त, देवता की याद मन में रहे। भक्त माने जो सर्वदा ईश्वर-चिन्तन करते हैं। इधर पास के ही घर में खाना न पाकर एकजन दरिद्र मर-मर हो रहा है। उस ओर लक्ष्य नहीं। उधर अपने घर पाँच-सात प्रकार का भोजन पक रहा है। इस पर और फिर यह अच्छा नहीं हुआ। यह ठीक नहीं, तो फिर फेंक दो। और साधु-भक्तों को थोड़ा 'सन्देश' दो तो उससे ही तुष्ट। दरिद्र को थोड़ा-सा खिलाया गया, झट तृप्त और कितना कृतज्ञ! ब्राह्म समाज के एकजन ने कहा था, 'All men are equal' (मनुष्य सब समान हैं)। ठाकुर सुन कर बोले, 'हाँ, पुत्र-कन्या के विवाह पर दस हजार रुपया खर्च करता है। और इधर पास के घर वालों को केवल भात तक भी खाने को नहीं मिलता। ऐसे किस प्रकार equal (समान) हुए?''

श्री म *(हरेन के प्रति)*— जामताड़ा आश्रम में देखा, एक व्यक्ति साधुओं की खाटों की रस्सियाँ adjust (ठीक) कर रहा है। मैंने कहा, 'तुम भले व्यक्ति हो, साधुसेवा कर रहे हो।' उसने कहा, 'नहीं महाशय, यह सब सोचने का अवसर ही नहीं। काज कर रहा हूँ, पैसा-कौड़ी लूँगा।' मुझे

शृगाल की बात याद हो आई। शृगाल ने राम, लक्ष्मण से कहा था, 'मुझे सीता की बात भावने का समय ही नहीं, पेट लेकर ही दिन-रात व्यस्त रहता हूँ।' सीताहरण के पश्चात् राम, लक्ष्मण द्वारा सीता के संवाद की जिज्ञासा करने पर शृगाल ने यह बात कही थी। 'सीता की बात', माने higher life (उच्चतर जीवन) की बात— ईश्वर की बात सोचने का अवसर नहीं। लोग सर्वदा पेट लेकर व्यस्त हैं और देह-सुख लेकर।

''किन्तु कर्नल साहब, वे भी उधर ही रहा करते। दरिद्रों के ऊपर कितना प्यार! सेवा भी कैसी करते, जाति-धर्म भेद-भाव रहित! सड़क पर आदमी जा रहा है। ज्यों ही मैंने उनकी बात पूछी, त्यों ही खड़ा हो गया और कहने लगा, 'ऐसा मनुष्य नहीं होता महाशय, देवता है। सौ मुखों से बोलने पर भी उनकी बातों का अन्त नहीं है।' सड़क पर अस्वस्थ होकर व्यक्ति गिरा पड़ा है, उसे घर ले जाकर निज हाथों से शुश्रूषा किया करते। कोई भी स्वार्थ नहीं— कैसी दया! वे higher life (ईश्वर की बात) जानते थे।

''और भी एक देखी— साधुओं की सेवा। जनमानव-शून्य मैदान के बीच जामताड़ा आश्रम है। उसके पास से ही रास्ता है। रात हो गई। झट छः-सात बैलगाड़ियाँ आश्रय के लिए आश्रम में घुस गईं। दो-तीन साधु वहाँ रह कर साधन-भजन करते थे। ये और क्या करें? आश्रम में जो सामान्य दाल-चावल था, वही पका कर वे उन्हें खिलाते-पिलाते रहे सारी रात। कल क्या खाएँगे, उसका ठीक नहीं। साधु होने के कारण ही सेवा का ऐसा भाव! गृही हों तो विरक्त हो जाते हैं। क्यों ऐसा, क्योंकि ये higher life (ईश्वर का चिन्तन) दिवा-निशि करते हैं, जभी।

''और भी एक घटना की बात सुनी है। उस दिन माँ के मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई थी। बहुत साधुओं और भक्तों का समागम हुआ था जयरामवाटी में। लौटते हुए रास्ते में एकजन गृही भक्त को असुख हो गया। साधुगण भी उसी मार्ग से आ रहे थे। संगी को उन्होंने कहा, 'इन्हें गाड़ी करके ले जाना होगा। रुपये न हों तो यह लो रुपये।' एक साधु ने कहा, 'देश जाकर भेज देना।' और एकजन ने रोक कर कहा, 'नहीं, भेजने नहीं होंगे। इन्हें भली प्रकार ले जाओ।' आहा, साधु कि ना, जभी तो ऐसी बात! गृही लोग तो

प्राय: ऐसा inconvenient question (असुविधाजनक प्रश्न) पूछते ही नहीं। क्या पता कहीं कुछ देना ही न पड़ जाए, तभी। गृहस्थ में मनुष्य कपटी बन जाता है। इच्छा होने पर भी दे नहीं सकता। देने में अपने हिस्से में, कुटम्बियों के हिस्से में, कमी पड़ जाएगी। साधुओं का 'वसुधैव कुटुम्बकम्।'

''एक दिन ठाकुर भाव में थे। टहलते-टहलते पक्की सड़क पर चले गए— होश नहीं। ज्यों ही 'ट्रंक रोड' पर जाकर पड़े, त्यों ही आनन्द में उछल पड़े रास्ता देख कर; और बोल पड़े, 'आहा, ठीक जैसे साधु का हृदय— सीधा और प्रशस्त।' साधुओं के हृदय उदार होते हैं; और स्वार्थपरता नहीं। किन्तु गृहस्थी अपना-पराया भावते-भावते मन मलिन कर लेते हैं। भला बनने की इच्छा रहने पर भी कपटी हो जाते हैं।''

(3)

अब सन्ध्या समागता। हरिकेन (लालटेन) का आलोक आ गया। हाथ से ताली बजाकर 'हरिबोल, हरिबोल', बोलते-बोलते श्री म ध्यानमग्न हो गए हैं। भक्तगण भी ध्यान कर रहे हैं। ध्यानान्ते श्री म की इच्छा से मोहन गाना गा रहे हैं—

ऐई जे देखा जाय आनन्द धाम,
अपूर्व शोभन भवजलधिर पारे— ज्योतिर्मय।

तत्पश्चात् सब गा रहे हैं :

'जय जय रामकृष्ण नाम गाओ रे।'

अब कई भक्तों ने विदा ली। पुन: कथोपकथन आरम्भ हो गया।

जगबन्धु— अच्छा जी, ठाकुर कहाँ, कितने दिन थे?

श्री म— कोठी में सोलह वर्ष थे; 1855—71 पर्यन्त। गङ्गा की ओर वाले कमरे में, सामने बरामदा, फिर सीढ़ी। ठाकुर की माँ भी उसी कमरे में ही रहा करतीं। अक्षय का शरीर जाने पर वह कमरा छोड़ा। 1871 से 85 तक चौदह वर्ष, अब जहाँ पर उनका बिछौना है, उसी कमरे में रहे थे। 1885 में

असुख होने पर प्रथम एक भाड़े के घर में, फिर बलराम बाबू की बाड़ी में कुछ दिन रह कर, श्यामपुकुर वाले घर में चले गए। 1886 में काशीपुर बाग में, यहाँ पर प्राय: दस मास थे। यहाँ पर ही देह गई।

श्री म *(कार्त्तिक बाबू के प्रति)*— हाँ डाक्टर बाबू, विनय बाबू की क्या खबर है?

डॉक्टर— हाथ और सिर में व्यथा है, रात को बाँह पर सिर रख कर सोया था।

जनैक भक्त— क्यों, हाथ के ऊपर कोई कपड़ा रख कर उसके ऊपर सिर रखने से हो जाता है।

श्री म— हाँ, ऐसा करना ही ठीक है। और कम्बल बिछाकर सिर के नीचे ईंट देकर गरम कपड़े से देह, सिर लपेट कर पड़े रहने से भी हो जाता है।

श्री म *(एक ओर होकर, हरेन के प्रति)*— तपस्या के भाव में ये सब मठ में रहते हैं कि ना! *(सब के प्रति)* त्यागी कठोरता द्वारा कामादि को वश में करते हैं। और फिर कोई-कोई भोग द्वारा करते हैं। इससे फिर बाल-बच्चे हो जाते हैं। तब फँस जाता है— अवसर नहीं मिलता। दिन-रात परिश्रम ही परिश्रम। उनका चिन्तन नहीं। इनके सुख के लिए soul (आत्मा) को मारना! ठाकुर इसीलिए तो कहा करते— दो-एक सन्तान हो जाने पर निकल पड़ो, उनकी दाल-भात के लिए provision (व्यवस्था) करके। ये हैं कि ना भोग के fruit (फल)। तभी इनके लिए दाल-भात की व्यवस्था कर सकते हो, इससे अधिक नहीं। कैसा हंगामा! विवाह हुआ, तभी बाल-बच्चे हुए। उनकी education (शिक्षा), फिर विवाह— अवसर कहाँ? ये सब ही जो अनित्य हैं, मृत्यु जो सब को ही खत्म कर देगी। मृत्यु-चिन्ता नहीं। रोज कितने लोग मरते हैं, उससे भी चैतन्य होता नहीं। सोचता है, जो मरने वाला है वही मरता है। अपनी मृत्यु भूल जाता है। इसी क्षण मृत्यु आकर जो सब कुछ ही बहा ले जा सकती है। तब कौन जाएगा संग में? ठाकुर इस बात को तो बहुत ही कहते। इसे खूब ही realise (अनुभव) किया था कि ना।

श्री म क्रमशः उत्तेजनापूर्ण भाव में बातें करने लगे। इससे पहले सन्ध्या के संधिक्षण में गृहस्थ-जीवन का जो विभीषिकामय चित्र अंकित किया था, फिर उसका ही उल्लेख करने लगे। श्री म कहने लगे, ''गृहस्थी ने स्वेच्छा से ही संसार की यह दासत्व शृंखला ग्रहण की है। इच्छा करने से मुक्त हो सकता है। मुक्ति, जीव का स्वरूप जो है।''

शुकलाल— अच्छा, तो फिर कर्मफल का क्या होगा? उसका तो भोग करना ही पड़ेगा।

श्री म— ठाकुर से भी एक व्यक्ति ने यही बात कही थी, 'यही, जो कर्म किया जा रहा है उसका भोग तो होगा कि नहीं?' वह मानो कोई बात ही नहीं है, अति तुच्छ, अकिञ्चित्— इस भाव में ठाकुर ने उत्तर देते हुए कहा, 'कहते क्या हो! वे इच्छा करने से सब उलट-पलट कर दे सकते हैं।' मैं तो समझता हूँ यह सब (कर्म-फल, भोगादि) न कहने से लोग भोग-त्याग नहीं करेंगे, इसीलिए वह सब कहा है। वे इच्छा करने से सब उलट दे सकते हैं। भोग-वोग की तो फिर बात ही क्या? With men this is impossible but with God all things are possible (St. Matthew 19:26) ईसु भक्तों को दुःखी देखकर बोले थे, 'डरो मत, मैंने तुम्हारा भार ले लिया है— आनन्द करो।' 'तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।'*

(4)

अब ठाकुरबाड़ी से प्रसाद आया। दक्षिण के लम्बे बरामदे में भक्तगण प्रसाद पा रहे हैं। मेदिनीपुर के भक्त जल्दी-जल्दी घर में जाकर श्री म से अपनी दुःख-गाथा निवेदन कर रहे हैं।

मेदिनीपुर के भक्त *(श्री म के प्रति)*— जी, मन ऐसा क्यों हो जाता है? कई दिन अच्छा रहता है, फिर खराब हो जाता है।

श्री म— आप उसके लिए क्यों चिन्ता करते हैं? उनके पास प्रार्थना

---

* उनकी कृपा से परम शान्ति के शाश्वत स्थान (पद) को प्राप्त करोगे। (गीता 18:62)

करें, वे सब ठीक कर देंगे। मन तो ऐसा करेगा ही— इसका स्वभाव ही ऐसा है। गिरीश घोष ने भी यही बात पूछी थी— मन क्यों खराब होता है? ठाकुर ने कहा था— संसार में रहने से मेघ तो उठेगा ही। तरंग देखकर भयभीत होने से वह जाएगा नहीं। मन का काज ही हुआ यही। आप इससे भय क्यों पाते हैं? उनसे कहिए। प्रार्थना करें, वे सब ठीक कर देंगे। उनके शरणागत हो जाने से स्वयं फिर और कुछ चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

मेदिनीपुर के भक्त— मेरा गुरुकरण नहीं हुआ। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने कहा था, फिर उनकी देह चली गई। मैं भी अस्वस्थ हो गया। जभी मन्त्र लेना नहीं हुआ।

श्री म— यही देखिए, वे ही सोचते हैं आपके लिए। यह न होता तो आप कैसे साधु के पास गए? ब्रह्मानन्द जी ने तो बुलाया नहीं था आपको। ईश्वर ही उनके निकट आपको ले गए थे।

मेदिनीपुर के भक्त— अब क्या करूँ, वे तो चले गए?

श्री म— उन्हें ही कहो, जो आपको लेकर गए थे। वे सब प्रबन्ध कर देंगे। उपाय बोल देंगे। उनकी शरणागत होना ही हमें उचित। वे सब के लिए सोचते हैं। ठाकुर बतलाते, संसार में हैं तीन तरह के लोग। एक योगी— ये सर्वदा उनकी चिन्ता में मग्न रहते हैं। जैसे मधुमक्खी फूल के सिवा और किसी पर बैठेगी नहीं। और एक श्रेणी है— इनमें योग, भोग दोनों ही हैं, जैसे पाण्डव। इनके लिए भी वे चिन्ता करते हैं। श्रीकृष्ण सदा संग-संग रहे हैं। तृतीय श्रेणी— जो केवल भोगी हैं। उनके लिए भी वे क्या कम भावते हैं? उनको भी देखते हैं। चण्डी में है, वे सर्वभूतों में मातृ रूप में अवस्थान कर रहे हैं। जभी माँ की भान्ति भावना कर रहे हैं सकल सन्तान-जन्य। कीट-पतंग तक भी उनकी दृष्टि के बाहर नहीं रहता।

"ठाकुर ने निज मुख से कहा है, 'माँ ही सब होकर रहती हैं। और फिर वे ही सर्व भूतों में अवस्थान करती हैं। तो भी भक्त का हृदय उनका बैठकखाना है।' देखिए, कैसे जन्म लेने से पहले ही माँ के स्तन में दूध देकर रखते हैं। सूर्य को भेजकर जीवों की रक्षा करते हैं। पशुओं के लिए भी कैसे

भावते हैं, देखिए। ग्रीष्म में घास सब सूख रही है, तो जल देते हैं। तब घास उगेगी और वे खाकर बचेंगे। हमारे सोचने से कुछ भी नहीं होगा। सब कुछ ठीक-ठाक तैयार है। वे हमारे जन्म से पहले की खबर जानते हैं। और फिर मृत्यु के पीछे की खबर भी जानते हैं।

''ईश्वर ही गुरु हैं। वे ही मन्त्र देते हैं— मनुष्य में प्रकाशित होकर। एकजन की बात सुननी चाहिए और साधुसंग करना चाहिए। साधुओं के संग तर्क-वितर्क करना अनुचित है। उनके दर्शन से ही चैतन्य हो जाता है। उन्होंने जान लिया है— ईश्वर सत्य, संसार अनित्य। साधुसंग में एक भय है, नाना जनों के नाना मत होते हैं। सब की सुनने से गोलमाल में पड़ने की आशंका रहती है। तभी एकजन की बात सुनना और साधुसंग करना।

''एक सुन्दर गल्प है। एक राजा के राज्य पर हमला हो गया। इन्जीनियर अपने मत के अनुसार बातें बतलाने लगे। कमान्डर-इन-चीफ ने कही अपनी बात। और पुरोहित ने पुरश्चरण की बात कही, जो जितना जानता था उतना ही कहने लगा। अब बेचारा राजा किस पथ से जाए? इसलिए एकजन की बात सुननी चाहिए। जो सर्वदा सोचते हैं, जिन्होंने भार लिया है, उनकी ही बात सुननी चाहिए। सब की बात सुनने जाओ तो झंझट पड़ जाता है।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— साधुसंग करना चाहिए। मठ में ये सब रोज जाते हैं मासिक टिकट करके। आप जाते तो हैं मठ में?

मेदिनीपुर के भक्त— जी, बहुत दिन से नहीं गया। असुख-विसुख रहा, और स्वामी ब्रह्मानन्द जी चले गए। किन्तु दक्षिणेश्वर में जाना-आना है। रामलाल दादा कृपा करते हैं।

श्री म— साधुसंग करना चाहिए— साधुसंग। उनके संग वाद-वितण्डा करना उचित नहीं। उनके दर्शन ही education (शिक्षा) हैं। दर्शन करते ही यह मन में होगा, ये सोलह आने मन द्वारा उनका चिन्तन करने की चेष्टा कर रहे हैं। पथ में खड़े हुए हैं। उन्हें देखकर निज भी वही करने की इच्छा होगी। किन्तु वाणी वा उपदेश एकजन का ही पालन करना चाहिए। अन्य जनों के उपदेश भी उनकी बातों के संग मिलान करके लेने चाहिएँ।

''संसार में रहने जाओ तो सुख, दुःख ये सब रहेंगे ही। देह ही है इन सब की जड़। देह रहने से आन्धी तूफान आएँगे ही। भगवान-दर्शन कर लेने पर फिर भय नहीं। तब सब ठण्डा पड़ जाता है। त्रिगुणातीत हो जाता है। Crystal (स्फटिक) की न्यायीं हो जाता है; जहाँ पर रखो, वही रंग धारण कर लेगा। ईश्वर-दर्शन के पश्चात् संसार करना चाहिए। तब सुख सुख नहीं लगता, दुःख दुःख नहीं लगता। शुचि-अशुचि बोध रहता नहीं। क्रोधादि रह जाते हैं लोक-दिखावे के लिए। ठाकुर कहते, साधु के क्रोधादि तो हैं मानो जली हुई रस्सी— फूँक से उड़ जाती है। हो सकता है घड़ी वा घड़ी-चेन लगाए सजा-धजा बैठा है, और फिर जब ये सब ले जाओ तो भी आपत्ति नहीं, जैसे पाँच वर्ष का शिशु। बाहर से कितना तेज दिखा रहा है, अमुक कानून बनाना चाहिए; अमुक को दण्ड देना चाहिए। ये सब कुछ राज्य की रक्षा के लिए हैं। भीतर जानता है, मैं कुछ भी नहीं हूँ। परमहंस अवस्था में किसी भी गुण के वश में नहीं होता।

''ये जो भी, जितने ही, दुःख-कष्ट दिखलाई दे रहे हैं, ये सब ही रूप मात्र हैं— जल के बुद्बुदे। कुछ क्षण रहते हैं, झट फिर पानी में मिल जाते हैं। स्वरूप को पहचान लें तब और कोई भी दुःख-कष्ट रहता नहीं। स्व-स्वरूप अर्थात् सच्चिदानन्द पुरुष— जिसका जन्म नहीं, मृत्यु नहीं, सुख-दुःख नहीं; निर्विकार, गुणातीत। इसी apparent man (स्थूल मनुष्य) के भीतर ही real man (देव मानव) है। जैसे काशी में अन्नपूर्णा की असली छवि है। उसे देखने जाओ तो पैसा लगता है। वह ढकने द्वारा ढकी हुई है। यह मूर्त्ति पत्थर की है। नकली छवि सोने की है, बाहर है। नकली उठाते ही असली दिखाई दे जाती है। वैसे ही apparent man (स्थूल मनुष्य) के भीतर real man (देव मानव) है। उन्हें पहचान लेने से और कोई भी भय नहीं रहता।''

(5)

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— आत्मीय कुटुम्ब— पुत्र-कन्या ये सब ही रूप-भेद की सृष्टि— जल के बुद्बुदे। मेरा नाम अमुक, अमुक का लड़का,

घर यहाँ, ये सब मिथ्या— जैसे बुदबुदे। इनका अस्तित्व नहीं। यही जो व्यक्ति मर रहा है, सड़क पर से ले जा रहे हैं, देख रहे हैं, इससे भी हमें चैतन्य नहीं होता। सोचते हैं, जो मरेगा वही मरता है। मैं नहीं मरूँगा। महामाया की ऐसी माया! ठाकुर जभी कहा करते, 'पञ्चभूत के बन्धन, ब्रह्म करे क्रन्दन।' अर्थात् शरीर धारण करने पर ईश्वर तक को क्रन्दन करना पड़ता है माया के हाथ में पड़कर— जैसे राम, कृष्ण, क्राइस्ट। यही जो (प्रथम) युद्ध हो गया, यह क्या? कुछेक रूप समाप्त हो गए। यह एक बहुत बड़ी चीज है, इसलिए इसके ऊपर दृष्टि नहीं जाती। तब सोचते हैं— जिन्हें मरना था, वे ही मर रहे हैं।

श्री म *(मेदिनीपुर के भक्त के प्रति)*— क्यों आप चिन्ता करते हैं? वे ही आपके लिए सब प्रबन्ध कर देंगे। वे सब के लिए सोचते हैं। देश से लौटने के समय वर्धमान के मैदान के भीतर ठाकुर दौड़कर चले जाया करते— देखा करते, वहाँ जीव हैं कि नहीं। जाकर देखा, मकौड़े पंक्ति बाँधे जा रहे हैं। कहा करते, ईश्वर ने यहाँ पर भी इनके लिए आहार रखा हुआ है। वे ही सब होकर रह रहे हैं— मनुष्य, कीट-पतंग, पशुपक्षी, समस्त ही वे। अन्दर-बाहर, ऊपर-नीचे, सर्वत्र वे। वे ही अन्तर में रह कर सब को चालित कर रहे हैं; और फिर वे ही सब के लिए सब प्रबन्ध कर रहे हैं, सब का परिपालन कर रहे हैं। आप कुछ भी चिन्ता न करें। पहले से ही सब कुछ ठीक हुआ-हुआ है। हम समझते नहीं, इसी कारण इतना दुःख-कष्ट है। ईश्वर-दर्शन होने से समझ में आता है, यह समस्त जादू मात्र है— वस्तुतः इनका कुछ भी अस्तित्व नहीं है। जभी तो उनके शरणागत होकर पड़े रहना चाहिए।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— जा सकते हैं रोज मठ में? ऑफिस तो साढ़े ग्यारह बजे होता है। साढ़े आठ बजे लौट कर आया जा सकता है। साधुसंग करने से सब झंझट दूर हो जाएँगे। इसके बिना और उपाय नहीं।

मेदिनीपुर के भक्त— जी, शरीर दुर्बल है, साधन-भजन भी वैसा कर नहीं पाता।

श्री म— 'कर्षयन्त इन्द्रियग्रामम्'— देह और इन्द्रियों को कष्ट दे कर साधन करना, यह तो आसुरी प्रकृति के लोग करते हैं। शीतकाल में शायद जल में देह डुबाए रखेंगे। सत्त्वगुणी यह क्यों करने जाएँगे? वे सोचते हैं, ऐसे

ही हो जाएगा— उनकी शरणागत होकर, उनका ध्यान-जप और प्रार्थना करके।

हरेन्द्र— किन्तु देह को सुख देने से तो सुख मिटता नहीं। जितना दिया जाता है, उतनी ही सुख की इच्छा बढ़ती जाती है।

श्री म— नहीं, उनका ऐसा विश्वास है कि उनकी कृपा से यूँ ही हो जाएगा। व्यर्थ में देह को क्यों कष्ट देना? दृढ़ विश्वास है। गीता में है, 'आत्मानं नावसादयेत्' (गीता 6:5) आत्मा को, मन को अवसाद-ग्रस्त करना उचित नहीं। व्यर्थ कठोरता करने से मन अवसादग्रस्त हो जाता है।

''साधन-भजन करना उचित, करते ही जाना— एक जन्म में चाहे न भी हो दर्शन। एक जन्म में क्या फिर होता है? 'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्' (गीता 6:45)— अनेक जन्म तपस्या करने पर उनका लाभ होता है। एक जन्म में नहीं होता तो न हो— दस जन्मों में होगा। इसलिए भजन से विरत होना क्यों? लगे रहना। खानदानी किसान एक बरस फसल न होने के कारण क्या खेती-बाड़ी छोड़ देगा? खेती करता ही रहेगा। हो अथवा न हो— करते ही जाना। अब है बड़ा chance (सुयोग)। अब जिनका नहीं हुआ, उनका फिर होगा नहीं। अवतार आए हैं कि ना, अब है बड़ा सुयोग। उठ लग पड़ना चाहिए अब।

''मन क्या शीघ्र ही फिर साधुसंग में जाना चाहता है? नाना असुविधाएँ create (सृष्टि) कर लेता है। जबरदस्ती करके ठेलठाल कर ले जाना चाहिए— will-power (इच्छा शक्ति) जिनकी है, वे ही जा सकते हैं। वे हैं शक्तिशाली। सैकड़ों असुविधाओं को ठेल कर भी वे साधुसंग करेंगे। उठ पड़ लगना चाहिए— तब ही होता है। बड़ा chance (सुयोग) है अब, रोख* चाहिए।

''ठाकुर बैल खरीदने की कहानी सुनाया करते। पूँछ में हाथ देते ही बैल जो छिनमिना कर उठ पड़ता है, उसे ही किसान पसन्द करते हैं। उनका दाम पचहत्तर रुपये। और जो हाथ देते ही आराम में झुक जाता है, उसको

---

* रोख = तेज, स्फूर्ति, धृति, उत्साह, मरणप्रण, दृढ़ निश्चय, जिद्द, जोर, जबरदस्ती।

नहीं खरीदते। उसका दाम पाँच रुपये। वैसे ही जो तिड़िंग-बिड़िंग करके उठ पड़ते हैं, pleasurable sensation को yield नहीं करते (देह-सुख की वश्यता स्वीकार नहीं करते), उनका ही होगा। No compromise, कोई भी बात मानूँगा नहीं।

''समझौता करने से चलता नहीं।''

कोलकता; 26 मई, 1923 ईसवी, शनिवार।
12 ज्येष्ठ, 1330 (बंगला) साल, शुक्ला एकादशी।

एकादश अध्याय

सब से बड़ा दान— ज्ञान, भक्ति, प्रेम दान

(1)

सन्ध्या उत्तीर्ण हो गई है। श्री म दोतल के लम्बे बरामदे में पायचारी कर रहे थे, कमरे में आकर बैठ गए। फर्श पर चटाई बिछी है। शुकलाल, डॉक्टर, विनय, राखाल, सुखेन्दु और योगेन आए हैं। अल्पक्षण के बीच, सुरेन गंगोली, दुर्गापद, छोटे नलिनी, सुधीर, विरिंचि, हरेन मास्टर, अमृत प्रभृति भक्तगण आ उपस्थित हुए। विद्यापीठ से एकजन साधु आकर पहले से ही प्रतीक्षा कर रहे थे। श्री म उनके साथ बातें कर रहे हैं।

साधु *(श्री म के प्रति)*— मैं इस बीच ढाका गया था। चार-पाँच दिन था, घर में उनके संग मिल आया। किन्तु मठ में जा नहीं सका।

श्री म— भला किया, वे निश्चिन्त होंगे। कथा में है, वंश में एकजन साधु हो तो चौदह पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है। माने आत्मीय लोग सर्वदा उसकी ही चिन्ता करते हैं कि ना। उसके साथ ही अनिच्छा से ईश्वर-चिन्तन होता जाता है। कारण, भक्त-भगवान अभेद। ठाकुर ने कहा था, मिश्री की रोटी जिस प्रकार भी खाओ, मीठी लगेगी।

जनैक भक्त— आज सम्वाद मिला है कि हमारे एक बन्धु के स्त्री, पुत्र सब मर गए हैं, एक-पर-एक।

श्री म *(दिखावटी विस्मय सहित)*— कहते क्या हैं, ऐसा सर्वनाश!

श्री म का भाव देखकर साधु उच्च हास्य कर उठे। ब्रह्मचारी भक्तों में से भी किसी-किसी ने इस हँसी में योगदान किया।

श्री म *(साधुओं के प्रति)*— तुम लोग तो हँसी करोगे ही, प्रारम्भ से ही उस पथ पर नहीं गए। हम लोगों का तो वह हो ही नहीं सकता। हम स्नेह, ममता में पड़े हुए हैं। कितनी बातें, एक संग में कितने काल तक वास, कितनी आशाएँ! कितना बड़ा friend (बन्धु), पत्नी— उसका वियोग। और फिर पुत्र जिसे years together (बहुत वर्षों तक) देखते हैं, लालन-पालन करते हैं। कम कष्ट?

"एक भक्त की कन्या आग में जल कर मर गई। भक्त तब बैठकर तबला बजाने लगे। ठाकुर ने यह बात सुनकर कहा था, 'कहते क्या हो? कन्या मर गई; उसे अल्प मात्र भी शोक नहीं हुआ?' रविबाबू की एक कविता है, 'तारका की आत्महत्या', भीतर जलती है, किन्तु बाहर प्रकाश नहीं। यह भी है। और एक बार एक भक्त को शोक हुआ— पुत्र मर गया। ठाकुर को बतलाते ही वे शोक में मानो अभिभूत हो गए। कितनी ही प्रकार से बाप को समझाने लगे। कहा, अभिमन्यु की मृत्यु पर अर्जुन को भी ऐसा शोक हुआ था, साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या? पुत्र-शोक में रावण के सब हाड़ों में छिद्र हो गए थे। प्रथम तो खूब समवेदना प्रकट कर रहे हैं, उसके बाद औषध दे रहे हैं। ठाकुर ने भावस्थ होकर दाशरथीराय का गाना आरम्भ कर दिया :

जीव साज समरे, रणवेशे काल प्रवेशे तोर घरे।
भक्ति रथे चड़ि, लोये ज्ञान तूण, रसना धनुके दिये प्रेमगुण,
ब्रह्ममयीर नाम-ब्रह्म अस्त्र ताहे सन्धान करे॥

[हे जीव, समर के लिए सजो, रणवेश में काल ने तेरे घर में प्रवेश कर लिया है। भक्ति के रथ पर चढ़ कर, ज्ञान-तरकश लेकर, रसना रूपी धनुष को प्रेम की डोरी लगाकर, ब्रह्ममयी के नाम रूपी ब्रह्म अस्त्र को उस पर सन्धान करो।]

श्री म— तुम शोक कर रहे हो, तुम्हें भी तो जाना होगा दो दिन परे। उसके लिए प्रस्तुत हो जाओ। *(भक्तों के प्रति)*— वे तो हसेंगे ही, प्रारम्भ से ही उस पथ पर गए ही नहीं। हमारा ऐसा हो सकता ही नहीं। बहुकाल तक एक संग में वास करने से अन्त:करण स्नेह-ममता से जड़ित हो पड़ता है। ऐसा हो जाता है कि पशु-पक्षियों का कष्ट भी देखने से हृदय में लगता है। एक

दिन चारतले के कमरे से कोई वस्तु दोतले पर लाया। देखता हूँ, च्योंटे मरे हुए हैं उसमें। हाथ से झाड़ कर च्योंटे फेंक दिये। ओ माँ, ऐसा मन में हुआ— हाय! यह क्या कर डाला! ये तो अब अपना बिल खोज पाएँगे नहीं। और फिर हाथ में उठा कर जहाँ के थे, वहाँ ही रख आया। हमारा इससे चलता नहीं। वे तो हँसेंगे ही।

हरेन्द्र मास्टर *(सहास्य)*— वह तो आपने भलाई के लिए ही किया। उसमें क्या दोष?

श्री म *(गम्भीर भाव से)*— न, यह भी है बन्धन का कारण। गीता में है, 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे।' (गीता 2:20)— आत्मा का विनाश नहीं होता, शरीर का विनाश है अवश्यम्भावी। यही है असली बात।

हरेन्द्र— तब तो एकजन दु:ख कष्ट पा रहा है या एकजन दूसरे जन को मार कर खा रहा है, तो उसमें भी कुछ नहीं।

श्री म— यह ठीक है। किन्तु यह बोध होता है ईश्वर-दर्शन हो जाने पर— समाधि पर। ठाकुर बतलाते, 'कभी-कभी मेरी ऐसी अवस्था हो जाया करती, तब मरना और मारना समान बोध हुआ करते।' देह तो मैं नहीं हूँ, तब फिर देह जाने पर दु:ख कैसा? किन्तु हमारा तो ऐसा होने वाला ही नहीं। प्रवर्तक हैं जो अर्थात् जिनके गुरु हैं, उनमें दया, दान, स्नेह रहना उचित।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— दान— अन्न दान, अर्थकरी विद्यादान, विवेक, वैराग्य, ज्ञान-भक्ति-प्रेम दान। सबसे बड़ा ज्ञान-भक्ति-प्रेम का दान। उसके पीछे अर्थकरी विद्या और फिर अन्न-दान। अन्न-दान के ऊपर और एक है प्राण-दान। यह भी अन्न-दान के अन्तर्गत ही है। एकजन जल में डूब रहा है, अथवा आग में जल रहा है। उसकी रक्षा करना। अर्थकरी विद्या भी देह के लिए ही है। विद्या द्वारा अर्थ उपार्जन होगा। तब फिर देह-सुख होगा। तो भी लौकिक विद्या द्वारा विचार-बुद्धि तीक्ष्ण होती है। उसके द्वारा ब्रह्म विद्या अर्थात् ईश्वर की खोज हो सकती है। ईश्वर सत्य, संसार अनित्य, यह बुद्धि आ सकती है। इसीलिए ब्रह्म-विद्या के बाद ही है अर्थकरी विद्या का स्थान। साधारणत: अर्थकरी विद्या ही देह सुख का कारण बन जाती है। एक श्रेणी के लोगों का भाव है, 'शरीरमाद्यम् खलु धर्मसाधनम्' आगे देह, इसके परे धर्म, ईश्वर। देह की ओर मन दे देने से

अन्त समय तक देह ही ईश्वर बन जाती है। जैसे विरोचन का हुआ था। ठाकुर ने तो उस पथ पर बिलकुल ही पैर नहीं रखा। वे कहा करते, 'मैं देह-सुख नहीं माँगता माँ, लोकमान्य नहीं माँगता माँ, अष्ट सिद्धि नहीं माँगता माँ, शत सिद्धि नहीं माँगता माँ, अपने पादपद्मों में शुद्धा भक्ति दो— शुद्धा, अटला, अचला, अहेतुकी भक्ति।' चैतन्यदेव भी यही एक ही बात कहा करते। देह के सुख-दुःख की बात ही उठाते नहीं थे, केवल कहा करते— हरिनाम करो, सब दुःख दूर हो जाएँगे।

"इस भारत के लोगों ने इसे भली प्रकार समझ लिया था। खेती-बाड़ी किया करते और हरि-नाम लिया करते। जभी ऋषिगण सब कुछ छोड़कर प्रेम-भक्ति-दान किया करते। उस देश के (पश्चिम के) लोग केवल भोग ही लिए हुए हैं। उनका वही objective (उद्देश्य) है कि किस प्रकार अधिक देह-सुख प्राप्त हो। उसी की चेष्टा रहती है। रेल-स्टीमर, टैलिग्राम-टैलिफोन, सब हैं देह-सुख में नियोजित। कॉमर्स इन्डस्ट्री (शिल्प-वाणिज्य), एग्रीकल्चर (कृषि), हस्पताल-डिस्पेन्सरी, औषधादि, सब ही इसी देह के लिए हैं। रेडियो, एरोप्लेन भी इसीलिए। समस्त विज्ञान ही देह-सुख में लगाया है। पूरे मन से भगवान को प्यार करो— क्राइस्ट की यह बात कोई सुनता ही नहीं। मिशनरियों की चेष्टा भी विफल हो गई है।

"भारतवर्ष में जन्म लेना ही बहु तपस्या का फल है। यहाँ पर जन्म लेने से इस देश के संस्कार रक्त में रह जाते हैं। देखिए ना, महात्मा गान्धी जी को ही— पॉलिटिक्स कर रहे हैं। किन्तु इसे spiritualised (ईश्वरलाभ के उपाय) के रूप में कर दिया है। स्वयं हैं फकीर। कहाँ मिलेगा ऐसा आदर्श? एक दिन मैं गंगास्नान करने गया, वहाँ किसानी देश का एक दल देखा। दलपति ने गंगास्नान करके उड़िया पण्डे को देने के लिए सब के हाथों में एक-एक करके पैसे दिये। यह दृश्य देख कर मन में हुआ, मानो सनातन हिन्दू धर्म देह धारण करके आया हुआ है। कौन से देश में ऐसा पाओगे? भगवान के उद्देश्य में ऐसा दान। 'बारह मास तेरह पर्व', सब ही ईश्वर को ले कर। ऐसा और कहाँ पर है? पल्ली-ग्राम में ही ऐसा सरल विश्वास अधिक है। शहरों में सब ही गिरे जा रहे हैं (decreasing)। ग्राम के लोग ही धर्म

का यह समस्त आचरण पालन कर रहे हैं।

''भारतवर्ष में जन्म होना ही है भाग्य की बात। इस पर यहाँ है फिर special opportunity (विशेष सुयोग)। ठाकुर आए हैं, भगवान अवतार होकर आए हैं। अब बड़ा chance (सुयोग) है। जीव का दुःख भी क्या कम है? जीव के दुःख से कातर होकर वे आते हैं, इसी दुःख को दूर करने। *(जनैक भक्त के प्रति)* समझ लिया, उनका चिन्तन करने से ही होगा। वे अवतार स्वयं कह रहे हैं, हम नहीं कह रहे— 'स्वयं चैव ब्रवीषि मे।' (गीता 10:13) हम क्या कहेंगे? हमारी बात से क्या होता है? सेर के लोटे में क्या दस सेर दूध समाता है? ठाकुर ने स्वयं कहा है, 'सच्चिदानन्द यह शरीर धारण कर के आए हैं'।''

(2)

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— कर्त्तागिरी से ही है, जितनी भी मुश्किल। हमने कर्त्ता-कर्त्ता करके क्या लिया? इसी देह को ही देखिए ना! कितनी सारी कलें इसमें लगा दी हैं— spinal chord (मेरुदण्ड), digestive power (पाचन शक्ति), brain (मस्तिष्क), कितना कुछ! इतना कुछ करके दे दिया है, और हम बोलते हैं कि हम कर्त्ता हैं। इस कल के जरा भी विकल होते ही कर्त्तापन सब निकल जाता है। साधना दरकार। वे कर्त्ता, मैं अकर्त्ता, यह समझने के लिए ही साधना। साधना माने निज को पहचानने की चेष्टा। निर्जन में बैठकर विचार करना— मैं क्या हूँ, किस उद्देश्य से मेरा जन्म हआ, क्यों मृत्यु होती है? यह जगत् क्या है? किसने किया? दुःख-कष्ट क्यों? दुःख के हाथ से परित्राण का उपाय क्या? चिर सुख, चिर शान्तिलाभ क्या सम्भव?— निर्जन में बैठ कर यह सब चिन्तन करना। इस प्रकार चिन्तन करने से अन्त में देखा जाता है, ईश्वर ही जीव, जगत्, चतुर्विंशति तत्त्व, सब होकर रह रहे हैं। वे अन्तर में रहते हैं और फिर चलाते भी हैं। तब उनके शरणागत होकर प्रार्थना करने से वे कर्त्तागिरी कम कर देते हैं। कर्त्तागिरी के कम होते ही शान्ति, आनन्द।

श्री म *(गृहस्थ भक्त के प्रति)*— ठाकुर कहा करते, जो गृह में हैं उन्हें

दो-एक सन्तान हो जाने पर भाई-बहन की तरह रहना चाहिए। तब पति-पत्नी को मिल कर रामायण, महाभारत, भागवत आदि का पाठ करना चाहिए। सर्वदा भगवत्-भाव में रहना चाहिए। जैसे दो भगवत्-सेवक और सेविका।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— टुक साधना दरकार। यह न होता तो महापुरुष लोग क्यों साधना करते हैं? उन्हें स्वयं कुछ भी दरकार नहीं। यही जो ठाकुर, उन्हें क्या आवश्यकता साधना की? उनके निकट साधना ही क्या, और कुछ ही अथवा क्या? स्वयं ईश्वर मनुष्य शरीर धारण करके आए। तब भी यह कठोर साधना क्यों की बारह वर्ष तक?— लोक-शिक्षा-जन्य। उन्हें देखकर अन्य भी करेंगे वैसे ही। अल्प साधना दरकार।

''मनुष्य सब माया में डूबे हुए हैं। अवतार आकर एक आदर्श रखते हैं उनके सामने। वे स्वयं आते हैं, और संग में साधुओं को लाते हैं। इनकी साधना देख कर अन्य लोगों को चैतन्य होगा। ढेले द्वारा वे ढेला तोड़ते हैं, मछली के तेल में मछली भूनते हैं। श्रीकृष्ण ने इतने सब wonderful activities (अद्‌भुत कर्म) किए। अन्त में तो यही ना, उद्धव को कहा, 'यह समस्त कुछ भी नहीं, जो सब किया गया है। तुम बदरिकाश्रम में जाओ, उनके चिन्तन में जाकर मग्न हो जाओ'।''

श्री म कुछ काल मौन रहे। फिर श्री म की इच्छा से एक भक्त गाने लगे :

पाड़ार लोके गोल करे, बोले आमाय गौर कलंकिनी।
से कि कोईबार कथा, कइबो कोथा लाजे मरि ओ प्राणसजनी।

[मोहल्ले के लोग बातें करते हैं, मुझे कहते हैं गौर कलंकिनी। अरी प्राणसखी, यह बात क्या कहने की है, कहूँ भी कहाँ, मैं तो लाज से मरी जा रही हूँ।]

डॉक्टर और जगबन्धु गा रहे हैं, 'जय जय रामकृष्ण नाम गाओ रे।' गाना समाप्त हुआ। श्री म कह रहे हैं, ''हेमेन्द्र महाराज आए हैं। हम क्या देकर उन्हें सन्तुष्ट करें? देवी भागवत पढ़ कर उन्हें सुनाया जाए।'' शुकदेव का वैराग्य प्रकरण निकाल दिया। एक भक्त पढ़ रहे हैं :

शुकदेव ने कहा— पिता, इस संसार में निरामय सुख है क्या? विषय-

सुख को ज्ञानीगण दु:ख-विद्ध सुख कहते हैं। अतएव वह निरामय सुख हो नहीं सकता।...पिता, सर्परूपी संसार देखकर भयभीत हो रहा हूँ।... आत्मतत्त्व के चिन्तन के बिना मनुष्य को सुख कहाँ?... जो माया का अतिक्रमण कर सके हैं, वे ही हैं यथार्थ विद्वान और ज्ञानी, उनका ही शास्त्र-पाठ सफल हुआ है। मैं वही विद्या चाहता हूँ।

श्री म— ज्ञान-घन-मूर्त्ति शुकदेव, उन्हें प्रवृत्ति मार्ग में रुचि नहीं। जभी मोक्षशास्त्र सुनना चाहते हैं। तीव्र वैराग्य, तभी संसार को सर्परूपी कहते हैं, अर्थात् बन्धन का कारण।

''ठाकुर कहा करते, इस अवस्था में संसार पातकुआ (मृत्युकूप) और आत्मीय स्वजन कालसर्प की भान्ति बोध होते हैं। माया का रूप है कि ना, यह सारा। सुन्दर कहा, पुत्र-दारासक्त पण्डितों का पाण्डित्य वृथा। *(सहास्य)* ठाकुर ने कहा, 'हलवाला भागवत का पण्डित'— जिसके अनेक खेत-खूत हैं। और फिर कहा, 'कोरे पण्डित तो जैसे घास-फूस।' कारण उनकी दृष्टि मरघट पर, कामिनी-काञ्चन में। विवेक वैराग्य रहना चाहिए— जभी निज का कल्याण, दूसरे की बात सुनता है। यह न हो तो बकते जाओ, कोई सुनेगा ही नहीं। जभी तो शुकदेव ने कहा— ये सब लोग 'रोग-ग्रस्त वैद्य, किन्तु पररोग चिकित्सक।' पाठ चल रहा है। व्यासदेव ने उत्तर दिया— हे पुत्र, गृह बन्धन का कारण नहीं है, बन्धन का स्थान भी नहीं है। गृहस्थ-आश्रम में रह कर, श्रद्धा, सत्य और पवित्रता का आश्रय करके मन-ही-मन त्याग करके मनुष्य मुक्ति-लाभ कर सकता है।... शास्त्र भी कहता है, प्रथम ब्रह्मचर्य, फिर गृहस्थ-आश्रम, तत्पश्चात् वानप्रस्थ और संन्यास क्रमश: ग्रहण करोगे।... हे पुत्र, इन्द्रिय-जय के लिए दारा-परिग्रह करोगे एवं वार्धक्य में तपस्या करोगे— शास्त्रविद्गण इसी प्रकार उपदेश दे रहे हैं।''

श्री म— यह तो है साधारण नियम, एक के पीछे दूसरा आश्रम ग्रहण करना। विशेष नियम भी है। जिस दिन वैराग्य हो, उसी दिन ही संन्यास ले लो, गृहस्थी हो अथवा वानप्रस्थी। 'यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत् गृहाद्वा वनाद्वा,' यह भी है। मन्द वैराग्य में इस प्रकार विचार चलता है। तीव्र वैराग्य होने से यह हिसाब रहता नहीं। और संसार में रहकर होगा नहीं क्यों? किन्तु

बड़ा कठिन है। 'वार्धक्ये तपातिष्ठेत्'— वृद्धकाल में तपस्या करेगा, यह व्यवस्था किसके लिए?— जिसकी प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल, उसके लिए। और जिसके पूर्व जन्म के संस्कार हैं, बहु तपस्यादि की हैं, ईश्वर सत्य, संसार अनित्य, यह बोध हो गया है, वह क्यों जाएगा इस झंझट में? और फिर वृद्ध शरीर में तपस्या ही असम्भव है।

(पाठक के प्रति)— पढ़ो।

पाठक पढ़ रहे हैं— शुकदेव कहने लगे, हे पिता, मैं गृहस्थाश्रम ग्रहण नहीं करूँगा। इससे सर्व-जीव-गण बन्धन को प्राप्त होते हैं। धन के लिए कुटुम्बी सर्वदा पीड़ित करते हैं। धनचिन्तक को सुख कहाँ? लोभी धनवान को रात को सुनिद्रा भी नहीं होती। इस अवस्था में सुख कहाँ?

श्री म— ठाकुर ने कहा, संसार ज्वलन्त अनल। यहाँ सुख कहाँ? नाना आपद् गृहस्थाश्रम में। जभी दुःखमय। शुकदेव को यही ज्ञान हो गया है। जभी कहते हैं, विष्ठामूत्रमय गर्भावास दुःखमय। जन्म दुःखमय, जरा दुःखमय, मरण दुःखमय। इस दुःखमय जीवन में अनाविल सुख है एक ईश्वर के ही पादपद्मों में। और कहीं भी सुख नहीं। जभी विषय-सुख को दुःख-संविद्ध सुख कहा गया है— अर्थात् छद्मवेशी दुःख। *(सहास्य)* पुत्रस्नेह से अश्रुपात कर रहे हैं व्यासदेव। करेंगे नहीं तो क्या? शरीर धारण करने पर यह सब होता ही है। सीता और लक्ष्मण के शोक में रो-रो कर राम आकुल हो गए थे। ठाकुर बोले थे, अक्षय (भतीजे) का शरीर जाने पर, 'हृदय तब जैसे अंगोछा निचोड़ा जा रहा हो, वैसा हो गया था शोक में। ऐसी अवस्था हो गई थी मेरी।' ये समस्त सामयिक मात्र हैं उनके लिए।

कोलकता; 27 मई, 1923 ईसवी, रविवार।
13 ज्येष्ठ, 1330 (बंगला) साल, शुक्ला द्वादशी।

द्वादश अध्याय

मूल कथा— उनके शरणागत होकर संसार में रहना

(1)

सन्ध्या-वन्दना अब समाप्त हो गई है। कमरे में गर्मी। श्री म मॉर्टन के द्वितल वाले लम्बे बरामदे में पायचारी कर रहे हैं। छोटे जितेन को पुकार लिया है। उनके संग कुछ काल कोई परामर्श करके कमरे में आकर फर्श पर बैठ गए। मोहन को एक गाना गाने के लिए कहा। मोहन गा रहे हैं :

तुमि निर्मल करो मंगल करे मलिन मर्म मुछाये।
तव पुण्य किरण दिये जाक् मोर मोह कालिमा घुचाये॥

लक्ष्य शून्य लक्ष वासना, छुटिछे गभीर आँधारे।
जानि न कखन डूबे जाबे कौन अकूल-गरल-पाथारे॥

प्रभु विश्व विपद हन्ता, तुमि दाँड़ाओ रुधिया पन्था।
तब श्रीचरणतले नियेजाओ मोरे मत्त वासना मुछाये॥

आछो, अनल अनिले, चिर नभो नीले, भूधर सलिले, गहने।
आछो विटपी लताय, जलदेर गाये, शशि तारकाय, तपने॥

आमि नयने बसन बाँधिया, बसे आँधारे मरि जे काँदिया।
आमि देखि नाई किछु, बुझि नाई किछु, दाओ हे देखाये बुझाये॥*

[तुम अपने मंगल करों से कृपा करके मेरे अन्दर के मैल को पौंछ कर निर्मल कर दो। तुम्हारी पुण्य किरण द्वारा मेरी मोह की कालिमा का नाश हो जाए।

लक्ष्य-शून्य लाखों वासनाएँ गम्भीर अन्धेरे में दौड़ रही हैं। न जाने कब तक (यह मन) कौन से अकूल विष-समुद्र में डूबा रहेगा। प्रभु, तुम विश्व-विपद्-नाशक हो, रास्ता रोककर खड़े हो जाइये। मेरी मस्त वासनाओं को पौंछकर अपने

---

* रजनीकान्त संगीत समग्र, पृ० 133-34

श्री चरण-तले ले चलिए। तुम अग्नि, हवा, नीले आकाश, पहाड़, जल तथा घने वन में सर्वदा हो, तुम्हीं वृक्ष-लता, बादलों में हो, तुम्हीं शशि, तारा और सूर्य में हो, मैं आँखों पर पट्टी बाँध कर, अन्धेरे में क्रन्दन करता हुआ मर रहा हूँ। मैं कुछ भी देखता नहीं, समझता नहीं। हे प्रभो, दिखा दो; समझा दो।]

श्री म *(गायक के प्रति)*— सुन्दर, किन्तु इसके ऊपर भी और एक ठाकुर ने बतलाया था— 'आछो अनल अनिले चिरनभोनीले भूधर सलिले गहने' इससे भी अधिक। वह है अवतार। मनुष्य-शरीर धारण करके आते हैं। बिलकुल मनुष्य की भान्ति सब करते हैं। जैसे ठाकुर, कृष्ण, क्राइस्ट। 'मानुषीं तनुमाश्रितम्' (गीता 9:11) इसके ऊपर भी एक और है। रूप धारण करके बातें करते हैं। अखण्ड सच्चिदानन्द जो वाक्य मन के अतीत, वे रूप धारण करके भक्तों के संग बातें करते हैं। निराकार साकार हो जाते हैं। कमरा-भरे लोगों के सामने ठाकुर के संग ईश्वर बातें किया करते। एक दिन नहीं, सर्वदा। ईश्वर एक रूप में अवतार हुए, अन्य रूप में बातें किया करते। दो न हों तो लीला नहीं होती, जभी। वे न बुझाएँ तो यह तत्त्व है दुर्बोध्य। निराकार, साकार, अन्तर्यामी, चतुर्विंशति तत्त्व, अवतार— उसी एक के ही हैं भिन्न भिन्न रूप।

श्री म *(डॉक्टर के प्रति)*— 'गंया गंगा' गाइए ना आप।

डॉक्टर गा रहे हैं— गया गङ्गा प्रभासादि काशी काञ्चि केबा चाय।
काली काली काली बोले अजपा यदि फुराय॥

[काली, काली, काली कहते हुए यदि प्राण जाएँ तो गया, गङ्गा, प्रभास, काशी, काञ्ची को कौन चाहता है?]

तत्पश्चात् श्री म स्वयं मधुर स्वर में गा रहे हैं—

यतने हृदये रेखो आदरिणी श्यामा माके।
मन तुई देख आर आमि देखि, आर जेनो केउ नाहि देखे॥

[आदरिणी माँ श्यामा को यत्न से हृदय में ऐसे रखो कि जैसे हे मन, तुम देखो और मैं देखूँ; और कोई न देखे।]

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— यह सब गाने एकदम निकट ले जाते हैं, भीतर-बाड़ी में। और वैसे सब गानों से बाहर-बाड़ी में मन रहता है।

बड़े जितेन— हमें ये सब गाने आएँ भी? इस अवस्था के बिना क्या होता है?

श्री म— तो भी ठाकुर जब कहते हैं, तब हमें चेष्टा करनी ही चाहिए।

छोटे जितेन बेलुड़ मठ में रात्रिवास करते हैं। श्री म नित्य मठ का विवरण सुनते हैं। आज भी सुना। भक्तों के मठवास के सम्बन्ध में बातें हो रही हैं।

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— अनेक ही तपस्या के भाव में आजकल मठ में रात्रिवास कर रहे हैं। और फिर कोई-कोई बगल में मसहरी ले जाते हैं। आराम में ही तो सदा रहा जाता है। तपस्या के भाव में रहने के लिए जाकर भी फिर मसहरी? क्यों मैदान में वृक्षतले एक ईंट सिर के नीचे देकर रहा नहीं जाता? हमने किया ही क्या है उनके लिए? आहा, ऐसा गंगातीर! दो घण्टे बैठे रहने से ही जीवन धन्य हो जाता है। जब तक जगा रहे, गंगातीर पर ही बैठा रहे। तत्पश्चात् मैदान में ही कम्बल डाल सिर के नीचे ईंट देकर एक रैपर सिर तक लपेट पड़ रहे। एक दिन कर लेने से ही कितना हो जाता है।

''हमने क्या कष्ट किया है उनके लिए? ये साधु लोग मठ में मसहरी के नीचे सोते हैं, किन्तु ये बाहर कितना कष्ट उठाते हैं, कितना दुःख उनके लिए वरण करते हैं, वह तो फिर देखता नहीं। हो सकता है, तीन दिन तक खाने को ही नहीं मिला। पथ में ही पड़े रहे हों। मठ में आते हैं विश्राम पाने। इस ओर हमारा लक्ष्य नहीं। उनके विश्राम जन्य ठाकुर ने एक-एक स्थान पर एक-एक अड्डा कर दिया है। पक्षी जैसे घूमघाम कर, क्लान्त होकर, 'वासे' पर आता है विश्राम-जन्य, वैसे ही साधु लोग साधन-भजन करते-करते क्लान्त होने पर कुछ दिन के लिए आते हैं यहाँ विश्राम करने के लिए। यह क्या सुख का विश्राम? घर में कितना आराम होता है! कोई बिछौना कर देता है। खाएगा तो रसोई में पाँच-सात भाँत का भोजन पकेगा और थाली के चारों ओर सजा कर खाएगा। साधु लोग कितना अनाहार, अल्पाहार करते हैं, कितना कष्ट पाते हैं! तब फिर मसहरी के नीचे सोते हैं कभी-कभी। उस

ओर ध्यान ही नहीं। हम देखते हैं, केवल उनका मसहरी के नीचे सोना। वे मसहरी के नीचे सो सकते हैं, क्यों? क्योंकि चलते समय मसहरी संग में नहीं लेते। और हम बगल में दबाकर ले जाते हैं। हमारा कितने आराम में रहना होता है। तनिक दाँत कन-कन करने लगता है तो झट औषध, इन्जैक्शन। उन्हें कौन देखता है, दाँत दर्द करने पर, असुख-विसुख में? हाय, उनके लिए हमने किया ही क्या है? चाहे असुख-विसुख ही हो जाए उन्हें पुकारते-पुकारते। तो भी मन में तो होगा— जो भी हो, थोड़ा-बहुत तो किया ही है। खेद मिटता है।

''और फिर अनेक ही मठ में जाकर पेट-भर प्रसाद पाते हैं। इससे आश्रम-पीड़ा होती है। वहाँ पर क्या पेट भरकर खाना चाहिए? संन्यासियों की भिक्षा का अन्न। वे जो वहाँ पर खाने देते हैं, रहने देते हैं, वह ही कितना सौभाग्य! वे गृहियों को देखकर भय पाते हैं। क्यों? क्योंकि, ये समस्त ग्राम्य (विषय) सुख लेकर रहते हैं। जभी उन्हें देखने से, स्पर्श करने से, साधुओं को आतंक होता है।

''हमें और भी एक ख्याल रखना चाहिए, साधुओं के संग तर्क-वितर्क नहीं करना। उनका दर्शन और प्रणाम— यही यथेष्ट education (शिक्षा) है। हो सकता है कोई व्यक्ति कुछ better equipped (अधिक जानता हो) कुछ बातें। तर्क के बहाने से, साधुओं को वह सब बताने से, उनके मन को कष्ट हो सकता है। मठ में जो कुछ वे कहें उसके लिए ऐसे हाथ जोड़कर homage (श्रद्धा) देनी चाहिए— 'जी हाँ', कह कर। तिरस्कार करने पर वहाँ कुछ बोलते नहीं। बाद में मठ के बाहर मिलने पर वरन् friendly (बन्धुभाव) से कुछ कहना ही हो तो कहा जा सकता है। वह भी अति ही विनीत भाव से कहना चाहिए। जिससे उनके मन को कष्ट न हो।

''कितना बड़ा आश्रम (संन्यास आश्रम)— वहाँ भी जाकर फिर और बातें? जरा सी common sense (सामान्य विचार-बुद्धि) द्वारा देखने से ही समझ में आ जाता है— अभी-अभी तो आए हैं सब छोड़-छाड़ कर। सब बातें वे जानते नहीं हैं— चेष्टा कर रहे हैं, पथ पर चल पड़े हैं। यही लक्ष्य कर लेने से ही उनके संग तर्क करना बन्द हो जाता है। उनके संग कभी भी तर्क

करना उचित नहीं है। स्वयं विद्वान, बुद्धिमान होते हुए भी नहीं। उनकी बात मान लेनी चाहिए। जो छत पर चढ़ गए हैं, उनके संग बातें की जाती हैं। सब खबर वे बतला सकते हैं।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— आज मठ से तीन जन साधु आए थे— दो जन थे मालाबार के लोग। *(सहास्य)* एकजन बड़े गोलमाल में पड़ा है। इसीलिए प्रश्न किया— 'ठाकुर का तो युगधर्म उपदेश है, भक्ति योग। स्वामीजी ने कहा, कर्मयोग। अब कौन से पथ पर जाना होगा?' मैंने कहा, आपने स्वामीजी का कर्मयोग पढ़ा है, उनका भक्ति योग भी है। उसे पढ़कर देखने से समझ सकोगे। जब कर्म की बात बोल रहे हैं, तब उसके ऊपर ही जोर दे रहे हैं। माने, अधिकारी-भेद से बोल रहे हैं यह बात।

''हमने और भी बतलाया, दो प्रकार के कर्म हैं— egoistic and altruistic (निज के लिए और परोपकार के लिए)। Egoistic (निज के लिए) जैसे family life (पारिवारिक जीवन); altruistic (परोपकार के लिए) हस्पताल, डिस्पैन्सरी आदि करना। दोनों से ही उनको प्राप्त किया जा सकता है यदि निष्काम होकर किया जाए। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निष्काम होकर युद्ध करने के लिए कहा— फल की आशा न रख कर। परिवार पालन करना, इससे भी मुक्ति होती है, निष्काम होकर कर सकने पर। निष्काम होकर न कर सके तो दोनों ही बन्धन का कारण हो जाते हैं।

''हमारे मिशन का जो काज है— यह तो चित्त-शुद्धि के लिए है। भगवत्-बुद्धि से सेवा करने से चित्त-शुद्धि हो जाती है, फिर इससे भक्ति होती है। ये समस्त हैं altruistic (परोपकार के लिए) काज। हस्पताल, डिस्पैन्सरी के ये काज ही निष्काम होकर करने से मुक्ति में सहायी हो जाते हैं।

''नाना पथ हैं। अर्जुन को कितनी ही बातें बतलाईं थीं। प्रथम राज्य का लोभ, फिर नामयश का लोभ दिखाया। इससे भी काज हुआ नहीं। फिर कहा : तुम क्षत्रिय हो, तुम्हारी प्रकृति में युद्ध है। वह तुम्हें करना ही होगा— 'प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति।' (गीता 18:59) मुझमें सब फल अर्पण करके

निष्काम होकर कर्म करो।

"भरत जी ने भी उसी भाव में ही राज्य-शासन किया था। राजधानी में न रह कर नन्दी-ग्राम में कुटीर में वास करते। फलमूल-आहार और भूमि-शय्या। कम्बलासन पर बैठ कर दिवा-निशि 'राम, राम' जप कर रहे हैं। वशिष्ठ, सुमन्त्र के आने पर उनसे राज्य-शासन का परामर्श किया करते। राम के राज का शासन और राम की चिन्ता— यही करके चौदह वर्ष काट दिए। भरत, अर्जुन— ये निष्काम कर्मियों के उदाहरण हैं।"

(2)

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— उनके संग योग न रखने से स्त्री, पुत्र, परिजनों के लिए कर्म बन्धन का कारण हो जाता है। प्राण देकर धन कमाया जाता है, फिर समस्त कुटुम्ब-सेवा में ही लगाया जाता है, इससे उनको पाया नहीं जाता। *(जनैक भक्त को लक्ष्य करके)* साधु-भक्तों की सेवा नहीं, केवल कुटुम्ब-सेवा। और फिर अपनी सेवा, कटोरियों में तरह-तरह का खाना सजाकर ढेरों खाना। इससे आत्मा मलिन हो जाती है। ऐसी प्रकृति है— स्वयं परिश्रम कर-करके मरता है और उसी धन से कितने ही worthless (बेकार) लोगों की सेवा होती है। छिः, छिः! क्यों इतना किया जाता है? उनके लिए, वे कौन हैं, उनका value (मूल्य) ही क्या है? ना तो कोई गुण और न ईश्वर में भक्ति ही, तब फिर क्यों उनके लिए इतना प्राण देना? पुत्र, कन्या, जमाई— इनके खाने से क्या लाभ? इससे ईश्वर-लाभ नहीं होगा। देव-सेवा, साधु-भक्तों की सेवा, दरिद्र-नारायण सेवा, ये सब करने से ही तो इनसे मुक्ति होगी। और केवल कुटुम्ब-सेवा से बन्धन होता है। यही सोचकर ही उनके पास से दूर रहा जाता है। आज देह चली जाए तो फिर क्या होगा, ये फिर भी क्या बचे रहेंगे नहीं? तब फिर क्यों इतनी चिन्ता? ये किसको प्यार करते हैं? रुपये को! इतना करके कमा कर जो खिला रहा है, उसको नहीं। इसी

बराहनगर में बाप की छाती में कर दिया आघात बेटे ने— और बाप की मृत्यु! किसी अल्प-सी बात पर कहा-सुनी हो गई। यही स्नेह? अक्षय डॉक्टर मर गया, लड़कों ने कुछेक दिन थोड़ा शोक-शाक किया। फिर जो करते थे, वही कर रहे हैं। श्राद्ध के साथ-साथ ही खाते, पीते, घूमते, मोटर चलाते। सब-कुछ कर रहे हैं। यही तो है पुत्र-कन्या का स्नेह बाप के लिए! जिसके लिए यह मनुष्य-जीवन मिला है, उसका क्या हुआ? उस ओर लक्ष्य ही नहीं। वृथा परिश्रम करके क्यों जीवन को नष्ट करना? भगवत्-सेवा में लगाना है उचित। अब भी समय है। उठ पड़ लगना उचित।

''हृदय मुखर्जी की बाड़ी पर गए सिओड़ में। उस दिन कुटुम्बियों का निमन्त्रण था। उन्हें देखते ही ठाकुर वापिस चल दिए। कहने लगे, 'इनको क्यों खिलाना, ये जहाँ बैठते हैं, वहाँ की सात हाथ नीचे की मिट्टी अपवित्र हो जाती है।' जो beastly life lead (पशुवत् जीवन यापन) करते हैं, उनकी सेवा में क्यों यह अजस्र व्यय?

''एक-एक बार जगन्माता से रो-रो कर ठाकुर कहा करते, 'माँ, और अधिक सहन कर पा रहा नहीं। एक तो कामिनी-काञ्चन में डूबे हुए रहते हैं, उस पर फिर कुटुम्ब-सेवा! किस प्रकार उन्हें उठाऊँगा?'

''आत्मीय जनों का एक अधिकार होता है, अन्न-वस्त्र का। मोटा-भात, मोटे-कपड़े का प्रबन्ध हो जाए तो बस। यह provision (व्यवस्था) करनी चाहिए, जब तक निजी देह-बुद्धि रहती है। जब तक अपनी क्षुधा, तृष्णा का बोध है, लज्जा बोध है, नाबालिग पुत्र और अविवाहिता कन्या— इनकी व्यवस्था करनी चाहिए। पिता-माता रहें तो उनकी सेवा जब तक जीवित रहें तब तक करनी चाहिए। लड़के-बच्चे के दाल-भात की व्यवस्था होते ही निकल पड़ना निर्जने। बीच-बीच में सम्वाद लेना। provision (प्रबन्ध) कर रखना दाल-भात, मोटे वस्त्र का— विलासिता के लिए नहीं, नाना भान्ति के अन्न, व्यंजनों के लिए नहीं, गाड़ी-भर कपड़ों के लिए नहीं। ठाकुर इसी प्रकार करने को कहा करते। और बाकी रुपये के द्वारा देव-सेवा, साधु-सेवा, दरिद्रनारायण सेवा करो। इससे आत्मा का कल्याण होगा—

मुक्ति होगी।''

श्री म *(एकजन भक्त के प्रति)*— देखिए ना, हम क्या लिए हुए रह रहे हैं? जिससे पशुजीवन बढ़े, उसकी ही चेष्टा सर्वदा करते हैं। आहार, विश्राम, सन्तानोत्पादन, मृत्यु— यही तो हो गया है जीवन। ईश्वर के लिए क्या करते हैं हम? निज भी यही कर रहे हैं, परिजनों को भी यही सिखा रहे हैं। लड़के-लड़कियों को ब्याह दो— संसार-वृद्धि हो, यही काज। किन्तु वेद कहता है, 'न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः'। (केनोपनिषद् 2:5)— इस शरीर में भगवान को जान न पाने से ही है महाविनाश। उसका मैंने क्या किया? जभी तो ठाकुर बीच-बीच में निर्जन में चले जाने के लिए बोलते। जिससे ये सब बातें निर्जन में स्मरण आ जाएँ— जीवन का उद्देश्य क्या है? और मैं क्या कर रहा हूँ? परिवार के लोग यदि पशु जीवन-यापन कर रहे हैं, तब तो उन्हें छोड़ना खूब आसान है। भक्त हों तो फिर छोड़ने में कष्ट हो सकता है। भक्त को तो छोड़ा भी नहीं जाता ना! संग में रहो तो भी आसक्ति का भय है। हम यह सब क्या लेकर रह रहे हैं?

''एक-एक बार बैठे-बैठे भावना किया करते और कहा करते, 'माँ, मैं क्या करूँ? कौन सुनता है? देख रहा हूँ— सब ही उड़द की दाल के खरीदार हैं।' अर्थात् कामिनी-काञ्चन के। समधी, जमाई के आने पर तो घर में कितना आयोजन खाना देने का— जैसे उत्सव ही लग गया हो! गुरु, साधु-भक्त आने पर दाल-भात। कुटुम्ब के स्नेह से मन नीचा हो जाता है। साधु-भक्तों के स्नेह से भगवान-लाभ होता है। जो जिसकी सेवा करता है, सो उसकी ही सत्ता प्राप्त करता है।''

श्री म *(सहास्य, भक्तों के प्रति)*— एक गुरु का शिष्य था एक दर्जी। गुरु-पत्नी को एक कुरता चाहिए था। शिष्य ने कहा, 'माता जी, बना दूँगा। टुकड़े बच जाएँ।' न टुकड़े ही बचे और न कुरता ही हुआ।

''एक व्यक्ति मछलियाँ पकड़ रहा है— दो सेर, चार सेर वजन की हैं सब मछलियाँ। गुरु के लिए एक माँगी गई। उसने कहा, 'ठहरो। ये सब बड़ी-बड़ी हैं— छोटी-मोटी एक पड़े तो दूँगा।' *(सब का हास्य)*। हाँ, गुरु के समय, बचा टुकड़ा और छोटी-मोटी मछली। ठाकुर देवता के लिए

'सन्देश' लाना होगा तो चीनी के कुछ डले। सिर पर मारो तो रक्त निकल आता है। जमाई बाबू के लिए सन्देश आएगा तो 'बौ-बाजार' जाओ। आठ रुपये सेर के सन्देश। देवालय के लिए पायस होगा। तीन सेर दूध को जल डाल कर दस सेर किया जाएगा। और जमाई-सेवा के लिए पायस करना हो तो दस सेर दूध जलाकर दो सेर करो। यही तो है संसार का चित्र! यही ले कर हम दिन-रात काट रहे हैं।''

श्री म *(स्वगत)*— बन्धु कौन? कुटुम्ब कौन?— जो है भगवान के पथ का सहायी। Eternal life (अमृतत्व) का जिसकी सहायता से लाभ हो, वही है वास्तविक बन्धु।

(भक्तों के प्रति)— 'चाचा अपना बचा'। *(सहास्य)* सुन्दर कथा ही बूढ़े ने मुझे सुनाई गाड़ी में। मिहिजाम से आ रहा था। रेल के बाबुओं ने अन्य लोगों को उठाकर मेरे सोने की जगह कर दी। गाड़ी चल दी। मैं सब को बुला-बुला कर फिर बिठाता हूँ। एकजन बैठना नहीं चाहते। नहीं महाशय, आप बैठिए। मैंने कहा, ''नहीं आप बैठिए। क्या होता है, एक रात बैठकर काट लेने से, ऐसी pleasant (सुन्दर) रात!'' इस बीच देखता हूँ कि गाड़ी के सब लोग मेरी favour (पक्ष) में हो गए हैं, एक बूढ़ा पास बैठा है, पैर में पट्टी बँधी है— घाव आदि कुछ रहा होगा। पैर समेट रखा है— कष्ट हो रहा है, ऐसा लगा। देखकर मैंने कहा, ''आप क्यों इतना कष्ट करके बैठे हुए हैं, पैर फैला कर बैठिए।'' बूढ़ा बोला— महाशय, 'चाचा अपना बचा'। *(सब का उच्च हास्य)* क्यों केवल उनके लिए ही वृथा परिश्रम कर-करके चित्त मलिन करना?

(3)

श्री म *(जनैक युवक के प्रति)*— शुकदेव ने कहा था, पराधीन को सुख नहीं है। और जो स्त्री के अधीन हैं, उसे तो सुख बिलकुल भी नहीं है— 'सुखं किं परतन्त्रस्य स्त्रीजितस्य विशेषत:।' स्त्री लेकर ही संसार है, और फिर ये चार-

पाँच जन एक संग में रह भी नहीं सकते। झगड़ा, हँसी-मजाक, चिड़पिड़, यही कुछ होता रहता है। गुस्से हुई, झट मारा एक मुक्का लड़के की पीठ में! अभिमान हुआ, झट आँखों में पानी और लगी नाक से सिंगनी फैंकने। ये समस्त लेकर ही गृहस्थी है— स्त्री, पुत्र, कन्या! विपद् में पड़ने पर, परीक्षा में पड़ने पर बोध होता है कि कोई किसी का नहीं। सब अपना ही अपना लिए हैं व्यस्त। Struggle for existence— 'चाचा, अपना बचा'।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— अवतार आते हैं, जीव को इसी दुरवस्था में से निकालने— अकर्म कम करवाने। क्या करने से अमृतत्व लाभ होता है, वही पथ दिखा देते हैं। जिन्होंने सुना, बच गए, न सुनने से विनाश। श्रीकृष्ण की बात परिजनों ने नहीं सुनी, जभी परस्पर मार-काट करके प्रभास में ध्वंस हो गए। वे जानते थे इनका यह परिणाम होगा। जभी पहले से ही तैयार थे। लड़के-बच्चे ऋषियों, ज्ञानियों का अपमान करने गए। फिर परस्पर झगड़ा, मार-काट से यदुवंश ध्वंस हो गया। श्रीकृष्ण बगलों में हाथ रखकर खड़े रहे साक्षी स्वरूप। प्रकृति का काज प्रकृति करेगी— Prakriti must assert itself. दुःखित नहीं हुए; for he was ready for the worst (क्योंकि पहले से ही वे इस परिणाम को जानते थे)।

श्री म *(शुकलाल के प्रति)*— ठाकुर कहा करते, रुपये से अर्ध-जीवन्मुक्त हो सकता है, यदि उसका उपयोग जाना हो। परिवार के लिए दाल-भात की व्यवस्था करके निकल पड़ना। बचे हुए धन से साधु-भक्त-देव-सेवा करना। बलराम बाबू यही किया करते। अहा, कैसा भक्त परिवार! विवाह हो जाने पर लड़कियाँ ससुराल के सब लोगों को भक्त बना दिया करतीं। शिक्षा का है ऐसा प्रभाव! स्नान करके, पूजा करके, चन्दन का तिलक लगाकर, फिर जप करके जल ग्रहण करेंगी। बूढ़ी सास सोचती है, बहू इतनी सी बच्ची, माला जपती है और मैं क्या कर रही हूँ। देखा-देखी उन्होंने भी जप करना आरम्भ कर दिया। ऐसी शिक्षा घर की। घर के बड़े जैसा करते हैं, बालक भी वैसा ही सीखते हैं; जभी तो कर्त्ताओं को खूब सावधान होना है आवश्यक।

''इस देह का तो कुछ भी निश्चित नहीं है— अभी है, अभी नहीं। जो

रुपया है, इसके interest (सूद) से चल सकता है। ऐसा होने से ही हुआ। अधिक करने जाओ तो समय नहीं होगा। चाल बढ़ाने में ही विपद् है। ऐसा सुना जाता है उस देश में (पश्चिम में) किसी ने चाल बढ़ा ली। लाट साहब के लड़के से लड़की ब्याह दी। अब लाट साहब की चाल पर चलना पड़ता है। इधर देना (कर्ज़) हो गया, अब फिर क्या करे? एक दिन दरवाजा बन्द करके ठस, आत्महत्या कर ली। (क्या) यही एकमात्र समाधान है इस समस्या का? जभी, 'चाचा, अपना बचा'।''

श्री म के इस सुदीर्घ और सुनिपुण अस्त्रोपचार से भक्तों के मन में कैसे संस्कार जन्मे, कौन बताएगा? बाहर से तो मानो निर्वाक्, निस्पन्द। भक्तगण क्या इस अमृत उपदेश का कुछ अंश भी कार्य में परिणत कर सकेंगे? जीव-प्रकृति है कैसी भीषण, दुर्निवार! भगवान के पथ में जो है सहायक, वही है सच्चा बन्धु— महर्षि की यह अमृतवाणी सुनकर क्या हम अपने आपको पारिवारिक बन्धन से मुक्त कर सकेंगे?

अनेक क्षण तक किसी के भी मुख से कोई भी बात नहीं आई। अन्त में ज्ञानवृद्ध भक्ताग्रणी बड़े जितेन साहसपूर्ण होकर भक्तगणों की मनोवेदना निवेदन करने लगे।

बड़े जितेन *(अति विनीत भावे)*— जी, ठाकुर के इन समस्त महावाक्यों का यदि कोई ठीक-ठीक पालन न कर पाए, तो उसका उपाय क्या होगा?

श्री म *(प्रशान्त भाव से)*— उनके शरणागत हो जाना। तब वे स्वयं भार ले लेते हैं। स्वयं करवा लेते हैं। वे उत्तम वैद्य हैं।

बड़े जितेन *(हताश भावे)*— जो भी कहें महाशय, Higher Power (ईश्वर) के पास से शक्ति बिना पाए साधन, तपस्या कुछ भी हमसे होता नहीं।

श्री म— हाँ, Higher Power (ईश्वर) ही ने कहा है— साधन, तपस्या करनी चाहिए। कम से कम चेष्टा तो करनी चाहिए। उद्यम करना ही चाहिए। उन्होंने कहा, प्रवृत्ति से निवृत्ति भली। Success (सफलता) से failure (विफलता) भली। Success (सफलता) से उन्हें भूल जाता है

मनुष्य। Failure (विफलता) में उनका चैतन्य होता है। 'प्रवृत्ति निवृत्ति जाया तार निवृत्तिरे संगे लोबि।' (प्रवृत्ति, निवृत्ति पत्नियाँ; निवृत्ति को ही संग लोगे।)

''मूल बात है, उनके शरणागत होना; और उसके लिए जो कह गए हैं, उसकी चेष्टा करना। बाकी काज उनका। वे तो सब के लिए भावना करते हैं— योगी, योगी-भोगी, और भोगी। सकल भार उनके ऊपर। किन्तु यदि तुम जीवन में शान्ति चाहो, सुख चाहो, उनके (ईश्वर के) लिए चिन्तन करने की चेष्टा करो। उनकी शरण लो।''

कोलकता; 28 मई, 1923 ईसवी, सोमवार।
14 ज्येष्ठ, 1330 (बंगला) साल, शुक्ला त्रयोदशी।

त्रयोदश अध्याय

इसी मुख से वे बातें करते हैं

(1)

मॉर्टन स्कूल। अपराह्ण प्राय: सात। श्री म दो तल के बरामदे के पूर्व प्रान्त में बैठे हुए डॉक्टर बक्शी के साथ बातें कर रहे हैं। कुछ काल परे जगबन्धु को पुकार लिया। इसी बीच योगेन आ गए। योगेन की वयस है पचास। परिवार में मात्र एक पुत्र। चित्त में शान्ति नहीं। पीछे श्री म की चेष्टा से दक्षिणेश्वर के मन्दिर में खजाञ्ची के पद पर नियुक्त हो गए थे। प्रणाम करके योगेन अपनी दु:ख-गाथा कहने लगे।

योगेन *(श्री म के प्रति)*— जी, आप मुझ पर कुछ कृपा कीजिए, कोई उपाय कर दीजिए।

श्री म— गए थे अन्नदा ठाकुर के यहाँ? ईश्वरीय कथा क्या-क्या हुई? स्तव, भजन कुछ हुआ?

योगेन— जी, गया था। ऐसा कुछ नहीं हुआ वहाँ पर। मन बड़ा ही चञ्चल है। कुछ उपाय कर दीजिए। आप अवतारप्राय हैं।

श्री म *(तीव्र प्रतिवाद के स्वर में)*— भाग्य से आपने कहा (अवतार-प्राय)। कृतार्थ हो गया और क्या? केशवसेन की ही बात नहीं ली थी ठाकुर ने, और आप की बात? नारद, शुकदेव जैसे किसी ने कहा होता तो शायद कुछ होता भी।

योगेन *(अप्रस्तुत भाव से)*— आप ईश्वर की बात छोड़ अन्य कुछ बोलते ही नहीं। अन्य स्थानों पर तो अन्य बातें भी होती हैं। मुझसे धृष्टता हुई है, क्षमा कीजिए।

श्री म *(सकरुण भावे)*— ईश्वर की बातें करने में मेरा अपना कल्याण है। गीता में है 'कथयन्तः परस्परम्।' (गीता 10:9) उनकी बातें भक्तों के संग करने से अपना मन पवित्र होता है। इसमें मेरा लाभ है। उनकी बातें कहना और फिर सुनना। जभी तो आपसे कहता हूँ, अन्नदा ठाकुर के वहाँ पर क्या सब बातें हुईं? कौन-सा गाना हुआ, उसकी प्रथम पंक्ति याद करके लाइयेगा। ईश्वरीय बात सुनकर हमारा प्राण शीतल होता है। 'चाचा अपना बचा।' *(हास्य)* यही जो मठ की बातें, साधुओं की बातें रोज़ सुनी जाती हैं, इनके द्वारा हमारा कितना कल्याण हो रहा है!

श्री म कमरे में जाकर बैठ गए। जरा परे ही पुनः शुकलाल के संग में बरामदे में जाकर बातें करने लगे। सामान्य बात भी हो तो जिसकी बात होती है, उससे ही एकान्त में कहते हैं। किसी की बात कोई और न जाने। पुनः कमरे में जाकर बैठ गए।

बड़े जितेन *(प्रार्थना के भाव में)*— एक गाने में आता है 'वत्सेर पिछु जेनो धेनु'— बछड़े के पीछे जैसे गाय। बछड़े के ऊपर जैसे गाय की दृष्टि, वैसे ही किसी महापुरुष की दृष्टि यदि किसी के ऊपर सर्वक्षण रहे तब तो उसे और भय नहीं रहता।

श्री म *(अन्यमनस्क भाव में)*— आहा, वत्स का हम्बा, हम्बा रव। वेद में है बछड़े की बात।

यह बात बोलते-बोलते श्री म का भावान्तर उपस्थित हो गया। उज्ज्वल नयन युगल किसी सुदूर देश में निबद्ध हो गए। मुखमण्डल प्रशान्त, गम्भीर। कुछ काल परे धीरे-धीरे बातें करने लगे : वत्स के पीछे जैसे गाय दौड़ती है वैसे ही यदि कोई उनके लिए पागल हुआ फिरे, तब उनका दर्शन होता है। *(स्वगत)* 'तपः ब्रह्म'। *(भक्तों के प्रति)* साधन चाहिए। इसके बिना होता नहीं। ऋषियों ने सब छोड़कर (त्याग से ही) उन्हें पाया था— 'त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः'। (कैवल्य उपनिषद् : 3)

बड़े जितेन ने माँगी कृपा, श्री म ने कहा— त्याग, तपस्या चाहिए। कृपा-लाभ के लिए भी क्या त्याग-तपस्या का प्रयोजन है?

श्री म पुनराय दीर्घ काल तक मौन हुए रहे; और फिर बातें करने लगे।

श्री म *(कार्त्तिक के प्रति)*— डॉक्टर बाबू, मठ में ज्ञान महाराज ने क्या कहा था आपको?

डॉक्टर— 'कथामृत' उत्सव की बात। जिस तारीख को 'कथामृत' प्रथम बार हुई थी, उस दिन प्रति वर्ष उत्सव करना। कहा, स्वामी विवेकानन्द जी ने 'कथामृत' के सम्बन्ध में जो कही है इतनी बड़ी बात, और किसी भी पुस्तक के सम्बन्ध में नहीं कही। 'कथामृत' द्वारा ही तो हमने सर्वप्रथम ठाकुर की बातें जानी हैं। वे (श्री म) हैं, अब से ही आरम्भ हो जाए तो अच्छा है।

श्री म— हाँ, यदुमल्लिक की बाड़ी में महेन्द्र गोस्वामी 'भागवत-उत्सव' किया करते। ठाकुर इस उत्सव में जाया करते। महेन्द्र गोस्वामी ने मुझे कहा था, भागवत भगवान ही तो है— जभी उनका उत्सव। ठाकुर की बातें सब वेद-वाक्य। निज ही कहा, 'भक्त-भागवत-भगवान एक'। भगवान की वाणी भागवत। कथामृत है उनकी ही वाणी, जभी तो भागवत।

''इस बात पर और एक बात स्मरण हो आई। छोटी खाट पर बैठे हुए हैं ठाकुर, मुझे निकट बुला कर कहा, 'देखो, ऐई मुख दिये तिनि कथा कन।' (देखो, इसी मुख से वे बातें करते हैं।) और कोई भी बात नहीं, एक यही बात ही parenthetically (असंलग्न भावे) बोल गए।

''आहा, उनकी वाणी वेद-मन्त्र! संस्कृत में न भी हो, तो भी मन्त्र। 'ब्रह्म-माया-जीव-जगत्' यही है एक मन्त्र। इसका जाप करने से सिद्ध अर्थात् ईश्वर-दर्शन होता है। 'उन्हें पुकारोगे मने, बने और कोने।' यह भी और एक मन्त्र। 'एकटि थाक आछे, ईश्वर बोई किछु जाने ना— जेमन मौमाछि, फूले बोई बोसबे ना।' (एक श्रेणी है जो ईश्वर के बिना (अतिरिक्त) कुछ भी नहीं जानती, जैसे मधुमक्खी फूल बिना नहीं बैठेगी।) यह भी और एक है। 'वे अन्दर, बाहर और फिर उसके भी अतीत,' यह और एक। यह गायत्री का सार है। अब मैं यदि जप करूँ, 'वे अन्दर, बाहर और अतीत' तो उससे फिर क्या होगा नहीं?

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— चैतन्य के लिए कितनी बातें बोल गए हैं! सुनते ही कहाँ हैं लोग? 'मृत्यु-चिन्ता भली, मृत्यु-भय भला नहीं।' इसी मृत्यु की बातें कितनी करके समझा रहे हैं। मन में याद कहाँ रहती हैं हमें? आँखों के सामने देखा करते थे कि ना! कहा करते, 'सब चीजों पर मृत्यु की छाप लगी हुई है।'

''बगुला भक्त की कहानी सुनाई थी एक दिन। बगुला जल में बैठा है। लक्ष्य मछली के ऊपर। मछली हिल रही है, वह भी बढ़ रहा है। और तट पर व्याध बैठा हुआ है, वह भी आगे बढ़ रहा है। ज्यों ही मछली पर झपटा, त्यों ही पीछे से व्याध का तीर बीन्ध गया और प्राण चला गया।

''यही जीव की अवस्था है। ये सब बातें क्यों बतलाते? यदि चैतन्य हो जाए! मृत्यु जो सम्मुख दण्डायमान है। लोग क्या बोलने से ही सुनते हैं? वही केवल लिए सब डूबे हुए हैं संसार में। खाली पेट ही पेट; और सन्तानोत्पादन, सन्तानपालन। वे (पशु) भी वही लिए हुए हैं। सारा दिन (ऐसे किए सिर नीचे करके) खाते-ही-खाते हैं। और इसी बीच देह-सुख।

''आहा, गृहियों के लिए कितना सहज कर दिया है! एकदम त्याग की बात बोलने से भय पाएँगे। जभी निर्जनवास की बात कहा करते। तीन दिन, सात दिन या दस दिन, रहने से ही होता है। यह मानो केले के भीतर कुनीन। कड़वी जान कर बालक नहीं खाता। माँ केले के भीतर छिपा कर देती है। इतना सहज कर दिया है पथ, तो भी करते हैं कहाँ लोग? काज और काज। सारा दिन हाड़-तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। अवसर ही कहाँ है उन्हें पुकारने का? कितनी ही बार तो कहा, झटपट खत्म कर लो। 'खाने-पहनने की व्यवस्था करके बाहर निकल पड़ो।' कौन सुनता है उनकी बात?''

(2)

श्री म *(युवक के प्रति)*— समाधि तो आदमी की normal state (सहज अवस्था) है। किन्तु अब abnormal (असाधारण) हो गई है। क्यों? भोग-वासना से। भोगवासना के जाने से ही समाधि। पंचायती दुर्गा-पूजा में सुन्दर दिखाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता ध्यानमूर्त्ति में बैठे हुए हैं। इसका अर्थ है, जीव की normal state (सहज अवस्था) है समाधि। संसार में पड़कर वह abnormal (असाधारण) हो गई है। जैसे कोई सोया हुआ था अर्थात् समाधि में था। तब नाक के पास किसी ने नसवार लाकर रख दी। अब छींकते-छींकते प्राण जा रहा है। निद्रा भंग हो गई। जीव का भी ठीक वैसा ही हाल हुआ है। समाधि अर्थात् भगवान को भूल कर विषय में मस्त हुआ पड़ा है।

''संसार में एकदम ही डूबे पड़े हैं सब लोग। ठाकुर ने कहा था, 'एक व्यक्ति को ही केवल देखा था ऊर्ध्व दृष्टि, फौजदारी बालाखाना के मोड़ पर। और सब थे निम्नदृष्टि।' कोलकता गाड़ी करके आया करते। मुख बाहर निकाल कर रास्ते के सब लोगों को देखा करते। निम्नदृष्टि माने केवल पेट के ही ऊपर दृष्टि। आहार, विश्राम, सन्तानोत्पादन और सन्तान पालन— ये लिए ही सब हैं व्यस्त।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— सुना था, पहले लड़के की वयस जैसे ही सात वर्ष की हो जाती, तैसे ही उपनयन देकर गुरुगृह में भेज दिया करते। उपनयन माने ब्रह्म मन्त्र। वह दे दिया तो 'देना' हो गया। अब जाकर साधन करके उनको जाग्रत करो। लड़के को तो discretion (विचार-बुद्धि) नहीं— जभी गुरु के ऊपर समस्त भार। गुरु nature (प्रकृति) देखकर भिन्न-भिन्न व्यवस्था किया करते। किसी को तीर्थ करने भेज दिया। किसी को अपने पास रख लिया। और किसी को गृह में भेज दिया। बड़ा सुन्दर नियम था। अब वे समस्त लोप हो गए हैं। पहले के पितागण प्रकृत बन्धु थे। प्रकृत बन्धु का काज होता है— eternal life (अमृतत्व) का सन्धान बता देते हैं। केवल पेट को खिलाना और पहनाना प्रकृत बन्धु का काज नहीं।

''ठाकुर ने बताया था : हमारे इस शरीर के भीतर और भी दो शरीर हैं— स्थूल और कारण। इन तीनों को ही आहार देना चाहिए। केवल अन्न की व्यवस्था कर देना, इसे ही क्या फिर स्नेह कहते हैं? यह तो पशु शरीर का काज है— इस स्थूल शरीर का। सूक्ष्म शरीर का आहार है, विद्या-चर्चा, शिल्प, विज्ञान, साहित्य, इतिहास— नाना विद्याओं की आलोचना। इससे judgement and reasoning (युक्ति और विचार-शक्ति) बढ़ती है। और कारण शरीर का आहार है— ध्यान, जप, विवेक, वैराग्य, ज्ञान-भक्ति, प्रेम— यह सब। इस कारण शरीर के द्वारा मनुष्य देवत्व लाभ करता है। वे ही प्रकृत बन्धु हैं जो इस कारण शरीर के आहार की व्यवस्था करते हैं।''

श्री म *(जनैक गृहस्थ भक्त के प्रति)*— केवल पेट को बहुत सारा खिलाना, इसे स्नेह नहीं कहते। इसके लिए इतना कठिन परिश्रम और अर्थोपार्जन! राम, राम! इसी को क्या कहते हैं स्नेह? लड़का ज्यों ही बड़ा हुआ, त्यों ही कर दो ब्याह— स्वयं जो लिए हुए हैं, वही दो उसे भी। भगवान का नाम नहीं। साधुभक्त सेवा का नाम नहीं। उपार्जित अर्थ से केवल पेट-पूजा। यह स्नेह! छिः, छिः! *(उत्तेजित भावे)* मुँह में आग ऐसे प्यार के।

''मणिमल्लिक का लड़का मर गया। पहले तो कितना शोक प्रकट किया ठाकुर ने। कैसे उसे समझाया? ओ माँ! अन्त में कह रहे हैं, 'जीव, साज समरे, रणवेशे काल प्रवेशे तोर घरे।' (हे जीव, समर के लिए सजो, रणवेश में काल ने तेरे घर में प्रवेश कर लिया है।) मूर्ख, तुम शोक कर रहे हो, मृत्यु को भूले हुए हो। तुम्हारे भीतर जो मृत्यु पूर्व से ही घुसी हुई है, मृत्यु को जीतने के लिए तैयार हो जाओ। उस मृत्युञ्जय की शरण लो। 'शमन डरे जार शासने' (जिसके शासन में यमराज भी डरता है)।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ये समस्त अद्‌भुत काण्ड देख कर ठाकुर मुस्कराया करते। कहीं कुछ भी नहीं। अकेले बैठे-बैठे हँस रहे हैं। Individual case (व्यक्तिगत भावे) जब देखते, तब हँसा करते। और फिर जगत् का व्यापार, जब collective way (समष्टिगत भाव) में देखते, तब ताली बजा-बजा कर नाचते महामाया का नाच देख-देख कर। इतना सब करने पर,

इतनी बातें बोलने पर भी लोगों को कहाँ चैतन्य होता है? 'तीन दिन करने से ही हो जाता है', कहा था। करेगा कैसे? संस्कार हों, तभी तो होता है।

"एक version (मत) है : जन्म मात्र से ही शुकदेव तपस्या करने चले गए थे। ऐसा सब संस्कार रहने से होता है। पूर्व जन्म का कुछ सञ्चित रहना चाहिए, तब होता है। नहीं तो मन ही जाता नहीं उस ओर। कैसा अज्ञान है हमारा! जिन्हें 'म्लेच्छ' कहा जाता है, वे भारत की ओर ताक रहे हैं। कहते हैं, भारत ने ही problem of life (जीवन समस्या) solve (समाधान) की हुई है। किन्तु हमें चैतन्य होता नहीं। Plain living and high thinking (सरल जीवन-यात्रा और भगवत्-चिन्तन)— यही है भारत की सनातन वाणी— ऋषियों का आविष्कार; किन्तु हम उसे भूले हुए हैं।"

(3)

बड़े जितेन— तपस्या करने की फिर वैसी शक्ति ही कहाँ है? मन में भी नहीं, शरीर में भी नहीं।

श्री म— वह कैसी बात? शक्ति तो बढ़ेगी तपस्या करने से। तपस्या का अर्थ ही है— स्वस्वरूप को पहचानने की चेष्टा। जितना उस ओर मन जाएगा, उतनी ही शक्ति बढ़ेगी। हम क्या हैं? ईश्वर की सन्तान या ईश्वर— यह अभिमान बढ़ते ही शक्ति अदम्य हो जाती है। हनुमान की कैसी महाशक्ति! तपस्या करने से ईश्वर की अनन्तशक्ति सहायता करती है। उस शक्ति के साथ मेल हो जाता है। जभी तो जिनका मन दुर्बल है, उन्हें तपस्या करना उचित। तभी शक्ति बढ़ेगी। वे ही शक्ति देते हैं। ठाकुर ने कहा है तपस्या करने के लिए। उनकी बात पालन करने की चेष्टा करने पर वे ही शक्ति देंगे— शारीरिक, मानसिक दोनों ही। मन सशक्त होने पर शरीर उसका अनुगामी होता है।

(उत्तेजित भावे) "यह करते ही कहाँ हैं लोग? करके देखे तो कोई। उनके केवल मात्र ये दो महावाक्य ही पालन करिए। उन्होंने कहा है, 'साधुसंग सर्वदा दरकार।' और 'स्त्री-दर्शन नहीं करेगा साधक अवस्था में।'

करके देखे कोई इन दो का ही पालन। सिद्ध हो सकता है यदि कोई पालन करे। उसका समय नहीं, कुछ भी करूँगा नहीं और शक्ति झट करके आ जाए। गुरु मन्त्र देकर कहते हैं, साधन-तपस्या द्वारा इसको जाग्रत करो। 'शक्ति-शक्ति' करके चीत्कार करने से क्या फिर शक्ति आती है? पालन करना चाहिए, चेष्टा चाहिए। अवतार होकर, आकर ठाकुर जो कह गए हैं, उसका पालन करने पर शक्ति अवश्य आएगी। जभी संस्कार मानना चाहिए। यह हो तो झट करके हो जाता है। पाँच वर्षीय शिशु मस्त होकर बजाता है, या गाना गाता है, क्यों?— संस्कार हैं, पूर्व का किया हुआ है, तभी।''

श्री म *(अन्तेवासी के प्रति)*— कल शुकदेव के वैराग्य की बात जो पढ़ी गई थी— वही जबानी एक बार कहिए ना।

अन्तेवासी— शुकदेव को वैराग्य हो गया है। पिता व्यासदेव शोक में अश्रु विसर्जन कर रहे हैं। कहते हैं, 'पुत्र, तुम विवाह करके गृहस्थ हो जाओ। तब फिर वार्धक्य में धर्माचरण करना।' शुकदेव ने उत्तर दिया, 'परतन्त्र व्यक्ति को सुख कहाँ— विशेषत: जो स्त्री के आधीन है, उसे तो सुख बिलकुल भी नहीं। आत्मीय कुटुम्बी धन के लिए सर्वदा तिरस्कार करते हैं। रात्रि में जभी सुख से निद्रा भी नहीं होती। गर्भवास, जन्म, जरा, मृत्यु सब ही दु:ख-पूर्ण है। जिससे इन सब दु:खों का अवसान होता है, उसकी ही चेष्टा करूँगा,' यह कह कर संन्यास ग्रहण कर लिया।

श्री म— माने, तपस्यार्थ गृह-त्याग कर दिया। देखिए, तपस्या करनी ही चाहिए। तपस्या बिना होता नहीं। तपस्या करते-करते आकाशवाणी हुई, 'आमि ई सब होये रयेछि'। (मैं ही सब होकर रह रहा हूँ।) वह न हो तो महापुरुष जन क्यों तपस्या करते हैं? वेद में जभी तो इसको ब्रह्म कहा गया है— 'तप: ब्रह्म।' (तैत्तिरीय उपनिषद्, भृगुवल्ली : 3)

बड़े जितेन *(विनीत भावे)*— इस दशा से तो मन जरा भी हिलता नहीं। क्या किया जाए? कृपा न हो तो कुछ भी होगा नहीं।

श्री म— उनके पास प्रार्थना करने से सब हो सकता है। उनकी बात पर विश्वास करके अल्प चेष्टा करना उचित। क्या आदर्श! कितनी ही बार

कहा, 'आमाके चिन्ता करलेइ हबे।' (मेरा चिन्तन करने से ही होगा।) और कुछ भी दरकार नहीं। निर्जन में बैठ कर कुछेक दिन इसी बात की भावना करने की चेष्टा करना।

''कितना सीधा पथ! नाना प्रकार की बातें ही नहीं। दो रोटी की व्यवस्था करके उनका चिन्तन करो। दो भक्त जाया करते ठाकुर के पास। एक के द्वारा कुछ दिन कुछ जप-तप करवा लिया। वह फिर और गया ही नहीं। ठाकुर ने पूछा, 'अमुक क्यों नहीं आता'। किसी ने कहा, 'उसे तो आने का समय ही नहीं होता।' ठाकुर सुन कर कहने लगे, 'हाँ, उसका इस जन्म में यहीं तक, इससे अधिक और होगा नहीं।' कितने जन्म तपस्या करने पर उन्हें पाया जाता है!

''एक दिन विवेकानन्द आदि सब बैठे हुए हैं। ठाकुर कह रहे हैं, 'अच्छा, एक आदमी छत पर चढ़ गया है, और एक को देखता है कि चढ़ने की चेष्टा कर रहा है। पहला उसको चढ़ने में सहायता कर सकता है कि नहीं, बोलो?' माने, मैं छत पर चढ़ गया हूँ, मेरी बात सुनो। कितनी भान्ति स्वयं को प्रकट करके कह रहे हैं, तब भी चैतन्य होता नहीं लोगों को। होगा भी कैसे? सब ही जो हैं निम्नदृष्टि।

''मिहिजाम के मैदान में जाकर यदि मैं preach (प्रचार) करूँ पशुओं को— ईश्वर सत्य, संसार अनित्य; तब क्या वे सुनेंगे? महामाया का है विचित्र खेल, अद्‌भुत काण्ड! यही देख कर ठाकुर ताली बजा-बजा कर नाचा करते। थियेटर में दिखलाते हैं 'ताज्जुब काण्ड'। चीनी, अंग्रेज़ी, जापानी, जर्मनी, नाना देशों के लोग नाना भाषाओं में बोलते जा रहे हैं। परिणाम में होता है एक महा 'गण्डगोल' (शोरगुल) की सृष्टि। किसी की बात कोई समझता नहीं, किसी की बात कोई सुनता नहीं। वैसा ही है यह संसार।''

डॉक्टर बक्शी— ठाकुर कहा करते, मेरा चिन्तन करने से ही होगा। क्या चिन्तन करना? उनके पादपद्म-चिन्तन करना किंवा कुछ और?

श्री म— हाँ, एक दिन पादपद्म ही हों। एक दिन उनकी लीला-कथा।

एक दिन उनका उपदेश। ये सब ही उनका चिन्तन। यही चिन्तन करते-करते life and soul (जीवन और आत्मा) की बड़ी बड़ी problems (समस्या समूह) क्रमशः अपने आप ही solved (समाधान) हो जाएँगे। और एक है, वहाँ चिन्तन नहीं। उनकी बातें भावते-भावते मन का लय हो जाता है। मन ही नहीं, फिर चिन्तन करे कौन तब? गाने में है— 'मजलो आमार मन-भ्रमरा श्यामापद नील कमले। मायेर चरण कालो, भ्रमर कालो, कालोय कालो, मिशे गेलो। पंचतत्त्व प्रधान मत्त रंग देखे भंग दिले।'— मन स्वरूप जो काला भ्रमर, वह माँ के पादपद्मों में बैठा मधुपान में मस्त है, पञ्चतत्त्व अर्थात् अविद्या, अज्ञान उसे देखकर चले गए हैं।

"और क्या करें? वहाँ जाने का हुकुम नहीं— इलाके के बाहर। यह है समाधि की अवस्था। भगवान-दर्शन होने पर मन का लय हो जाता है। यह क्या फिर लाठी मार कर मन को उठाना है? वह नहीं होता— स्वाभाविक गति है। एक है बजरा, उसे पचास डाण्ड खींच रहे हैं, हिलता भी नहीं। क्यों? लंगर जो पड़ा हुआ है। मन विषय-चिन्ता में बन्धा रहता है। क्योंकर उठे?"

बड़े जितेन *(स्वगत)*— मन तो वहाँ मस्त हो गया है विषयानन्द में, और कुछ भी भला लगता नहीं।

श्री म *(धमका कर)*— विषयानन्द की इतनी चिन्ता क्यों? ठाकुर ने जो कहा, वही हमारे लिए करना उचित है। कहा, 'आमाके चिन्ता करो।' (मेरा चिन्तन करो।) उसकी ही चेष्टा करो। अन्य बातों में मन क्यों देना? उनका चिन्तन कर लेने पर जैसे जमीन का जल सूख जाता है, वैसे ही काम-वाम सूख जाएगा। मन जब तक है, तब तक एक-न-एक चिन्ता रहेगी ही। लोग कहते हैं, चिन्ता मत करो। वह क्या होता है? मन के रहते चिन्ता रहेगी ही। जभी उनका चिन्तन करना, अन्य चिन्ता न करके।

डॉक्टर बक्शी— वह (समाधि) तो गुरु-कृपा से होती है। गुरु ने कहा, हजार गाँठों वाली रस्सी, बाजीगर हाथ हिला कर सब खोल सकता है।

श्री म— हाँ, गुरु-कृपा से ही होती है। तभी तो गुरु ने जो कहा है,

उसकी चेष्टा करना उचित। कृपा-प्रकाश का एक सूत्र चाहिए। केवल 'कृपा, कृपा' करने से कृपा नहीं होगी। जभी क्राइस्ट ने कहा था, केवल प्रभु-प्रभु करने से क्या होगा? मेरी बात सुननी पड़ेगी— 'And why call ye me Lord, Lord, and do not the things which I say?' (St. Luke 6:46) ठाकुर ने कितनी तपस्या की! हमको एक अंश ही करने को कहा। वही हमें करना उचित। 'मन्त्रमूलम् गुरोर्वाक्यम्।'

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— मन क्या आसानी से जाना चाहता है? एक भक्त सब छोड़-छोड़ कर ठाकुर के पास आकर रहे। अन्य एक भक्त ने ठाकुर से कहा, 'उसके इतने ऊँचे घर की बात आप कहते हैं, किन्तु स्त्री की चिन्ता करता है'। सुनकर ठाकुर बोल उठे, 'वह नहीं करेगा तो क्या? देह जो धारण किए हुए है। जिसे ज्ञान है, उसे ही है अज्ञान।' विज्ञानी होने पर फिर यह द्वन्द्व नहीं रहता। यह एक श्रेणी है। उन्हें अधिक कुछ करना नहीं पड़ता अपने आप। वे ही करते हैं उनके लिए।

''एक भक्त के लिए ठाकुर ने ऐसे *(जप का अभिनय करके)* किया। फिर पीछे कहने लगे, 'खूब ऊँचा घर। देखा, मुझ से जप करवा लिया।' वे जानते हैं, भक्त नहीं करेगा। इसलिए स्वयं ही कर रहे हैं। यह है एक अलग ही श्रेणी। एक गाने में है— 'तारिणी, आछि ऋणी तव पाय।' (हे तारिणी, मैं तुम्हारे चरणों में ऋणी हूँ।) भगवान के पास हम ऋणी हैं। अर्थात् normal state (सहज अवस्था) है उन्हीं के पादपद्मों में मन को रखना— समाधि।

''संसार में पड़ कर जीव उसे भूल गया है, जभी ऋणी; वहाँ तो फिर जाना ही पड़ेगा सभी को। कितनी प्रकार से अभय दिया ठाकुर ने! ईसु ने भी अभय देकर कहा था, भक्तों को विषण्ण देख कर, 'तुम आनन्द करो। इस दु:खमय संसार में मैंने तुम्हारा भार ले लिया है। 'मा भै: !'— In the world ye shall have tribulation : but be of good cheer; I have overcome the world. (St. John 16:33) 'तुम कौन और मैं कौन' यह जान लेने से ही होगा। तुम्हें अधिक कुछ करना पड़ेगा नहीं,' यह है ठाकुर की अभय वाणी।''

श्री म *(जनैक भक्त के प्रति)*— ऐसी अन्तर्दृष्टि थी ठाकुर की! एक बार नजर डालने से ही भीतर की सब बातें जान लिया करते— किसके भीतर क्या है। जैसे काँच की अलमारी का सब कुछ दीख जाता है। उनकी बातें सुनने से ही शान्ति। संस्कार नहीं रहने से ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं। पूर्व जन्म का किया हुआ रहने से तनिक-से ही झट करके जल उठता है। एक मोर को चार बजे अफीम दी गई थी। अब रोज आता है अफीम के नशे में!

''संस्कार रहने से उनकी बात सुनने का नशा होता है। एक भक्त आए थे यहाँ। ऐसी बातें सुनकर रो पड़े। मठ की चर्चा पर कहने लगे, 'इसे छोड़ स्वर्ग और कहाँ पाऊँगा?' भोग शेष हो गया है— निर्मल हो रहा है, तभी ऐसी बातें, और क्रन्दन आता है। अरुणोदय के पश्चात ही सूर्योदय।''

कोलकता; 29 मई, 1923 ईसवी, मंगलवार।
15 ज्येष्ठ, 1330 (बंगला) साल, पूर्णिमा।

चतुर्दश अध्याय

उपाय— साधुसंग, साधुसेवा और प्रार्थना

(1)

श्री म दोतल के कमरे में बैठे हैं। अब सन्ध्या सात। चारों ओर भक्तगण। शुकलाल, डॉक्टर, विनय और जगबन्धु। देखते ही देखते बड़े जितेन, विरिंचि, छोटे जितेन और सुखेन्दु आ गए। कुछ क्षण में राखाल, योगेन, मनोरंजन, छोटे नलिनी प्रभृति भी आ उपस्थित हुए। भवानीपुर से डॉक्टर इन्दुमाधव मल्लिक के दोनों भ्राता आए। इनमें से एक श्री म के पुत्र प्रभास बाबू के श्वसुर हैं। प्राथमिक आदर-कुशल, प्रश्नादि पर श्री म उनके साथ ईश्वरीय कथा कह रहे हैं।

श्री म *(मल्लिक महाशय के प्रति)*— परमहंस देव कहा करते : ईश्वर का नाम श्रवण व मनन करने से यदि किसी को रोमाञ्च हो जाता है और प्रेमाश्रु-वर्षण होता है तो समझना होगा, उसका कर्मत्याग होने वाला है। माने— ईश्वर के खूब निकट चला गया है। जैसे अरुणोदय हो जाने पर सूर्योदय में और अधिक देरी नहीं होती, वैसे ही ईश्वर के नाम से देह में ये सब सात्त्विक लक्षण दिखाई देने पर समझना होगा, शीघ्र ही वे दर्शन देंगे। ऋषियों ने द्वापर युग में बलि के यज्ञ में कहा था, 'अच्छा शरीर इस प्रकार मुहुर्मुहु रोमाञ्चित क्यों हो रहा है? तब क्या यज्ञेश्वर स्वयं आए हुए हैं?' यज्ञेश्वर आए हैं माने भगवान के खूब सान्निध्य में आ गए हैं, समझना होगा। भगवान वामन रूप में यज्ञस्थली में उपस्थित थे। किन्तु सब ही तो नहीं जानते थे यह बात। ऋषियों ने रोमाञ्च द्वारा अनुमान लगा लिया था कि भगवान अति ही निकट हैं।

''शास्त्र में है गर्भधारिणी से मन्त्र लेने की व्यवस्था। आप खूब सौभाग्यवान् हैं। माँ के पास से ऐसे उपदेश पाए हैं, अब विश्वास करके काज में लगना।''

मल्लिक महाशय— विश्वास से क्या नहीं हो जाता? सुना है काशी में मणिकर्णिका घाट पर माँ अन्नपूर्णा वेश्या रूप धारण करके मृत पुत्र के दाह-संस्कार के लिए सब से सहायता की प्रार्थना कर रही हैं। एक ही condition (शर्त) है, जो निष्पाप होगा, केवल वही मृत देह स्पर्श कर सकेगा। कोई भी आगे नहीं आता। एक शराबी नित्य गङ्गा-स्नान किया करता था, आज भी गङ्गा-स्नान करके आया। मृतदेह देख कर संस्कार करने के लिए अग्रसर हुआ। देवी ने कहा, ''तुम मद्यपायी हो। मुख से मद की दुर्गन्ध आ रही है। देह स्पर्श मत करो।'' उसने कहा, ''माँ, क्या कह रही हो! मैं तो अभी-अभी गङ्गा-स्नान करके आया हूँ। समस्त पाप दूर हो गए हैं— मैं पवित्र हूँ।''

श्री म— ठाकुर भी एक गल्प सुनाया करते। कृष्ण किशोर नामक एक भक्त थे दक्षिणेश्वर में। खूब निष्ठावान और कुलीन ब्राह्मण। श्री वृन्दावन में गए। एक दिन पानी की खूब प्यास लगी। एक व्यक्ति गहरे कुएँ से जल निकाल रहा था। उन्होंने उससे जल माँगा। वह कहने लगा, पण्डित जी, जल कैसे दूँ, मैं मोची हूँ। कृष्ण किशोर ने कहा, 'तो एक काज करो। तुम 'शिव, शिव' बोलो।' तब वह व्यक्ति शिव नाम करता रहा और जल देता रहा और ये पीते रहे। ऐसा विश्वास! विश्वास होने से ही तो बहुत हो गया।

''और एक है। 'एँड़ेदह' के घाट पर एक साधु आए थे। सब ही दर्शन करने जा रहे थे। ठाकुर के बड़े भाई हलधारी ज्ञान-चर्चा किया करते। कहने लगे, 'एक हाड़-माँस का खाँचा है। क्या देखने जा रहे हैं सब लोग?' ठाकुर ने बतलाया था कि यह सुनकर कृष्ण किशोर को कैसा क्रोध आया। कहने लगे, यह क्या? जिस शरीर के द्वारा भगवान की पूजा होती है, जिसने उनके लिए सर्वस्व त्याग कर दिया है, उसका शरीर ही हाड़माँस का खाँचा है? भक्त का शरीर तो चिन्मय है।' कैसा क्रोध! हलधारी के संग बात तक करना बन्द हो गया। कालीबाड़ी में फूल चुनने आया करते, किन्तु हलधारी की ओर मुड़ कर भी नहीं देखते। ऐसी निष्ठा, ऐसा विश्वास!

" 'मैं पापी', 'मैं अधम', वैष्णवों का यह भाव ठाकुर पसन्द नहीं करते थे। वे कहा करते, यदि वही कहोगे तो फिर नाम-माहात्म्य का क्या होगा? रूई के पहाड़ पर नाममात्र आग पड़ जाने से सारा जल जाता है। वैसे ही नाम है। एक बार नाम कर लेने पर सब पाप विनष्ट हो जाते हैं। विजयकृष्ण गोस्वामी को भी ब्राह्मसमाज में एक दिन यही बात कही थी, 'तुम लोग इतना, 'मैं पापी, मैं पापी' क्यों किया करते हो? वरन् बोलो कि मैं उनका नाम करता हूँ, मुझे भी फिर पाप?"

मल्लिक महाशय— क्रिश्चियनों के चर्च में जो prayer (प्रार्थना) पढ़ी जाती है, उसमें किन्तु पाप-शाप की बात नहीं है।

श्री म— Our Father which art in heaven,
Hallowed be Thy name.
Thy Kingdom come, Thy will be done on earth,
as it is in heaven.

Give us this day our daily bread.
And forgive us our debts, as we forgive our debtors.
And lead us not into temptation,
but deliver us from evil.

For thine is the kingdom, and the power,
and the glory for ever. (St. Matthew 6:9-13)

[हे हमारे पिता, जो स्वर्ग में हैं, आपके नाम का आशीर्वाद हमें मिले। तुम्हारा साम्राज्य आए, तुम्हारी इच्छा पृथ्वी पर चले, जैसी स्वर्ग में (चलती) है। हमें नित्यप्रति आहार दें और हमारे ऋण क्षमा कर दें, जैसे हम अपने ऋणियों के करते हैं। और हमें लोभ-लालच की ओर न ले चलें, किन्तु हमें बुराई से मुक्त करें। क्योंकि आपका साम्राज्य और शक्ति तथा महिमा शाश्वत है।]

"हाँ, इसमें वैसा नहीं है। परमहंसदेव ने भी हमें एक Lord's prayer (भगवद्वन्दना) सिखलाई है :

मैं देहसुख चाहता नहीं माँ, लोकमान्य चाहता नहीं माँ,
अष्ट सिद्धि चाहता नहीं माँ, शत सिद्धि चाहता नहीं माँ।
अपने पादपद्मों में शुद्धा भक्ति दो।
और यह कर दो जिससे तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ।

''लोकमान्य, जिसके इतने-से के लिए मुख की लार टपकती है। अष्ट सिद्धि— पैदल नदी पार होना, रोग हटाना ये सब। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था, 'इसके द्वारा संसार में बड़ा हुआ जा सकता है, किन्तु ईश्वर-लाभ नहीं होगा।' अर्जुन ने जभी सिद्धियाँ नहीं ली थीं।''

''ठाकुर ने और भी कहा :

माँ, मैं यन्त्र, तुम यन्त्री।
मैं घर, तुम घरणी।
मैं देह, तुम देही।
मैं रथ, तुम रथी।
जैसे चलाती हो, वैसे ही चलता हूँ।
जैसे बुलवाती हो, वैसे ही बोलता हूँ।
जैसे करवाती हो, वैसे ही करता हूँ।
माँ शरणागत, शरणागत, शरणागत!''

मल्लिक महाशय— अच्छा, क्या कृपा हुए बिना भी होता है?

श्री म— कृपा क्या फिर यूँ ही हो जाती है? एक सूत्र चाहिए— ध्यान, जप, तपस्या! उनका नाम-जप करने से ही कृपा होती है। क्रिश्चियन भक्त लोग 'पेटर नॉस्टर' (हमारे पिता) 'मेरिया' (देवी मेरी) ये सब नाम रोज़री पर, माला पर, जप करते हैं।

मल्लिक महाशय— अच्छा, सब लोग ही यदि इस प्रकार प्रार्थना करने लग जाएँ तो फिर संसार कैसे रहेगा?

श्री म— न, वैसा क्यों होगा। सब के लिए तो नहीं है। एक स्कूल में फर्स्ट, सैकेण्ड, थर्ड नाना क्लासें होती हैं। क्या फिर सब ही फर्स्ट क्लास में पढ़ते हैं? जो ईश्वर को चाहते हैं, उनकी श्रेणी ही अलग है। ठाकुर बतलाया करते, मनुष्यों की तीन श्रेणियाँ हैं। योगी— जैसे मधुमक्खी फूल के बिना (अन्यत्र) बैठेगी ही नहीं— जैसे नारद, शुकदेव। योगी और भोगी— यह भी एक है, जैसे पाण्डव। इधर देवकन्या, नागकन्या भी लेंगे— और फिर भगवान भी संग-संग हैं। और एक है जो केवल भोग ही लिए है।

मल्लिक महाशय— सब को ही एक दिन फर्स्ट क्लास में जाना होगा।

श्री म— हाँ, गीता में है 'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्' (गीता 6:45)। एक जन्म में नहीं भी हो सकता है, इसलिए साधन-भजन क्यों छोड़ेगा? खानदानी किसानवत् चेष्टा करता रहेगा— हो या न हो।

मल्लिक महाशय ने विदा ली।

(2)

योगेन मृदुकण्ठ से डॉक्टर से निजी दुःख की बात कह रहे हैं। डॉक्टर ने श्री म से कहने के लिए उपदेश दिया।

योगेन *(विनीत भावे, श्री म के प्रति)*— जी, मेरे ऊपर थोड़ी कृपा कीजिए। स्त्रियों के दर्शन से अब भी चित्त-चाञ्चल्य उपस्थित हो जाता है। बाहर तो चाहे अश्रुजल विसर्जन करता हूँ, किन्तु अन्तर शुष्क है। ठाकुर के लिए क्रन्दन नहीं आता। आपकी कृपा से दक्षिणेश्वर में रहने, खाने की सुविधा हो गई है। थोड़ी-सी कृपा और हो जाए।

श्री म *(क्षण काल और मौन रह कर, उच्चहास्ये)*— जभी तो ठाकुर कहा करते, रोग लगा ही है! यदि वही है; तब तो उनका प्रैस्कृप्शन (नुसखा) लेना ही पड़ेगा। उन्होंने कहा— सर्वदा साधुसंग करना। वही हमें करना उचित। और जिन्हें आन्तरिक रोना आता है, उनके पास बैठना चाहिए। तभी निज को भी रोना आएगा। हमने आन्तरिक किया क्या है उनके लिए? कहीं भी तो कुछ नहीं। यूँ ही फिर होता है क्या? हजार पोथी ही पढ़ो और वकालत ही पास करो। किसी से भी कुछ नहीं होगा। बढ़िया वकील बनना हो तो बड़े वकील के पास articled (शिक्षानवीस) होना पड़ेगा। वकील की सेवा करनी होगी। ठाकुर कहा करते, जैसे वकील देखने से जज, अदालत की बात याद आती है, वैसे ही साधु देखने से भगवान की कथा याद आती है। साधुसंग, साधुसेवा, निर्जनवास— ये सब करने चाहिएँ। कुछ भी किया नहीं, पकड़ा नहीं, छुआ नहीं— और चट करके कैसे हो जाएगा? वह नहीं होता।

पञ्चवटी में अपनी साधुसेवा की बात श्री म सुनाने लगे :

''एक दिन कितने ही साधु आए। मुझे आटा, घी आदि की व्यवस्था करने को कहा। और कहा, 'साधुसेवा करना अच्छा है, क्या कहते हो? फिर एक कथा सुनाने लगे— एक साधु स्नान कर रहे थे। जल में उनका कौपीन बह गया। द्रौपदी ने देखा और झट अपने वस्त्र से आधा फाड़ कर साधु को दे दिया। कौरव-सभा में वस्त्रहरण के समय द्रौपदी रोते-रोते प्रार्थना करने लगी : प्रभो, लज्जा निवारण करो। भगवान ने दर्शन देकर पूछा— तुमने कभी किसी साधु को वस्त्रदान किया है? द्रौपदी ने तब उसी घटना को सुनाया। भगवान ने भरोसा देकर कहा : तब फिर भय नहीं। वस्त्र, जितना ही खींचा जाता, उतना ही बढ़ जाता, उनकी माया से!

''गल्प सुनाकर मुझे पूछने लगे, 'बतलाओ तो, मैंने क्या कहा?' उसका अर्थ एकदम ही impress (अंकित) कर दिया मन पर। मुझसे फिर बुलवा भी लिया।

''आटा, घी आदि आने पर साधुओं ने ही खाना पकाया। उन्होंने खाया, ठाकुर ने भी उनके संग बैठ कर खाया। मेरे लिए भी थोड़ा रख दिया।''

श्री म *(योगेन के प्रति)*— यही तो रोग है। सब कुछ किया जाता है, किन्तु साधु को देने के समय जितना भी हो, हिसाब करने लगता है। बहुत हिसाब करके ही तब कुछ बाहर निकलेगा और स्त्री, पुत्र, जमाई के लिए दोनों हाथों से लोग रुपया उड़ेलते हैं, जितना भी लगे ले लो; उसमें 'न' नहीं।

''इस बार मिहिजाम में एक रसोइये ब्राह्मण के संग बातें हुईं। खूब प्राचीन व्यक्ति— अनेक बड़े लोगों के घर काम किया हुआ है। एक विलायत-फिरे* के घर की बात सुनाई। लड़के-लड़कियों की जने-जने की एक-एक मोटरकार। एक-एक जन के half a dozen (आधा-आधा दर्जन) नौकर, नौकरानियाँ। और रसोई हुआ करती नाना स्थानों पर। एक स्थान पर बंगाली भोजन— सूक्त टूक्त। और एक जगह पुलाव, कलिया। और एक स्थान पर विलायती खाना तैयार होता। और फिर 'प्रिजर्वड मीट' (टीन में रखा विलायती

* foreign returned

माँस); वह भी एक-एक slice (टुकड़ा) करके सब ही लेते। लड़कियाँ भी वही सब खातीं। बाजार होता अपनी-अपनी फैन्सी (इच्छावत्)। कपड़ों का ढेर, जिसे जो पसन्द होता, अपना-अपना खरीद कर लाते। इस प्रकार हजार-हजार रुपया खर्च करते। किन्तु देवसेवा का, साधुसेवा का नाम तक भी नहीं। सुना था, शोक के समय हमारी भान्ति ही अछाड़ें-पछाड़ें खाते हुए गिर पड़ते हैं। तब बीबीयाना रहता नहीं। अनेक मेमों की बातें सुनता हूँ, वे भी शोक में लुढ़क जाती हैं। इसे ही ठाकुर कहते, 'अविद्या का संसार।' साधु, भक्त, दरिद्रों की सेवा नहीं, केवल कुटुम्ब-सेवा होती है। छिः, इसे स्नेह, प्यार कहने से चलता नहीं। जो प्यार भगवान के पथ पर ले जाता है, उसे कहता हूँ प्यार। यह क्या? रोजगार करते हैं, चोटी का पसीना एड़ी पर गिराते हैं और पेटों पर लगा देते हैं। यह किस प्रकार का जीवन धारण? पशु भी वही करते हैं। प्रभेद कहाँ?''

(3)

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— भक्त-घर में नित्य ईश्वरीय कथा होती है। कर्त्ता अपने आप न कर सके तो पण्डित रख कर करवाता है— रामायण, महाभारत, भागवत, पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण— ये सब। सर्वदा ही उनका नाम होता है। उत्सवादि— जैसे दुर्गा-पूजा— पैसा हो तो करना उचित। साधु, भक्त और दरिद्र सेवा। स्वामियों को इन सब के लिए चेष्टा करना उचित।

''परिवार के लोग जो अन्य प्रकार के होते जा रहे हैं, उसके लिए भी उत्तरदायी कर्त्ता स्वयं है। उसने ही छूट दी हुई है। अब भलाई के लिए चेष्टा भी उसे ही करनी होगी। चेष्टा करके भी यदि परिवार वर्ग का मन ईश्वरमुखी न कर सके तो फिर दूर हट कर खड़े रहना। फिर करना भी क्या? छिना जोंक की भान्ति क्या सारा जीवन ही लगे रहना होगा? क्या गर्ज़ पड़ी? यदुवंश ध्वंस हो रहा है और श्रीकृष्ण खड़े हुए हैं— स्थाणुवत्। प्रकृति को रोके भी कौन?— irresistible (अदम्य)।''

श्री म *(शुकलाल के प्रति)*— सींथी में एकजन ने ठाकुर से पूछा था, 'बाल-बच्चों का भरणपोषण कब तक करना उचित है?' उन्होंने उत्तर दिया; जब तक लायक न हो जाएँ और लड़कियों का विवाह होने तक। तदुपरान्त करें और खाएँ।

''ठाकुर गुणातीत पुरुष। जीव के दुःख में कातर होकर उनकी कल्याण-चिन्ता किया करते। सर्वदा भावते रहते, कैसे अवसर हो और उनको पुकार सकें। ये सब ही हैं उनके dictum (महावाक्य)। हमारी बातें नहीं। हम समझते ही क्या हैं? फिर बोलेंगे भी क्या? चेष्टा करके देखो, विद्या का संसार कर न सको तो फिर और क्या करना? Provision (दाल-रोटी की व्यवस्था) करके दूर निकल पड़ना, और ईश्वर-चिन्तन करना।

श्री म *(एक भक्त के प्रति)*— साधुसंग करने से काम-शाम अपने-आप ही दमन हो जाता है। कैसी सुविधा कर दी है ठाकुर ने— सर्वत्यागी साधु और फिर जाने के लिए स्टीमर। बेलुड़ मठ में उनके साधु रहते हैं। कहाँ पाओगे ऐसा? केवल साधुसंग करने को खाली बोला ही नहीं— साधु कर दिए हैं। खूब भले-भले साधु हैं, सब-के-सब ही। नित्य साधु-संग दरकार। किन्तु सावधान! आश्रम-पीड़ा न हो। वहाँ पर तपस्या के भाव से जाना चाहिए— सेवा करने, लेने नहीं। डाँटने पर भी कुछ बोलना नहीं, हाथ जोड़ कर रहना चाहिए। कितना बड़ा आश्रम, संन्यास आश्रम कि ना! भोग के डिपार्टमैण्ट (विभाग) में रहने पर यह सब सहना पड़ता है।

शुकलाल— डाँटने पर भी बोलते नहीं, मन में कष्ट तो होता है?

श्री म— सो होने दो, यह सहन करना ही होगा। क्योंकि हम भोग जो लिए रहते हैं, इसीलिए। उन पर क्या हम विचार कर सकते हैं? जिनके लिए सब छोड़ा है, वे करेंगे। कितना बड़ा आश्रम है! चैतन्य देव ने गधे की पीठ पर गेरुआ देखकर साष्टांग किया था। और यहाँ पर जीवन्त साधु सब। मठ होने से ही कितनी सुविधा है! नित्य ही सम्वाद पा रहा हूँ। कोई ध्यान कर रहा है। कोई लाइब्रेरी में deep study (गम्भीर अध्ययन) कर रहा है। अथवा कोई भण्डार देख रहा है, तरकारी काट रहा है, किंवा पूजा कर रहा है। सब ही हैं ठाकुर के काज। कितने भले-भले सब लोग हैं। बी०ए०, एम०ए०, कितने

हैं!

''गीता में है स्थितप्रज्ञ का चाल-चलन, सब देखना चाहिए। जभी तो निज भी वैसा ही होने की चेष्टा करेगा। वे आदर्श हैं कि ना! जाना हुआ हो तो compare (मिलान) किया जाता है। नीचे हूँ— यह बोध होने पर ही तो ऊपर उठने की चेष्टा होगी। बूढ़ा हो गया हूँ, जा तो नहीं सकता, यहाँ पर बैठे-बैठे ही सम्वाद लेता रहता हूँ। वे क्या कर रहे हैं, और मैं क्या कर रहा हूँ? रोज़ मिला कर देखना आवश्यक। जभी चैतन्य होगा। जो शिक्षित हैं, well imformed (सुपण्डित) हैं, केवल मात्र दो वर्ष से ही मठ में रह रहे हैं, वे चट से ऊपर उठते जा रहे हैं। उन्हें देख कर खूब आनन्द होता है। वह फिर उठेंगे नहीं? एक ओर ब्रह्मचर्य, दूसरी ओर सोलह आना मन देकर उनको पुकारने की चेष्टा कर रहे हैं। और अवसर प्रचुर है।

''और संसारी जन क्या कर रहे हैं? नाना काजों में जड़ित। उन्हें पुकारने का समय ही नहीं। यदि तनिक बैठा भी, तो तुरन्त निद्रा— शरीर अवसन्न! कोई सोना गलाने बैठा है— होगा, होगा; हो रहा है। झट घर से हुकुम आया, घर में चावल नहीं है। उठकर चावल लेने चला गया। फिर बैठता है— सम्वाद आया, लड़की बीमार है। चल दिया डॉक्टर लाने। सोना तब गलाना हुआ ही नहीं। आग 'निब' गई। सोना गला कर तब गृहस्थ करने से फिर इतना दु:ख-कष्ट बोध होता नहीं। सोना गलाना माने ज्ञान, भक्ति-लाभ करना। साधुओं की वही चेष्टा है चौबीस घण्टे।''

श्री म *(गृही भक्त के प्रति)*— ठाकुर कभी-कभी कहा करते, विवाह हुआ है तो हुआ रहे। दो चार सेर वीर्य वरन् निकल जाना भला। तब भी जिस प्रकार लड़के-बच्चे न हों। लड़के-बच्चे होने पर अवसर ही कहाँ? लड़कों की upbringing (पालन), education (शिक्षा), रोग और फिर कन्या का विवाह। प्रह्लाद ने दैत्य बालकों से कहा था, 'ओ रे, विवाह न करो। वह होने से अवसर नहीं मिलेगा।' तब लड़की के ससुराल की चिन्ता करनी पड़ेगी।

''महेन्द्र मुखर्जी एक थे। बहुत काज था उन्हें। ठाकुर के पास प्राय: ही जाया करते, कहा करते, 'अब मन में सोच रहा हूँ लड़कों के ऊपर सब-

कुछ छोड़ कर छुट्टी ले लूँ।' दो लड़के संग में ही लाया करते। ठाकुर सुन कर कहते— हाँ, सो फिर होता ही है कहाँ? एक न एक में जड़ित हुए पड़े रहते हैं लोग। विचारते हैं, यह काज थोड़ा-सा पक्का कर लूँ। इसी प्रकार दिन चले जाते हैं। कप्तान ने भी यही बात कही थी, किन्तु पूरी हुई नहीं। कुछ दिन निर्जन में रहना चाहिए। उससे कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का बोध होता है। आगे संसार, परे ईश्वर नहीं। आगे ईश्वर, परे संसार है।''

सन्ध्या हो गई है। श्री म भक्तसंगे ध्यान कर रहे हैं, ध्यानान्ते एक भक्त गा रहे हैं, 'मा, आमार बड़ो भय होयेछे।' (माँ, मुझे बड़ा भय लग रहा है।) अब भागवत का पाठ हो रहा है। तपस्या-निरत शुकदेव दैववाणी सुन रहे हैं— 'आमि शब होये रयेछि।' (मैं सब होकर रहता हूँ।)

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— यह भी है एक महामन्त्र। यदि कोई इसे ही ले कर पड़ा रहे तो सिद्ध हो जाएगा। ठाकुर भी रोज सन्ध्या के उपरान्त एक मन्त्र बोला करते, 'ब्रह्म-माया-जीव-जगत्।' इसका ही जप कर लेने पर भी सिद्ध हुआ जा सकता है। अर्थात् ईश्वर-दर्शन हो जाता है। कहा करते, 'ऐ शब खूब गुह्य मन्त्र।' (यह सब हैं खूब गुह्य मन्त्र।) माने पुस्तक में हैं, पढ़ लो। किन्तु बोलना ही पड़े तो केवल भक्तों को ही बोला जाए; और किसी को नहीं।

'ब्रह्म-माया-जीव-जगत्'— बहु बार सुनी हुई इस महावाणी ने आज मानो जीवन्त नवीन रूप धारण कर लिया!

कोलकता; 30 मई, 1923 ईसवी, बुधवार।
16 ज्येष्ठ, 1330 (बंगला) साल, कृष्णा प्रतिपदा।

पञ्चदश अध्याय

केशवसेन ने ठाकुर को पहचाना था

(1)

सन्ध्या-वन्दना समाप्त हुई। श्री म द्वितल के कमरे में बैठे हैं। सुखेन्दु भक्तों के संग में गा रहे हैं :

एसेछे नूतन मानुष देखबि यदि आय चले।

[नूतन मनुष्य आया है, देखना हो तो चलो चलें!]

अब श्री म निज ही गा रहे हैं :

नामेरि भरसा केवल, श्यामा मा गो तोमार।

[हे श्यामा माँ, तेरे नाम का ही भरोसा है केवल।]

श्यामा धन कि सबाई पाय, काली धन कि सबाई पाय।

[श्यामा धन क्या सब ही पाते हैं, काली धन क्या सभी पाते हैं।]

मजलो आमार मन-भ्रमरा श्यामापद नील कमले।

[मेरा मन रूपी भ्रमर श्यामा के नील कमल-पद में डूब गया है।]

सुरापान करि ना आमि सुधा खाई जय काली बोले।

[मैं शराब नहीं पीता, 'जय काली' बोल कर अमृत पीता हूँ।]

भजन शेष हुआ, श्री म क्षण भर मौन रहे। तदुपरान्त धीरे-धीरे बातें करने लगे।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— एक दिन केशवसेन का हाथ पकड़ कर यही गाना गाया था, 'मजलो आमार मन-भ्रमरा...' और एक दिन एटीन-एटी-टू (1882) के अक्तूबर में ठाकुर केशवसेन के घर गए। वे कपड़े

पहन कर बाहर हो रहे थे दीनमल्लिक के घर जाने के लिए। फिर जाना हुआ नहीं। ऊपर हॉल कमरे में 'लिलि कॉटेज' में कैसा नृत्य हुआ! इकतालीस वर्ष हो गए हैं, मन में हो रहा है मानो अभी-अभी हुआ है। आँखों के सामने ज्वल-ज्वल करके तैर रहा है। केशवबाबू का फिर जाना हुआ ही नहीं। माने उनका दर्शन कर लेने पर सब कर्म क्षीण हो जाते हैं— 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।' (मुण्डक उपनिषद् 2:2:8)। चादर कन्धे पर, मस्त हुए गाना सुनते रहे केशव बाबू। और एक दिन गाया था :

कथा कइते डराई ना कइलेओ डराई,
पाछे सन्देह होय तोमाधने हाराई हाराई।
आमरा जानि जे मन्त्र; दिलाम तोरे सेई मन्त्र,
ऐखन मन तोर— जे मन्त्रे विपदे तरी तराई।

[बात कहता हुआ भी डरता हूँ, न कहने से भी डरता हूँ। मन में सन्देह है कि कहीं तुम जैसा धन खो न बैठूँ। मैं जानता हूँ कि जो मन तुम्हारा है, वही मन मैंने तुम्हें दे दिया है। अब मन तुम्हारा है— इस मन्त्र से विपद् में नाव पार होती है।]

"केशव बाबू को लक्ष्य करके गाया था यह। आहा, केशवसेन ही पहचान पाए थे उन्हें! वह न हो तो क्या फिर उनके मुख से ऐसा गाना निकलता?— 'दिया है तुझे वही मन्त्र।' मन्त्र माने— ईश्वर सत्य, संसार अनित्य— उनका यह महावाक्य। केशवबाबू के शिष्य सब unsympathetic (प्रतिकूल, भिन्न मति) थे, 'जभी तो बात कहते हुए भी डरता हूँ।' एक केशवसेन ही ठाकुर को पहचान पाए थे।

"ठाकुर ने हमें बतलाया था, 'एक दिन एकजन के घर गया। उसने मुझे ठाकुर-कक्ष में जाने के लिए कहा। कहने लगा : 'उस कमरे में ईश्वर की पूजा होती है। एक बार आकर स्थान को पवित्र कर दीजिए।' ठाकुर-कक्ष में ज्यों ही प्रवेश किया त्यों ही किवाड़ बन्द कर दिए और फूल-चन्दन से मेरे पैरों की पूजा करने लगा; और फिर कहा : 'आप किसी को यह बात बतलाइए नहीं।' क्यों निषेध किया?— गुरुगिरी है कि ना, शिष्य लोग पीछे झंझट खड़ा न कर दें।"

एक भक्त आज मिहिजाम जा रहे हैं। इच्छा है, निर्जन में कुछ दिन रह कर ईश्वर-चिन्तन करें। श्री म बरामदे में आकर उनको विदा दे रहे हैं। कमरे में कोई-कोई भक्त बातचीत कर रहे हैं, 'ये तपस्या करने जा रहे हैं।' यह बात सुनकर श्री म कहने लगे :

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ऐसी बात नहीं कहते, तपस्या करने जा रहे हैं कि कहाँ। जो real friend (सच्चे बन्धु) हैं, वे ऐसी बात मुख में भी नहीं लाते कि कौन भगवान के लिए क्या करता है। ईश्वर अति गोपन धन है। एक दिन एक व्यक्ति ने कहा था, 'अमुक खूब ध्यान, भजन, तपस्या करता है,' सुनकर ठाकुर ने तुरन्त धमक दी और कहा, 'छि: छि:, ऐसी बातें कहते नहीं।'

''ईश्वर अति गोपन धन है। उनकी व्यवस्था है— निर्जने, गोपने, व्याकुल होकर पुकारो। स्वयं इसी पथ द्वारा गए थे कि ना! आहा, यदि एक दिन भी निर्जन में जाकर सोलह आने मन देकर पुकारा जाए। इससे खेद मिटता है। ऋषि तो सारा ही जीवन यही किया करते थे। एक दिन करने से भी होता है, ठाकुर कहते थे। कितना सहज कर दिया है! ओह, कितना नीचे उतरे हैं!

''ठाकुर की इच्छा कैसी सुन्दर! मिहिजाम में एक कुटीर कर दी है— ऊपर फूस का चन्दोवा। अति निर्जन स्थान। वहाँ पशु-पक्षियों के भीतर भी उनका हाथ *(रक्षा का अभिनय करके)* दिखाई देता है। कैसा मातृ-स्नेह! और फिर दूर ही कितना? Safe distance from botheration (झमेले से काफी दूर)।

''यह तपस्या क्यों?— उनके दर्शन के लिए ही है यह आयोजन! इतना कष्ट करके यह मानव-जन्म मिला है। कब यह देह शेष हो जाएगी, इसका तो निश्चय नहीं। आज है, कल नहीं। जभी झटपट काज करके उनको जितना भी पुकारा जाए, उतना ही अच्छा है। अधरसेन को कही थी यह बात। इसलिए देखा जाता है कि एक-आध जन ही व्याकुल होकर उनको पुकारता है— देह जाती है तो जाए, ग्राह्य नहीं। Death (मृत्यु)

नामक एक चीज न होती तो अवश्य ऐसा न होने पर भी चलता। But it is a stubborn reality (किन्तु यह है रूढ़ सत्य)। मुहूर्त्त में सब शेष हो जा सकता है। जभी उठ पड़ लगता है कोई–कोई। ठाकुर सर्वदा भक्तों से परिवृत्त होकर रहना पसन्द किया करते। कोई जप करेगा, कोई ध्यान करेगा, कोई गाना गाएगा।''

वीरेन ने गृह में प्रवेश किया। ये हैं एटोर्नी। नाना वार्त्ता कहने लगे। बातचीत के प्रसंग में कहते हैं, विलायत में आजकल स्पिरिट (दिवंगत आत्मा) के संग बातें करते हैं। भूपेन बोस के मृत पुत्र का सम्वाद पता लगा है।

श्री म— हाँ। किन्तु ठाकुर ईश्वर के संग बातें किया करते। एक दिन कहा, 'माँ आई हैं', तब फिर बातें करने लगे। कहने लगे, 'अच्छा माँ, किसकी बात सुनूँ? यह कहता है यह, वह कहता है वह?' माँ ने कदाचित् कुछ कहा, तभी और कहने लगे, 'ओह समझ गया, तुम्हारी बात ही सुनूँगा और किसी की नहीं।'

''और एक दिन कहा, 'अच्छा माँ, एकजन को यदि भूख लगी है, और वह मुख से नहीं कहता, तब क्या फिर उसे भूख नहीं लगी?' और एक दिन कहने लगे, 'माँ ने कहा है, इसको ले लिया है।' और एक दिन कहा, 'उसको एक कला मात्र ही दी है, अच्छा, इससे ही तुम्हारा काज हो जाएगा।'* प्रथम–प्रथम कहा करते, 'इस कामिनी–काञ्चन के भीतर रहने से मेरी देह जली जा रही है, और सहन नहीं होता माँ।' माँ कहने लगीं, 'कुछ काल अपेक्षा करो, शुद्ध सत्त्व सब भक्त आएँगे।' बीस–बाइस वर्ष अपेक्षा करते हो गए थे। आरती के समय कोठी के ऊपर चढ़ कर पुकारा करते, 'अरे, कहाँ हो तुम सारे? आओ ना, मेरा शरीर जल–भुन रहा है।' सारी–सारी रात पञ्चवटी में लोट–पोट होते हुए क्रन्दन किया करते, 'माँ, दर्शन दो; माँ, दर्शन दो।' कैसे व्याकुल! तदुपरान्त दर्शन देकर बातें करने लगीं।

(वीरेन के प्रति)— स्पिरिट के संग तो बातें हुईं। ठाकुर तो ईश्वर के

---

* श्री म ने 22 जुलाई, 1883 ईसवी को दक्षिणेश्वर में ठाकुर का कृपा–लाभ किया। यही एक कला शक्ति प्राप्त की। श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत (हिन्दी) भाग–I द्रष्टव्य।

संग बातें किया करते सर्वदा। उसका हमने क्या किया? ईश्वर ही ठाकुर होकर आए हैं— अवतार होकर। और फिर जगन्माता के रूप में उनके संग बातें किया करते, हम जैसे अब बातें कर रहे हैं। एक दिन नहीं, सारा जीवन। ईश्वर, ठाकुर, जगन्माता, एक के तीन रूप।''

31 मई, 1923 ईसवी।

(2)

सन्ध्या उत्तीर्ण। दोतल के कमरे में श्री म भक्तों के संग भागवत-पाठ सुन रहे हैं— शुकदेव-वैराग्य-प्रकरण। डॉक्टर बक्शी पढ़ रहे हैं।

पाठक *(पढ़ रहे हैं)*— शुकदेव पिता वेदव्यास को पुत्रस्नेह से शोक-संविद्ध, कम्पमान, एवं अश्रुविसर्जन करते देखकर विस्मयाविष्ट हो गए और पिता को विनयपूर्वक कहने लगे : आहा, माया का कैसा विचित्र प्रभाव! वेदान्त रचयिता, पुराणसमूह का वक्ता, महाभारत-निर्माता, वेदविभागकर्त्ता, सर्वज्ञ, विष्णु के अंश, व्यासदेव भी माया से मोहित होकर भग्नपोत-वणिकवत् विवश हुए साधारण जनवत् विलाप कर रहे हैं! 'हे देवि, महामाये, तुम्हें नमस्कार! मैं तुम्हारे शरणागत!'

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— देखिए माया की कैसी विचित्र शक्ति! उनके संग में चालाकी चलती नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव पर्यन्त माया से मोहित। पुत्रशोक से वेदव्यास हैं विवश, कारण— पुत्र संन्यासी होकर चले जाएँगे। शरीर धारण करने से यह होता है। जभी ठाकुर कहा करते, 'पञ्चभूत के बन्धन, ब्रह्म करे क्रन्दन।' और प्रार्थना किया करते, 'माँ, अपनी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न करो।'

पाठ चल रहा है।

श्री म *(जनैक के प्रति)*— 'सर्वं खल्विदमेवाहम्' यह भी है एक मन्त्र। जप कर लेने से काज हो जाता है। ब्रह्म-शक्ति ने वटपत्रशायी विष्णु

को यही बात कही थी। यह वेद का सार है। 'ब्रह्मशक्ति, शक्ति ब्रह्म', 'ब्रह्म माया-जीव-जगत्', ये सब ठाकुर के महामन्त्र!

"परब्रह्म लीला में सगुण होते हैं। ईश्वर-लीला, देवलीला, जगत्लीला और नरलीला।"

पाठक *(पढ़ रहे हैं, शुकदेव कह रहे हैं)*— हे पिता, पूर्व जन्म में आप क्या थे, मैं क्या था, उसका निश्चय नहीं। अतएव शोक परित्याग कीजिए। दुर्लभ मनुष्य जन्म लाभ करके मुक्ति की चेष्टा ही जीव का एकमात्र कर्त्तव्य है। चेष्टा करके भी चित्त से "मैं बद्ध हूँ" यह भाव विदूरित नहीं कर सकता। कृपा करके उसका उपाय बतलाइए।

श्री म— माया, मोह, अज्ञान— वस्तु एक ही। किन्तु रूप धारण करती है बहुत। कभी पुत्र-कन्या, कभी जाया, कभी पिता-माता। धन-दौलत, नामयश, देह, इन्द्रिय, हिंसा, द्वेष— नाना रूप हैं उनके। ये सब अविद्या-माया। विद्या-माया से ईश्वर में मन रहता है। ईश्वर ही केवल अपना जन है, गृह-परिजन, संसार, कोई नहीं, अतएव 'मैं मुक्त हूँ' इस चिन्तन द्वारा 'मैं बद्ध हूँ' यह भाव हट जाता है। यही तो है विद्या-माया का काज।

"ठाकुर जभी तो सांसारिक कुछ भी माँग सके नहीं। कहा करते : अपने पाद-पद्मों में केवल शुद्धा-भक्ति दो। क्यों? अन्य वस्तु माँगने पर मन उसमें ही रहेगा। पादपद्म भूल जाएँगे। इसीलिए कहा करते, माँ, धन-दौलत लोगों को इतना प्रिय है, उन्हें वही दो। किन्तु कैसा अज्ञान, 'तुम जो हो परम धन' वह बात भूल गए हैं। इतने सारे लोग जाया करते, कभी भी किसी से पैसा-कौड़ी के लिए अनुरोध नहीं किया। कितना कष्ट है, घर के लोग खाना तक नहीं पा रहे, तब भी नहीं। अनेक समय बार-बार कहने से विरक्त हो जाते। *(सहास्य)* कहा करते, यहाँ 'पेला' नहीं है। पैसा-कौड़ी की बात कहने पर लोग आएँगे नहीं।

"एकजन पाँच सौ रुपया महीना पाता था। पैदल दक्षिणेश्वर आ उपस्थित होता। उसने सोचा था, ठाकुर congratulate (प्रशंसा) करेंगे।

किन्तु उल्टा हुआ— नाराज हो गए। Congratulate (प्रशंसा) करते किसकी, जो गरीब उसकी। गरीब भक्तगण दो पैसे की बर्फ या एक पैसे की इलायची देकर जाते। कैसा आनन्द उससे ही! अपनी माया से सब भुला देती हैं। व्यासदेव को भी पुत्र-स्नेह में भुला दिया था। साधारण लोगों की तो बात ही क्या? जभी प्रार्थना किया करते, 'भुलाना न माँ, भुलाना न'।

" 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छान्दोग्य उपनिषद् 3:14:1)— ईश्वर ही ये सब होकर रह रहे हैं। वेद की बात है। 'ये सब' माने— नाना वस्तु-जगत्! नाना छोड़ कर ईश्वर में मन देना। आगे ईश्वर, परे जगत्। माया उसे उल्टा पकड़वाती है— आगे जगत्, परे ईश्वर। जभी क्राइस्ट ने कहा था, 'Before Abraham was I am' (St. John 8:58)— मैं हूँ वही पुरातन पुरुष। यह भी है एक मन्त्र, कोई चिन्तन करे तो मुक्त हो जाए।"

1 जून, 1923 ईसवी।

(3)

आज शनिवार। इस दिन बहुत भक्त आते हैं। गृह परिपूर्ण। अनेक दिन पीछे शची और दुर्गापद आए हैं और ललित आए हैं। ये हृदय मुखर्जी के भतीजे हैं। खूब आदर करके श्री म ने इन्हें पास बिठा लिया। सन्ध्या हो गई है। श्री म की इच्छा से डॉक्टर भक्तों के संग आगमनी* गा रहे हैं :

एबार आमार उमा एले आर उमा पाठाबो ना।
बोले बोलुक लोके मन्द, कारो कथा शुनबो ना।

[अब की बार मेरी उमा के आ जाने पर फिर उमा को भेजूँगी नहीं। कहते हैं तो कहें लोग बुरा-भला, मैं किसी की बात सुनूँगी नहीं।]

फिर ललित ने एक रामकृष्ण-स्तव की आवृत्ति की। ललित का परिचय दे रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— इनके घर पर सिउड़ में ठाकुर रहा करते।

---

* दुर्गा-पूजा के प्राय: एक मास पूर्व से बंगाल में सर्वत्र जगन्माता के आगमन की प्रतीक्षा में ये 'आगमनी' गीत गाए जाते हैं।

कभी-कभी एक मास, कभी-कभी दो-तीन मास। इनका ऐसा उत्तम वंश है। इनके घर में ही हृदय मुखर्जी को कहा था : कुटुम्बियों को ही खिला रहा है तू। तब तो मैं चला।

ललित अपने घर की प्रचलित लीला-कथा कहने लगे। बातों-बातों में कहने लगे : आजकल हमें कोई पूछता ही नहीं। बड़े लोगों का ही आदर होता है। साधु बड़ी शान से रहते हैं। मोटर में चढ़ते हैं, हमें पूछते तक भी नहीं। तनिक प्रतिवाद करने पर एक जन तो क्रोध से मार भी देते हैं।

श्री म *(सहास्य... ललित के प्रति)*— साधु की मार खाना तो सौभाग्य की बात है। चैतन्य देव कभी-कभी मारा करते। भक्त कहा करते, 'प्रहार-प्रसाद।' *(गम्भीर भाव से)* मोटर में चढ़ने की बात जो कहते हो, वह मानो त्रैलंग स्वामी को पोशाक पहनाना है। पोशाक ही पहनाओ और लंगोट में ही रहें, वह त्रैलंग स्वामी ही हैं।

''साधु कितने कष्ट से बाहर रहते हैं। यह तो तुम देखते नहीं। खाली मोटर में चढ़ना देखते हो। कितना अनाहार, अर्धाहार करते हैं। कभी पत्थर के ऊपर सोते हैं वे, कभी घास के ऊपर। कभी हिंस्र जन्तुओं के संग वन में वास कर रहे हैं। तपस्या का कष्ट तो लोग देखते ही नहीं— केवल देखते हैं बाहर का जरा-सा आराम। मठ में जाकर रहना, यह तो मानो रैस्ट हाउस में वास है। पक्षी जैसे क्लान्त होकर डाल पर बैठता है, वह वैसा ही है।

''जिस नाम-यश के लिए संसारियों का mouth watered (चित्त लालायित) होता है, जिस सुख-भोग, धन-ऐश्वर्य को लेकर वे व्यस्त हैं, साधुओं ने इन सब का काकविष्ठावत् परित्याग कर दिया है। संसार का ऐसा कुछ भी चाहते नहीं ये। क्या नहीं था इनका? विद्याबुद्धि में भी ये अनेक ही उच्च स्तर के लोग हैं। क्या नहीं कर सकते थे घर में रह कर? इन्होंने यह सब कुछ ही त्याग कर दिया है, और हम तो उसे लेकर भी भूले हुए हैं। साधु के तिरस्कार करने पर, यहाँ तक कि प्रहार करने पर भी हाथ जोड़ कर homage (सम्मान) देना चाहिए। हम क्या उनका विचार कर सकते हैं? कितना बड़ा आश्रम है! उन्होंने समझ लिया है, आगे ईश्वर परे जगत्। जभी तो ईश्वर के लिए व्याकुल हैं सब छोड़-छाड़ कर!''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— चाहे ना भी कहें, 'आइए महाशय, बैठिए महाशय।' हम जो उनका दर्शन कर सकते हैं, यह ही कितना बड़ा सौभाग्य है। और फिर बातें भी करते हैं। इतना बड़ा आश्रम होने के कारण ही तो चैतन्यदेव ने गेरुआ देख कर साष्टांग किया था। पश्चिम (बंगाल के पश्चिम) के साधु गृहियों को एक आसन पर बैठने नहीं देते—कहीं फिर उनका कलुषित भाव संचारित न हो जाए! मठ के साधु तब भी इतना अधिक करते नहीं। और एक दिन में ही क्या फिर सब कुछ हो जाता है? लड़के का चोला, अन्नप्राशन, विवाह— एक दिन में ही क्योंकर हों? जाते रहो— क्रमशः उनके भीतर देख पाओगे, बाहर से कभी-कभी कठोर लगने पर भी भीतर घुसो तो देखोगे, कोमल हैं। बड़े लोगों का आदर जिसे कहते हो, वह न करें तो क्या करें? एकजन अपने सारे जीवन का उपार्जन, तीन लाख रुपया देव-मन्दिर में देगा। अब उनके संग बातें नहीं करेंगे तो क्या? फिर बैठे-बैठे बातें करने के लिए अवसर भी तो कम ही होता है। कितनी सेवा— हस्पताल, डिस्पैन्सरी, स्कूल, रिलीफ, प्रचार। साधुसंग करो, देख पाओगे, वे कितने महत् हैं। हजार पोथी ही पढ़ो और जो भी करो, किसी से भी कुछ होगा नहीं— बाजे के बोल हाथ में लाए बिना।

"जो इनकी भान्ति पढ़े-लिखे हुए नहीं भी हैं, फिर भी साधु हैं— वे ही क्या हैं हमारे समान? बहुत उच्च हैं वे। कारण, कितना उच्च आदर्श है उनका! जो भगवान, जो मनुष्य होकर आए, वे ठाकुर ही हैं उनका आदर्श! कितना बड़ा आदर्श! यहाँ वालों की greatness (महत्व) का standard (मानदण्ड) है— विवेक-वैराग्य, ज्ञान-भक्ति। एक व्यक्ति जो कि एक विद्या या विज्ञान में पारदर्शी है, वह भी बड़ा है। किन्तु इसीलिए क्या जिसने ईश्वर के लिए सब कुछ छोड़ा है, उससे भी वह बड़ा? कभी भी नहीं।

"केवल पाण्डित्य को घास-फूस कहा करते ठाकुर, समाधि से नीचे उतर कर। अधरसेन के घर बनियेटोले में बंकिम बाबू से पूछा था, मनुष्य-जीवन का उद्देश्य क्या है? बंकिम बाबू ने अवज्ञा करके उत्तर दिया : आहार, विहार, मैथुन। झट धमक देकर ठाकुर ने कहा, 'तुम तो बड़े ओछे हो। जिसे लेकर दिन-रात रहते हो, वही मुख से निकल रहा है। मूली खाओ तो मूली

की ही डकार आएगी।' जभी साधु का दोष देखते नहीं। उनका आश्रम कितना बड़ा! साधु सर्वदा हमारे पूज्य हैं। मुड़ि-मिश्री एक दर? (चना पकवान एक दर?)''

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— ठाकुर बतलाते, तीन भान्ति के साधु हैं। प्रथम अजगर वृत्ति लिए रहते हैं। सामने कुछ पड़ गया तो खा लेंगे— जैसे अजगर करता है। आसन पर से हिलेंगे नहीं! सर्वदा भगवान-चिन्तन करते हैं। और एक श्रेणी— ये 'नारायण हरि' बोल कर गृहस्थ के दरवाजे पर जाकर खड़े होंगे। कुछ खाने को दे दो तो भला, नहीं तो चले जाएँगे। और एक श्रेणी, कुछ न दिया जाए तो जबरदस्ती करेंगे। साधु फिर रजोगुणी, तमोगुणी भी होता है। ठाकुर बतलाते, 'पहले मेरी यह धारणा नहीं थी। मन में सोचा करता, साधु सब ही सत्त्वगुणी होते हैं। एक बूढ़े साधु ने मेरी यह भूल हटा दी। साधुओं के भीतर तीनों गुण ही होते हैं।' जैसे दुर्वासा तमोगुणी हैं, तो इस कारण क्या वे साधु नहीं? कितने बड़े ऋषि हैं, मानो शिवावतार! रजोगुणी लेक्चर देते हैं, मठ-मन्दिर करते हैं। सत्त्वगुणी केवल उनके चिन्तन में मग्न— जैसे शुकदेव।

''पञ्चवटी में एक साधु आए। खड़ाऊँ पैर में, ठक-ठक करते-करते ठाकुर के कमरे में आ हाजिर। कहा, तमाखु-शमाखु कुछ है? ठाकुर झट खड़े हो गए और हाथ जोड़ कर कहने लगे, 'हाँ जी, है।' साधु के चले जाने पर भवनाथ ने कहा, आप में तो खूब साधु-भक्ति है, देख रहा हूँ।

''और एक बार एक साधु ठाकुर के कमरे में आ उपस्थित हुए। आते ही कहने लगे, 'मुझ को अस्सी रुपये देने होंगे, गाड़ी-भाड़ा आदि ऐसा कितना लगेगा।' ठाकुर ने कहा, 'ओ माँ, कहाँ से आएगा इतना रुपया?' साधु ने तब उत्तर दिया, 'तुम आस्थानधारी हो। तुम्हारा बिस्तरा-शिस्तरा सब कुछ है, मैं तो रमताराम हूँ।' किसी ने अन्त में घर से बाहर कर दिया। उनका अपना ऐसा आचरण है। भक्तों को सर्वदा साधुसंग और साधुसेवा करने को कहा करते। स्वेच्छा से न करते तो जोर करके साधु-सेवा करवा लेते। वे उत्तम वैद्य। पञ्चवटी में ठाकुर के आदेश से एक भक्त ने साधु सेवा की थी।*

* चतुर्दश अध्याय में 158 पृष्ठ पर देखिए।

"साधु-संग, साधु-भक्ति religious life (धर्म जीवन) का first step (प्रथम सोपान) है। पहले अपनी footing (अवस्था) निश्चित कर लेनी चाहिए। In the scale of evolution where do I stand? (मन के क्रम-विकास में मेरा स्थान कहाँ है?) मूल में ही यदि कहो, 'सब समान हैं', तो फिर और उन्नति क्या होगी? विनाश अवश्यम्भावी।"

2 जून, 1923 ईसवी।

(4)

आज आकाश मेघाच्छन्न। जभी गर्मी असहनीय। श्री म भक्तों के संग में फर्श पर बैठे हुए हैं। अब रात्रि आठ। देवी-भागवत पाठ हो रहा है— 'जनकगृहे शुकदेव आगमन।'

पाठक पढ़ रहे हैं, शुकदेव ने कहा, 'महाराज, पिता वेदव्यास द्वारा आदिष्ट होकर मैंने तत्त्वज्ञान के निमित्त आपके निकट आगमन किया है।' जनक ने कहा, 'मानव को ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम, एक-के-बाद एक लेने चाहिएँ। तुम अब गार्हस्थ्य आश्रम अवलम्बन करो...।' शान्त, सुमति और आत्मवान होकर विहित कर्म करोगे। लाभालाभ में समभाव की रक्षा करोगे। मनुष्य मन से ही बद्ध और मन से ही मुक्त है। 'मैं ब्रह्म हूँ', यह चिन्तन करो।

श्री म— यह तो साधारण नियम है। और फिर विशेष नियम है। ठाकुर भी बतलाया करते गृही भक्तों को, 'तुम मन से त्याग करोगे। सर्व फल ईश्वर में समर्पण करोगे। नित्य सत्संग और प्रार्थना, और बीच-बीच में निर्जनवास करना होगा।' क्यों यह बतलाते? क्योंकि एकदम त्याग की बात कहने से भय पाएँगे। भोगवासना रहती है। इस प्रकार गृहस्थ करके बहुत सी वासना क्षय हो जाने पर तब उसमें सम्पूर्ण मन दे सकेंगे। यही है साधारण नियम। किन्तु जिनका पूर्व जन्म में भोग हो गया है, वे क्यों जाएँ इस झंझट में? वे एकदम संन्यास लेंगे। संसार ज्वलन्त अनल— ठाकुर कहा करते।

जानबूझ कर कौन जाए अग्निकुण्ड में? इसीलिए तो 'जाबाल उपनिषद्' में है, जब ही वैराग्य हो जाए तब ही संसार त्याग कर दो। यह मत तो हमें खूब consistent (न्यायसंगत) लगता है। अधिकारी-भेद स्वीकार करना होगा। नहीं तो कट्टरपन आ जाता है। सब के लिए एक ही मत suit (ठीक) नहीं होगा।''

पाठ चल रहा है : जनक शुकदेव से कह रहे हैं, 'तुम विहित कर्म जान कर यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान करोगे। राग और अहंकार विवर्जित होकर कर्म करने पर कर्म अकर्म हो जाता है।'

श्री म— निष्काम कर्म की बात कह रहे हैं, उत्तम बात है। है खूब कठिन। राग माने आसक्ति। Interest (स्वार्थ) कहाँ से आ पड़ते हैं, वह जानने भी नहीं देते। Interest (स्वार्थ) से ही संसार है। स्वार्थ में तनिक हाथ पड़ते ही शत्रु बन जाते हैं।

''भाटपाड़ा में एक घटना हुई थी। गुरु ने शिष्य को उपदेश दिया, 'तुम पराया धन ग्रहण मत करो— चाहे लाख रुपया ही हो।' शिष्य ने नहीं सुना। गुरु ने पड़ोसी के घर बैठ कर शिष्य को अभिशाप दे दिया। शिष्य सुनकर कहने लगा, 'क्या, मुझे अभिशाप? मैं भी ब्राह्मण हूँ। मैं भी अभिशाप देता हूँ।' *(सब का उच्च हास्य)* ऐसा है संसार! इसीलिए शिष्य को गुरु बहुत बार directly (साक्षात् रूप से) कोई भी बात नहीं कहते। सांसारिक दृष्टि से यदि गुरु कोई भाग माँग लेते तब तो कदाचित् शिष्य इस व्यापार में तुष्ट रहता। निज तो कुछ भी लिया नहीं और उस पर शिष्य को भी सब छोड़ने को कह रहे हैं। कैसी भयानक बात है संसारी लोगों के लिए! Attachment (आसक्ति) ऐसी ही वस्तु है। कठोपनिषद् में श्रेय और प्रेय हैं। श्रेय— सत्य, न्याय, ईश्वर। प्रेय— संसार, भोग, यही परस्व (पराया धन)। लोग प्रेय को चाहते हैं।''

पाठक पढ़ रहे हैं। शुकदेव कहने लगे, 'महाराज, संसार में रहते हुए मन किस प्रकार स्थिर हो सकता है? सर्वदा नाना व्यापारों में मन विक्षिप्त रहता है। संसारी जीव किस प्रकार निस्पृह हो सकता है? शत्रु-मित्र भेद ज्ञान कैसे दूर होगा? धन, वित्त, राज्य— इन सब में से आत्म-बुद्धि किस प्रकार

हटेगी?' जनक ने उत्तर दिया, 'यदि जीवन्मुक्त व्यक्ति देह, मन, इन्द्रिय सब के रहते हुए भी निज को विदेह आत्मा सोच सके, तब वही जीवन्मुक्त व्यक्ति संसार में रह कर भी धन, वित्त, राज्य, परिजन 'मैं नहीं हूँ, ये सब मेरे नहीं हैं'— यह ज्ञान क्यों नहीं कर सकेगा?'

श्री म— ठाकुर कहा करते, जनक ने 'हेटमुण्ड' होकर (नीचे सिर करके) तपस्या की थी। तब फिर ईश्वर-दर्शन करके उनका आदेश लेकर गृहस्थ में थे।' जीवन्मुक्त कितने जन होते हैं? शुकदेव बल्कि यह argument (युक्ति) दे सकते थे : जिनकी प्रकृति में संसार है— वे ही पहले तपस्या करके, साधुसंग करके, ज्ञान-भक्ति लाभ करके, गृहस्थ करेंगे। नहीं तो दिमाग ठीक रखना ही मुसीबत है। कामिनी-काञ्चन के फन्दे में एक बार पड़ जाने पर फिर उपाय नहीं। आज तो है ठीक, लेश मात्र भी इधर-उधर होते ही चकनाचूर। स्त्री यदि adultery (व्यभिचार) करके बैठ जाए!

''एक नायब का एक गुमाश्ता था। नायब भला जन था। एक दिन बहुत सा धन वसूल हो गया। रात को अर्थलोभ से गुमाश्ते ने नायब के गले पर छुरी मार कर उसे समाप्त कर दिया। अगले दिन पुलिस में जाकर स्वयं ही फिर सम्वाद भी दे दिया। ऐसा काण्ड होता है संसार में!

''अभी-अभी पढ़ा गया है, वसिष्ठ और निमि राजा गुरु-शिष्य थे। अन्य व्यक्ति द्वारा यज्ञ करवा लेने के कारण वसिष्ठ ने उसे श्राप दे दिया। निमि राजा ने भी प्रतिश्राप दे दिया। उससे दोनों का ही पतन हुआ। ऐसा व्यापार होता है संसार में! पता तक भी लगने नहीं देता कि नीचे गिर रहा है— 'कलम बाड़ा पथ' (ढलवाँ पथ)। ईश्वर-दर्शन करके गृहस्थ में रहने से तो विदेह जनक, नहीं तो सन्तानों के जनक।''

कोलकता; 3 जून, 1923 ईसवी, रविवार।
20 ज्येष्ठ, 1330 (बंगला) साल, कृष्णा पञ्चमी।

षोडश अध्याय

जिससे बद्ध उससे ही मुक्त, मोड़ फिरा देने से

(1)

अब सन्ध्या उत्तीर्ण। श्री म बहु भक्तों के संग द्वितल पर फर्श पर बैठे हैं। उमस गर्मी से खूब कष्ट हो रहा है। मिहिजाम की जलवायु से शरीर खूब चंगा हो गया था। वे वहाँ पर थे मानो कानन में सिंह। कलकत्ता की जलवायु से इस बीच ही शरीर खराब हो गया है। सर्वदा सर्दी-खाँसी। आजकल जभी भजन और पाठ ही अधिक होता है। स्वयं एक गाना गा रहे हैं, 'कखनो कि रंगे थाको मा श्यामा सुधातरंगिणी।' (माँ श्यामा सुधातरंगिणी, कब किस रंग में रहती हो।)

इसी बीच स्वामी सद्भावानन्द जी, सतीश नाथ और चटगाँव के निरञ्जन और एकजन गायक बन्धु आ गए। निरञ्जन अष्टाँग आयुर्वेद के चतुर्थ वर्ष में पढ़ते हैं। संगी गायक ने एक स्तव गाया, 'जन्मे जाहार पुण्य वसुधा।' (जिसके जन्म में पृथ्वी पुण्यवती हो जाती है।)

श्री म— *(निरञ्जन के प्रति)*— आयुर्वेद, माने जो भगवान द्वारा रचित है।

निरञ्जन— सर्वप्रथम ईश्वरस्तोत्र पाठ करके पढ़ना होता है। औषध खिलाने के पूर्व भी उनका नाम करके देनी होती है।

श्री म— तुम्हारे आयुर्वेद शास्त्र की 'शरीरमाद्यम् खलु धर्मसाधनम्' इस मत से ही उत्पत्ति हुई। ऋषियों ने किया है यह सब। च्यवन मुनि ने निर्जन वास की बात कही है क्षय रोग में, है ना? अच्छा, चित्त-शुद्धि, साधु-संग— ये बातें भी हैं क्या?

निरञ्जन— भक्ति, विश्वास न हो तो चिकित्सा से कोई कुछ कर सकता नहीं, ऐसी सब बातें हैं।

श्री म *(कार्तिक के प्रति)*— अच्छा डॉक्टर बाबू, आपकी अंग्रेज़ी डॉक्टरी में ऐसा कुछ है ईश्वर के सम्बन्ध में?

डॉक्टर— जी, वैसा कुछ नहीं है। वह केवल साइन्स के ऊपर निर्भर करके हुई है।

श्री म— हाँ, वे भोगी हैं कि ना, तभी। पाँच इन्द्रियों के द्वारा जो होता है, उसके बाहर जाना चाहते नहीं। उनके ऊपर भी कितना है। शरीर, मन, जीवात्मा और ईश्वर, एक के संग दूसरे का योग है। शरीर के रोग का अधिकांश कारण ही मन में है। ऋषिगण यह जानते थे। जभी शरीर की चिकित्सा करते हुए भी मन और ईश्वर की सहायता लेते। उस दिन लंदन में 'वातावास' नामक एक प्रतिष्ठान की वार्षिक सभा हुई। उसमें सब देशों के प्रतिनिधि थे। उस सभा ने कलकत्ता युनिवर्सिटी को request (अनुरोध) किया है कि curriculum (पाठ्यतालिका) में आयुर्वेद को रखें। समस्त चिट्ठी संस्कृत में लिखी है।

भक्तों में से कोई-कोई चले गए हैं; और फिर और आ गए हैं। अब 'कथामृत' पाठ हो रहा है। शची पढ़ रहे हैं। ठाकुर भक्तों के 'घर' बतला रहे हैं।

श्री म— 'घर' माने एक उच्च आदर्श की बात बतला दी। अब यह पकड़ कर ऊपर चढ़ते रहो। अन्तरंग माने जो नित्य आते रहते हैं। कष्ट और असुविधा नहीं मानते। 'बहिरंग' माने जो कभी-कभी आते हैं और उपदेश लेकर चले जाते हैं— घर के बाहर की खूँटी और भीतर की खूँटी।* 'जीवन्मुक्त' माने जिसने, जीवनी शक्ति चल रही है, इस अवस्था में होते हुए भी, यह समझ लिया है कि देह अलग है और आत्मा अलग है। 'मैं' 'तुम' नहीं है। सब 'तुम-ही-तुम' हो। देह ही तो व्यवधान है। जब तक circulation of blood (रक्त का चलाचल) चल रहा है जोर से, तब तक यह ज्ञान होता नहीं साधारण लोगों को। देह का ebb (भाटा) आरम्भ हो जाने पर समझ में आता

* 'खूँटी' = लकड़ी का खम्भा, स्तम्भ।

है यह माया का खेल। असत्य देह को आत्मा के नाम से समझा देती है— 'अतस्मिन् तद्बुद्धिः'। मनुष्य सब नाचने वाली पुतलियाँ हैं जादूगर के हाथ में। उनका हाथ देखते ही जीवन्मुक्त।

बड़े जितेन— (भक्ति-लाभ) हो रहा है, हो रहा है; अच्छे लोग थोड़ा-सा कह दें, तब तो भरोसा हो जाता है।

श्री म *(सहास्य)*— हाँ, फिर और भी एक मत है। अधिक कहें तो हानि होती है। माइनोरिटी का, अल्प लोगों का, मत ही ठीक है।

''कालना में देखा, स्टीमर से लोग नौका में चढ़ रहे हैं। कितना हँसी, मजाक हो रहा है। एकजन तम्बाकू पी रहा है। और एकजन youngman (युवक) चुपके से चिलम उठाकर हाथ में लेकर सूटा लगाने लगा। ओ माँ, स्टीमर का एक लहर ही में सब अन्त हो गया। एक wailing (आर्त्तनाद) मात्र सुना और कुछ भी दिखाई नहीं दिया। तरंग की फेन की भान्ति मिल गए बारह-चौदह जन। संसार का सब ही है जल के बुदबुद-वत्— अभी है, अभी नहीं। *(बड़े जितेन के प्रति)* वह न हो तो कहाँ गए पूर्व पुरुषगण?

अगले दिन बृहस्पतिवार। अपराह्ण साढ़े पाँच से साढ़े छः तक जल पड़ा है। तब भी भक्तगण आए हैं। नित्यगोपाल महाराज के शिष्य हरेन बाबू आए हैं। ध्यानान्ते इन्होंने चित्तेश्वरी कीर्त्तन किया। तदुपरान्त श्री म भक्तों के संग हाथ-ताली देकर गा रहे हैं :

हरिहरये नमो, कृष्णयादवाय नमो।
यादवाय माधवाय केशवाय नमो,
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥

इसे ही श्री गौरांग ने श्रीनिवास के आंगन में प्रथम गाया था। अब हरेन बाबू के संग नित्यगोपाल महाराज की बातें हो रही हैं।

हरेन *(श्री म के प्रति)*— उन्हें कोई भी taste (स्वाद) बोध नहीं था। एक दिन कोईमाछ (काँटेदार काली मछली) का झोल (तरी), नमक और चीनी एक संग मिलाकर खा लिया।

श्री म— समाधिस्थ पुरुष का बाह्यज्ञान प्रायः रहता ही नहीं। ईश्वरीय

भाव में विभोर। ठाकुर की धोती बगल में— नग्न, मानो पाँच वर्ष का शिशु! 'माँ, माँ' करके बाह्यज्ञान प्राय: विलुप्त। In the world but not of the world (संसार में रहते हैं किन्तु संसार-ज्ञान नहीं)। मन-प्राण ईश्वर-चिन्तन में निमग्न। समाधि की अनेक stages (अवस्थाएँ) हैं। कभी देखा जाता, हठात् हाथ अधिक उठा नहीं पाते, एकदम बेहोश। एक बार नीचे गाना हो रहा था, 'जागो, जागो माँ कुलकुण्डलिनी।' सुनते-सुनते समाधिस्थ। खाने बैठे और हाथ उठता नहीं। नीचे उतर कर कहने लगे, 'मुझे वहाँ पर ले चलो।' समाधिस्थ पुरुष, जैसे निद्रित शिशु। माँ जोर करके मुख में ठूस देती है, फिर अनासक्त हुआ खाता है mechanically (कलवत्)— जैसे इंजन को खिला रहा है।

"ठाकुर ने और भी एक उपमा दी थी। अर्जुन का किसी भी दिशा में लक्ष्य नहीं। राजन्यवर्ग, राज-प्रासाद कहीं भी नहीं। दृष्टि केवल मछली के दाएँ चक्षु पर। तब ही लक्ष्य-भेद हुआ। ऐसा ही समाधिस्थ पुरुष का मन— एक ईश्वर में निबद्ध। एक बालक बायस्कोप देखने गया था। केवल कॉन्सर्ट (संगीत) ही सुनने लग गया। अन्य ओर होश नहीं। मैंने कहा, थोड़ा भी देखा क्यों नहीं? उसने कहा, 'तार जो नहीं है— थोड़ा देखने पर और देखने की इच्छा होगी।' Interesting (आनन्ददायक) कि ना! बालक ने केवल कॉन्सर्ट ही सुनी। इससे पता लगता है, जिसका इसमें इतना मनोयोग है; उसका भगवान के विषय में भी हो सकता है। पाँच विषयों में मन जाने से होता नहीं।"

हरेन— खाँ साहब मन की बात बतला सकते थे।

श्री म *(अवज्ञासहित)*— वह भी है एक सिद्धाई, ठाकुर कहा करते। ठाकुर उस पथ से जा ही नहीं सकते थे— रोग हटाना इत्यादि। कहा करते, इसीलिए तो डॉक्टर कविराज बना दिए हैं। जो ठीक-ठीक ईश्वर को चाहता है, वह यह सब ग्रहण नहीं करता। इससे पतन हो जाता है। सम्पूर्ण मन उनमें न दिया जाए तो उनका दर्शन नहीं होता। अन्य ओर मन देने का अवसर ही कहाँ है? जभी तो क्राइस्ट ने कहा था : For all these things do the nations of the world seek after. But rather seek ye the kingdom of God. (St. Luke 12:31) जो भगवान को चाहता है, वह अन्य कुछ भी

नहीं चाहता।

''ठाकुर थे जैसे माँ के अंक में शिशु। खाली माँ को ही जानते हैं। अन्य कुछ नहीं। नवगोपाल बाबू ने आशीर्वाद करने के लिए कहा तो ठाकुर बोले, 'मुझे यह नहीं करना। माँ जानती हैं सब।' केशवबाबू की माँ को भी यही बात कही थी, बड़े बेटे को आशीर्वाद करने के लिए कहने पर। लड़के के शरीर पर हाथ फेरते हुए कहने लगे, 'आशीर्वाद तो मैं दे ही नहीं सकता। माँ के सामने क्या लड़का आशीर्वाद दे सकता है? माँ जानती हैं सब।' अवतार का life (जीवन) होता है criticism of the existing spiritual matters (प्रचलित धर्म की समालोचना)। सारा जीवन ही वही।''

6 जून, 1923 ईसवी।

(2)

मॉर्टन स्कूल। रात्रि आठ। द्वितल के कमरे में तीस जन से अधिक भक्त। श्री म फर्श पर बैठे हैं। विश्वविद्यालय के अध्यापक गोकुलबाबू आए हैं। हरेन्द्र मास्टर गाना गा रहे हैं :

हेरो हरमनमोहिनी के बोले रे कालो मेये।

[देखिए हर की मनमोहिनी को कौन कहता है कि यह काली कन्या है।]

श्यामा मा कि आमार कालो रे।

[मेरी श्यामा माँ क्या काली हैं रे?]

अध्यापक गोकुलबाबू ने गाया :

राज राजेश्वर देखा दाओ।
करुणा भिखारी आमि, करुणा नयने चाओ॥

[हे राज-राजेश्वर, दर्शन दीजिए। मैं करुणा का भिखारी हूँ, करुणा-पूर्ण नयनों से मेरी ओर ताकिए।]

सुन्दर तोमार नाम दीनशरण हे।

[हे दीन शरण, तुम्हारा यह नाम सुन्दर है।]

बड़े अमूल्य गा रहे हैं :

ऐमन दिन कि होबे मा तारा।
जखन तारा तारा तारा बोले, दु'नयने बोइबे धारा॥

[ऐसा दिन भी क्या होगा माँ जब तारा, तारा, तारा बोलते-बोलते मेरे दोनों नयनों से प्रेमाश्रु की धारा बहेगी?]

यतने हृदये रेखो आदरिणी श्यामा मा के।

[यत्न से हृदय में रखो आदरिणी श्यामा माँ को।]

हरेन्द्र फिर गा रहे हैं :

नाथ! तुमि सर्वस्व आमार, प्राणाधार सारात्सार।
नाहि तोमा बिने केहो त्रिभुवने बोलिबार, आपनार॥

तुमि सुख शान्ति, सहाय सम्बल, सम्पद् ऐश्वर्य, ज्ञान बुद्धि बल।
तुमि वासगृह आरामेर स्थल, आत्मीय बन्धु परिवार॥

तुमि इहकाल, तुमि परित्राण, तुमि परकाल, तुमि स्वर्गधाम,
तुमि शास्त्रविधि गुरु कल्पतरु, अनन्त सुखेर आधार॥

तुमि हे उपाय, तुमि हे उद्देश्य, तुमि स्रष्टा पाता तुमि हे उपास्य,
दण्डदाता पिता, स्नेहमयी माता, भवार्णवे कर्णधार (तुमि)॥

स्थिर होकर श्री म भजन सुन रहे हैं। समाप्त हो जाने पर भी कुछ काल मौनावलम्बन किए रहे। अब मधुर कण्ठ से छोटे जितेन को मठ का विवरण बतलाने के लिए कहा।

छोटे जितेन *(श्री म के प्रति)*— आज प्रातः महापुरुष महाराज ने भाव महाराज को कहा था, 'अब जामताड़ा जाकर ठीक से बैठो। घूमने-फिरने से क्या होगा? उनका नाम करो, जप-ध्यान करो। अपने आप ही सब आएगा, जो-जो दरकार होगा।'

श्री म *(आह्लाद से)*— हमने भी यही बात कही थी। चार-पाँच दिन हुए आए थे। कहा था, 'वामन अवतार में बली के पास से मात्र तीन पग भूमि माँगी थी तपस्या करने के लिए; और तुमने इतनी भूमि पाई है। अब बैठ कर उनका नाम करो।' उनको ठीक-ठीक पुकारने पर वे सब जुटा देते हैं।

बड़े अमूल्य— केवल दाल-भात खाकर एक व्यक्ति का मात्र तीन रुपये में एक मास चल जाता है। तीन जन के लिए नौ रुपये हों तो हो जाता है। इससे भी क्या होता नहीं?

श्री म— ऐसे तीन रुपये के हिसाब की भावना नहीं करनी पड़ती। वे आप सब जोगाड़ कर देते हैं। गीता की वाणी क्या मिथ्या है? 'योगक्षेमं वहाम्यहम्।' (गीता 9:22)

(भक्तों के प्रति) ''प्रत्येक के भीतर ही एक craving (तृष्णा) होती है भगवान के लिए। यह ठीक-ठीक आने पर ही अपने आप ही सब आता है, देह-मन-रक्षा के लिए जो-जो दरकार— जैसे प्रकाश देखकर बरसाती कीड़े आ जाते हैं। आन्तरिक उनको पुकारता हुआ देखकर कितने ही लोग उसके पास आ जाते हैं सेवा करने। वे सब भेज देते हैं। देह के लिए, पेट के लिए, जो disturbance (विघ्न) होता है, वह वे स्वयं ही दूर कर देते हैं। भक्तगण ऐसे व्यक्ति की सेवा करते हैं। मिलता ही कहाँ है सच्चा व्यक्ति जो अनन्य मन से उन्हें पुकारता है? जैसे एक जन बहुत कष्ट से काठ इकट्ठा करके आग जला लेता है, तब अनेक ही आते हैं, आग सेकते हैं। उनको कितनी सुविधा— तैयार आग मिल जाती है। सच्चा होने पर वे भक्तों को भेज देते हैं और देह-धारण की सब व्यवस्था कर देते हैं। तब सर्वदा ही योग में रहा जा सकता है। पर सच्चा होना चाहिए।

शुकलाल— मनोरंजन ने लिखा है, यहाँ (मिहिजाम में) कोई भी अभाव नहीं।

श्री म— वह नहीं तो क्या! अथवा फिर अभाव ही क्या! मुट्ठी भर चावल उबाल लेना और मुट्ठी भर दाल। *(भक्तों के प्रति)* ठाकुर ने एक भक्त (श्री श्री माँ) को कहा था, 'तुम्हारी यह कुटी तो है ही। फिर शाक-भात खाओगी नून देकर। साँझ को एक-दो बताशे मिलें तो मिलें, नहीं तो खाली जलपान। सब समय बैठ कर हरिनाम करोगी। किन्तु कुटीर तुम्हारी होनी ही चाहिए।'

''उनका क्या, साधुओं का? उन्हें क्या किसी का उधार देना है? गृहियों का तो टुक है भी। अनेक minds (मनों) के संग deal (व्यवहार)

करना पड़ता है। निज के लिए शाक-भात हो जाए तो चलता है, किन्तु अन्य जन क्यों मानेंगे उससे? जभी ठाकुर कहा करते, शव-साधन के शव की न्यायीं उनको वश में रखना चाहिए। शव-साधन के 'शव' के ऊपर ज्यों ही बैठता है, त्यों ही शव 'हा' कर उठता है। भूत पकड़ लेता है कि ना! झट शराब और भुने चने मुख में दे देता है। जब शव करड़-मरड़ करके खाता है; उसी अवसर में साधक जप कर लेता है।

"परिजनों का दासत्व खाली luxury (भोग) के लिए है। बढ़िया कपड़ा, बढ़िया गहना, गाड़ी-बाड़ी ये सब चाहिए। इतना नहीं चाहिए तो दासत्व भी नहीं रहेगा। विद्यासागर महाशय ने कर्म छोड़ दिया। प्रिन्सिपल थे। पाँच सौ रुपया महीना उन दिनों। कैसे तेजस्वी पुरुष! कहा था 'मैं ब्राह्मण, तीन घर से तीन मुट्ठी चावल भिक्षा करके उबाल कर नून डाल कर खाऊँगा।' क्यों जाएँ दासत्व की लाँछना सहने? ऐसा मन का जोर! Want (अभाव) कम न किया जाए तो simple life (सरल जीवन) नहीं होता। और simple life (सरल जीवन) न हो तो धर्म जीवन नहीं होता।"

8 जून, 1923 ईसवी।

(3)

मॉर्टन स्कूल। चार तल की छत। अपराह्ण काल। आद्यापीठ के अन्नदा ठाकुर आए हैं। श्री म आनन्द के साथ नाना बातें कर रहे हैं।

श्री म *(अन्नदा ठाकुर के प्रति)*— ठाकुर बतलाते, कामिनी-काञ्चन योग-भ्रष्ट कर देते हैं। एक अवस्था में एक मोटी चादर शरीर पर लपेटे रहा करते, कहीं स्त्रियों के शरीर की और विषयियों की हवा देह पर न लग जाए। एकजन की परमहंस अवस्था बतलाई थी। उसे सावधान कर दिया था कि स्त्रियों के संग अधिक न मिले। सुना नहीं। पीछे उसी से उसका पतन हुआ था, सुना जाता है। ईश्वरीय भाव हृदय में आने पर अति सावधानी से रक्षा करनी चाहिए; जैसे अंगूरों को रखते हैं रूई के बक्से में। कहा, परमहंस होने

पर भी लोक-शिक्षा-जन्य स्त्रियों के संग रहेगा नहीं।

अन्नदा ठाकुर ने गम्भीर भाव से यह वाणी सुनी। मिष्टिमुख करके कुछ काल परे विदा ली।

अब रात्रि साढ़े आठ। नित्य गोपाल महाराज के शिष्य हरेन्द्र कीर्त्तन गा रहे हैं— 'हरिहरये नमो, कृष्णयादवाय नमो।' कीर्त्तन शेष हो गया। अपने संगी कोट पैन्टधारी भक्त को ठाकुर की कथा सुनाने के लिए श्री म से अनुरोध करने लगे।

श्री म *(सहास्य, रंगरली करते हुए)*— 'सखी गो सखी तोमारइ, श्यामेर कथा होच्छे।' (सखी री सखी, तुम्हारे श्याम की ही बातें हो रही हैं।)

''एक न्याय-पण्डित को मैंने ठाकुर की एक गल्प सुनाई थी। दो मित्र आम खाने बाग में घुसे। एकजन घुसते ही आम खाने लग गया और एकजन बाग देखने लग गया। समय हो जाने पर माली ने बाहर चले जाने को कहा। जिसने आम खा लिया था, वह आनन्द से बाहर हो गया। मित्र तो आम खा ही नहीं पाया था। जभी ठाकुर कहा करते, आम खाने आए हो, आम खाओ। (ईश्वर को पुकारो।) इतनी खबरों का काम क्या? कितने वृक्ष, कितने हजार पत्ते? कहा करते, यदुमल्लिक के कितने कम्पनी के कागज, कितने घर, कितना रुपया— इन सब बातों का उससे पूछ कर क्या होगा? जैसे-तैसे पहले यदुमल्लिक के संग मेल करो। प्रयोजन हुआ तो उससे सब खबर जान सकोगे। यदुमल्लिक माने ईश्वर। पहले उनका दर्शन, फिर अन्य बात। केशवसेन को यही बात कही थी : हजार पोथियाँ ही पढ़ो और लैक्चर ही दो, किसी से भी कुछ नहीं होगा। कोरे पण्डित को चील, गीध कहा करते। खूब ऊँचे पर चला जाता है, किन्तु दृष्टि मरघट पर— कामिनी-काञ्चन पर।

''कितने ही ब्राह्म छोकरे, वयस बाइस-तेइस बरस। विवेकानन्द के संग ठाकुर के पास गए। ठाकुर ने कहा, 'पहले डुबकी लगाओ। ऊपर तैरने से होगा नहीं।' नीचे जो अमूल्य रत्न पड़ा है, उसे तो देख तक भी पाते नहीं। जभी पहले डुबकी लगा कर, रत्न लाभ करके, जो इच्छा हो, करो। 'डुबकी लगाओ' माने साधन-भजन करके उनके दर्शन करना। तदुपरान्त उनका जैसा आदेश होगा,

वही करना। आगे उनका दर्शन, परे अन्य सब। एक सुन्दर पद कहा करते— 'मन्दिरे तोर नाइको माधव शाँख फूंके तुइ करलि गोल।' (तेरे मन्दिर में माधव तो कहीं है ही नहीं। शंख फूँक कर तूने इतना शोर मचा दिया।)''

अब अर्थ बतला रहे हैं :

''किसी गाँव में पद्मलोचन नाम का था एक लड़का। लोग पदुआ कह कर पुकारते। एक दिन सन्ध्या के आगमन पर लोगों ने शंख-ध्वनि सुनी। गाँव वालों ने सोचा, निकट के जीर्ण-शीर्ण मन्दिर में किसी ने देव-प्रतिष्ठा की है और अब आरती हो रही है। लड़के, बूढ़े, औरत, मर्द सब दौड़ते हुए वहाँ आ उपस्थित हुए। एक ने मन्दिर का द्वार धीरे-धीरे खोला तो देखा पद्मलोचन एक ओर खड़ा पों-पों शंख बजा रहा है। माधव-प्रतिष्ठा भी नहीं हुई है। मन्दिर में झाड़ू तक नहीं लगाया गया— चमगादड़ों की विष्ठा पड़ी है। तब वह चिल्ला कर कहने लगा 'तेरे मन्दिर में माधव कहाँ? शंख फूँक कर तूने हुल्लड़ मचा दिया है। उसमें ग्यारह चमगादड़ रात-दिन चक्कर लगा रहे हैं।'

''ग्यारह चमगादड़ का अर्थ ग्यारह इन्द्रियाँ— पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन। पहले माधव की प्रतिष्ठा, फिर इच्छा हो तो वक्तृता, लैक्चर आदि देना।

''यदि हृदय-मन्दिर में माधव-प्रतिष्ठा की इच्छा हो, यदि ईश्वर-लाभ करना चाहो, तो केवल पों-पों शंख फूँकने से क्या होगा? पहले चित्त-शुद्धि चाहिए। मन शुद्ध हुआ तो भगवान उस पवित्र आसन पर आ विराजेंगे। चमगादड़ों की विष्ठा रहने से माधव नहीं लाए जा सकते।

''कलकत्ता में तब खूब लैक्चर होते थे कि ना। जभी यह गल्प सुनाते, 'केवल शंख फूँकना' माने लैक्चर से काम होता नहीं। 'माधव' प्रतिष्ठा करनी चाहिए' अर्थात् ईश्वर-दर्शन।

''ठाकुर के पास जाने से पहले ब्राह्म समाज में जाया करता। वहाँ पर खूब लैक्चर होते। वे सब सुनकर मन में हुआ करता, ईश्वर बहुत दूर हैं। आनन्द होता नहीं। ओ माँ, उनके पास जाकर देखा, ईश्वर के संग बातें करते हैं! मानो घर के व्यक्ति। अवतार एक Grand mystery (दुर्बोध्य रहस्य)

है। बूझने का उपाय नहीं। जभी तो वे जो कहते हैं, उस पर हमें विश्वास करना उचित। अर्जुन ही पहचान सके नहीं। किन्तु उनकी बातों पर विश्वास किया था। 'स्वयं चैव ब्रवीषि मे।' (गीता 10:13)। ठाकुर ने कहा था, 'मेरा चिन्तन करने से ही होगा और कुछ करना होगा नहीं।' उनका चिन्तन करना हमारे लिए उचित। क्राइस्ट ने कही थी यही बात : ...'he that hath seen me hath seen the Father.' (St. John 14:9) जिसने मुझे देखा, उसने पिता को ही देखा, ईश्वर को। कारण, 'I and my Father are one,' अवतार और ईश्वर एक।

''मिहिजाम के प्रान्तर में देखा करता, गडरिये 'बुर्रूर-बुर्रूर' करते हैं। सोचा करता, क्यों करते हैं? फिर समझ गया बकरियों की न्यायीं बातें करते हैं। नहीं तो समझ सकेंगी नहीं वे। अवतार भी ठीक वैसे ही मनुष्य होकर ठीक मनुष्यवत् सब करते हैं। उनकी बातों पर विश्वास हो जाने पर सब हो गया। ठाकुर, क्राइस्ट— ये अवतार।''

अमृत— इसीलिए क्या रोग-शोक, साधन-तपस्या, सब मनुष्यवत्?

श्री म— वह नहीं तो क्या? सच्चिदानन्द का एक रूप वे। उनके लिए रोग-शोक ही फिर क्या? और साधन तपस्या ही अथवा क्या? लोक-शिक्षा जन्य हमारे भरोसे के लिए सब ग्रहण करते हैं। त्रेतायुग में भरद्वाज ऋषि ने राम से कहा था, 'तुम वही सच्चिदानन्द पर-ब्रह्म हो, हमारे कल्याण के लिए यह मानव रूप धारण किया है।' अवतार को बूझना बड़ा ही कठिन।

खूब गरमी पड़ी है। श्री म का उस ओर लक्ष्य नहीं। मत्त हुए भगवत्-प्रसंग कर रहे हैं। इतने में एक भक्त तालपत्र के पंखे से हवा करने लगे। उधर दृष्टि पड़ते ही तर्जनी द्वारा भक्तगणों को दिखला कर कह रहे हैं, ''इनके करिए, इनके करिए।'' योगियों की सर्वभूतों में समदृष्टि। सकल में भगवान का दर्शन करते हैं। *(भक्तों को दिखा कर)* ''नारायण का एक-एक रूप ही तो हैं ये सब। संसार में रह कर जो इस प्रकार देखते हैं उनके लिए समझना होगा संसार को जय कर लिया है।''

अमृत *(श्री म के प्रति)*— जी, समदर्शन माने क्या?

श्री म— जो सर्वभूतों में उनको देखते हैं, और सर्वभूतों को उनमें देखते हैं— वे सब होकर रह रहे हैं। अन्तर में भी वे। बाहर भी वे। सम माने ईश्वर, विषम माने संसार— unity and diversity.

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— विवेकानन्द ने कई दिन माँ काली का ध्यान किया। तब ठाकुर से आकर कहने लगे, 'क्यों जी, कुछ-भी तो हुआ नहीं' अर्थात् दर्शन आदि। ये प्रथम निराकारवादी थे कि ना! ठाकुर सुन कर बोले, 'दार्जीलिंग में धुएँ की भान्ति मेघ (smoky vapour) दिखाई देता है। वही फिर झुर-झुर करके गिर कर बर्फ हो जाता है। वैसे ही जो निराकार हैं, वे ही साकार होते हैं। धैर्य धर कर थोड़ा करो, अवश्य देख पाओगे।'

देवी भागवत पाठ हो रहा है। जगत् का आदि-कारण निर्णय हो रहा है। वेद-व्यास, नारद, ब्रह्मा— गुरु-परम्परा कोई भी कारण निर्णय कर सके नहीं। ब्रह्मा ने आकाशवाणी सुनी— तपस्या करो, जान पाओगे। सहस्र वर्ष तपस्या के उपरान्त पुनः आकाशवाणी हुई, 'जगत् सृजन करो'। कौन बोल रहा है, वह जानने के लिए ब्रह्मा, विष्णु, शिव अन्वेषण करके जान पाए, भुवनेश्वरी ब्रह्म-शक्ति जगत् का आदि-कारण है।

जगत् के कारण के सम्बन्ध में और भी नाना मत हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्र, वरुण, सोम, पावक, पवन, यम, कुबेर, गणपति— ये भी विभिन्न मतों में जगत् के कारण कहे जाते हैं। मुनि कहते हैं, निर्गुण ब्रह्म जगत् का कारण है। कोई कहता है, पुरुषोत्तम। और फिर कोई कहता है, जगत् स्वभाव से ही उत्पन्न हुआ है। कोई कर्त्ता नहीं। सांख्य मत में है, प्रकृति-पुरुष हैं कारण।

श्री म— बाबा, कितने मत हैं! ब्रह्मा, विष्णु, शिव ने जाकर देखा उनसे भी बड़े ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं। अनन्त व्यापार। कौन समझेगा यह सब?

''ठाकुर कहा करते : माया का व्यापार सब एलोमेलो*। समझा नहीं जाता। ठाकुर जभी तो फिर कहा करते, 'माँ, मैं वह सब जानना भी चाहता नहीं। तुम्हारे चरणों में शुद्धा भक्ति दो।' शेष नहीं। हमने सुन रखा है गुरुमुख से,

---

* एलोमेलो = उलटा पलटा। विशृंखल। अव्यवस्थित।

अवतार के मुख से— जो आद्याशक्ति हैं, वे ही जगत् की सृष्टि, स्थिति, प्रलय करती हैं। जो शक्ति, वे ही ब्रह्म। सृष्टि, स्थिति, प्रलय करती हैं, इसीलिए शक्ति कहता हूँ; और स्वस्वरूप में अवस्थान करने से उन्हें ही ब्रह्म कहता हूँ। जैसे साँप हिलता, डुलता, चलता और कुण्डली मारे रहता है, यह ही है शक्ति और ब्रह्म।

''मनुष्य की problem (समस्या) तो यही है, जैसे-तैसे इस जगत्-कारण को जानना। गुरु-वाक्य में विश्वास करके लग पड़ना चाहिए। निज की बुद्धि से यह सब निर्णय होता नहीं। वह शक्ति कहाँ है? देवताओं ने कितना किया, तब ही जान पाए। कलि में जीव का अन्नगत प्राण, आयु कम। नाना तरह से चलता नहीं। निर्जने, गोपने रो-रो कर उनको कहना। उनका दर्शन होने पर, वे सब जनवा देते हैं जो-जो दरकार है। हमारे लिए इतना-सा जान लेना यथेष्ट है— ईश्वर हैं, वे सब कर रहे हैं और सब होकर रह रहे हैं। क्रन्दन करना चाहिए, तब दर्शन देते हैं— रामप्रसाद को दिए थे। ठाकुर ने भी इसी रास्ते से दर्शन किया प्रथम। उनका दर्शन हो जाने पर सब संशय चले जाते हैं, 'छिद्यन्ते सर्वसंशयाः'। तब शान्ति, शान्ति, प्रशान्ति।''

श्री म *(भक्तों के प्रति, सहास्य)*— देखिए, पढ़ा गया है— कहते हैं, ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों जनों ने स्त्रीवेश धारण किया, तब देवी के निकट उपस्थित हुए। माने ये सकल ही ब्रह्म-शक्ति के अधीन होकर अपना-अपना काज करते हैं। यह भी एक मत है— जहाँ पर आद्याशक्ति है, वहाँ पर सब ही स्त्रियाँ हैं। अर्थात् स्त्री जन जैसे पुरुष के ऊपर निर्भरशील होती हैं, वैसे ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव आद्या-शक्ति के ऊपर निर्भरशील हैं। स्त्री माने dependent (निर्भरशील)। उपनिषद् (केनोपनिषद्) में है, ब्रह्म-शक्ति ने देवताओं का अहंकार-नाश किया था। छद्मवेश में जाकर एक क्षुद्र तृण दिया था। अग्नि और पवन समस्त शक्ति लगाकर भी इसको न जला सके, न हिला सके। इन्द्र ने आकर पहचाना था, देवी को। ठाकुर उसी आद्या-शक्ति को माँ कहा करते। उनके संग में बातें करते मनुष्यवत्। वही आद्या-शक्ति ही हैं अवतार, ठाकुर। जभी तो कहा करते, 'मेरा चिन्तन करो और कुछ करना होगा नहीं।' ऐसी शक्ति किसमें है ईश्वर छोड़?

''और भी एक बात बतलाते, जितेन्द्रिय होना हो तो निज को स्त्री

समझना उचित। वे स्वयं भी रहे थे अनेक दिन उसी भाव में। उससे स्त्री-पुरुष भेद का ज्ञान दूर हो जाता है। कहा करते, मैं निज को 'पु' (पुरुष) कह सकता नहीं।''

9 जून, 1923 ईसवी।

(4)

एक भक्त ने श्री म के हाथ में 'देवीपुराण' दिया। 'बंगवासी' से अभी-अभी यह पुस्तक श्री म के लिए लाई गई है। अब अपराह्ण पाँच। बड़े ललित, सुशील, अश्विनी चक्रवर्ती प्रभृति भक्तगण बैठे हैं। उनके साथ श्री म बातें कर रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— जो रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श व्यक्ति को बद्ध करते हैं, वे ही फिर मुक्त भी करते हैं। मोड़ फिरा देने से ही हुआ। जिस रूप से मनुष्य मुग्ध हो जाता है, उसके स्थान पर ईश्वर की साकार उपासना करना। रस— चरणामृत आदि ग्रहण करना। गन्ध— जैसे पूजा का पुष्प या गन्धद्रव्य किंवा प्रसाद की गन्ध ग्रहण, शब्द— उनका नाम गुणगान करना अथवा सुनना। स्पर्श— मूर्त्ति का चरणस्पर्श, गुरु को प्रणाम, सिर पर गुरु के हाथ द्वारा स्पर्श। विषय-भोग में मन न देकर, भगवान को मध्यस्थ रखकर करना।

''इस प्रकार करते-करते आन्तरिक होने पर उनमें मन स्थिर हो जाता है। द्वैत पूजा का उद्देश्य ही वही— बोलने मात्र से ही मन ऊपर उठता नहीं। जभी जिनमें मन रहता है, वे सकल भगवान के उद्देश्य में समर्पण करके ले लो। नाना साज सजा कर नटी नाच गाना करती है। श्रोतागण सुनते हैं। सब ही मद खा कर मतवाले हैं। यह एक प्रकार का है। उनके नाम में नृत्य में मतवाला हो जाना, वह एक रकम है। बहुत अन्तर है।

''ईश्वरीय गान होने पर ठाकुर कहा करते : यही काज हुआ। गाना मन को भगवान के संग मिला देता है। जगत् के गाने के संग में भी एक हो जाता है। ठाकुर ने बतलाया, जगत् में अनवरत गान हो रहा है। एक दिन रात

को दो-तीन के समय बाँध पर टहलते-टहलते यह बात कही थी। इसका ही नाम है अनाहत शब्द। *(फर्श पर आघात करके)* यह हुआ आहत शब्द। अनाहत यूँ ही होता है। योगी जन सुन पाते हैं। जब भोग सारा त्याग हो जाता है, इधर के सब ओर से जब मन उठ जाता है, तब वही शब्द सुना जाता है।

''योगी कौन? जिसका भोग त्याग हो गया है। *(सहास्य)* आप कोई सुनना चाहते हैं वही शब्द, वही अनाहत संगीत? यदि सुनना चाहते हैं तो फिर उस ओर (भोग में) फिर जा सकोगे नहीं। *(सहास्य)* ठाकुर रसिकता करके कहा करते : गोष्ठ[1] बड़ी मुश्किल में पड़ा है। वृकोद-भेक[2] ले लिया है। वह ले लेने पर फिर संसार भोग और चलता नहीं।

''संसार-त्याग बड़ा कठिन। संसार-त्याग माने ईश्वर को ग्रहण करना। घर में रहकर भी वह हो सकता है। कोई-कोई बाहर से भी त्याग करते हैं। किन्तु बड़ा कठिन। उनकी कृपा बिना होता नहीं। घर में रहकर खूब ही कठिन। नरेन्द्र की छाती पर हाथ दिया, झट समाधि। उस अवस्था में बोले, 'ओ ठाकुर! किया क्या? मेरे बाप-माँ जो हैं।' राखाल ने कहा, 'मेरी पत्नी का क्या होगा?' ये हैं best (उत्तम अधिकारी)। इनकी ही यह अवस्था, अन्य की तो बात ही क्या? शरीर धारण करने पर यह बस होता है। ज्ञान रहने पर अज्ञान भी रहेगा। ठाकुर कहा करते, विद्या की अपेक्षा अविद्या का जोर अधिक है। अविद्या के निकट गुरु भी हार जाता है। ऐसा काण्ड!''

बहुत भक्त आए हैं। नित्य के प्राय: सकल ही आए हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— मैं कहता हूँ, भक्त गाना-बजाना क्यों सीखते नहीं। स्वामीजी (विवेकानन्द) ने निजी चेष्टा से कितना कुछ सीख लिया था। सितार, इसराज, बेहाला, कितना ही कुछ। इस उस्ताद के घर, उस उस्ताद के घर घूम-घूम कर सब सीखा। वे हारमोनियम बजाने नहीं देते थे। सुर नष्ट हो जाएगी। भक्तगण सीख कर गा-बजा सकते हैं। *(हरेन्द्र मास्टर के प्रति)* आप बतला सकते हैं, क्यों नहीं सीखते?

हरेन्द्र मास्टर *(सहास्य)*— यदि न कर सका तो इससे पकड़ा जाएगा। *(सब का उच्च हास्य)*।

1 वैष्णव। 2 वैष्णव त्यागी का भेष।

श्री म— ओ-ओ-ओ, इसमें धोखा चलता नहीं। अच्छा, यह भी न कर सके तो भगवान को पाएँगे कैसे?

हरेन्द्र मास्टर— जी, उसमें धोखा चलता है। *(सब का उच्च हास्य)*।

श्री म— ईश्वर के साथ भी चलता है। किन्तु ठाकुर कहा करते : जो नमक का हिसाब कर सकता है, वह मिश्री का हिसाब भी कर सकता है।

श्री म के आदेश से बड़े ललित 'देवी पुराण' पाठ कर रहे हैं। प्रथम तीन अध्याय पाठ होते-होते ही सन्ध्या हो गई। सकल ही अन्य कर्म परित्याग करके ध्यान करने लगे। ध्यानान्ते फिर जगबन्धु ने पञ्चम और षष्ठ अध्याय पाठ किया।

श्री म— इसमें खाली सकाम कर्म की कथा है। और खाली भोग की कथा। शक्ति-वक्ति को ठाकुर कहा करते, 'वेश्या का गू।' अर्जुन को श्रीकृष्ण ने कहा था, सिद्धि शक्ति के द्वारा इधर की सब सुविधाएँ हो सकती हैं, किन्तु मुझे पाएगा नहीं। गोष्ठ, नदी-तीर, देवालय, भक्तसंघ— ये सब पुराण-पाठ के उपयुक्त स्थान हैं। यह सुन्दर। *(अन्तेवासी के प्रति)* आहा, कैसे गोष्ठ में हम लोग टहला करते थे मिहिजाम में। 'देवी पुराण' में कहा है 'घोर' दैत्य नारायण का भक्त था। कोई भी अन्याय नहीं किया। किन्तु लड़के के संग पार नहीं पाता। वह राज्य बढ़ाना चाहता है। *(शुकलाल के प्रति)* यही देखिए, पुत्र के संग पार नहीं पाया जाता।

एकजन भक्त रामानुज-चरित में से कितनी ही घटनाएँ कहने लगे— रामानुज और यमुनाचार्य का जीवन-वृत्तान्त। भक्तों ने अनेक गाने गाए। अन्त में श्री म गा रहे हैं : 'चिन्तय मम मानस हरि चिद्घन निरंजन।'

श्री म— इसी गीत को स्वामीजी (विवेकानन्द) ने गाया था, 18-19 वर्ष की वयस में। गन्धर्व कण्ठ! सुनकर ठाकुर समाधिस्थ, उत्तर के बरामदे में। यही था मेरा प्रथम समाधिदर्शन।

कोलकता; 16 जून, 1923 ईसवी; शनिवार।
1 आषाढ़, 1330 (बंगला) साल, शुक्ला द्वितीया।

सप्तदश अध्याय

'स्वयं चैव ब्रवीषि मे'— हीरा पहचाने जौहरी

(1)

मॉर्टन स्कूल, निम्नतल का सम्मुखस्थ प्रांगण। चारों ओर बैंच, भक्तगण उपविष्ट। श्री म पश्चिमास्य। दस हाथ दूर सम्मुख अमहर्स्ट स्ट्रीट। गगन विश्वास आए हैं आज प्रथम। ये अवसर प्राप्त (रिटायर्ड) इंजीनियर। वयस इकहत्तर— विलायत से लौटे हुए। श्री म के संग में बातें कर रहे हैं।

गगन *(श्री म के प्रति)*— अच्छा, अवतार जो आए हैं, इसका परिचय क्या?

श्री म *(डॉक्टर के प्रति)*— गीता का वह श्लोक क्या है?

डॉक्टर— आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे॥ (गीता 10:13)

श्री म *(गगन के प्रति)*— 'स्वयं चैव ब्रवीषि मे'— आप निज कहते हो, 'मैं अवतार।' और असित, देवल, व्यास, नारद— ये सब कहते हैं, तुम अवतार। जभी विश्वास करता हूँ। अर्जुन इतने बड़े उच्च अधिकारी, उन्होंने भी स्वयं पहचान न सकने पर इनकी ही बातों पर विश्वास कर लिया। अन्य की तो बात ही क्या? वे स्वयं न कहें तो पकड़ सकता नहीं कोई।

''ठाकुर ने स्वयं कहा है, सच्चिदानन्द स्वयं यह शरीर धारण करके आए हैं। वे निज मुख से ही कहते हैं, 'मैं अवतार।' जभी उनकी बात पर हम विश्वास करते हैं। हमारी सामर्थ्य कहाँ उनको बूझना? हम हुए एक सेर का लोटा; दस सेर दूध उसमें रखेंगे कैसे? तभी 'मन्त्रमूलम् गुरोर्वाक्यम्।' 'चिड़ा भेजा बुद्धि' से उनको पहचाना जाता नहीं। जानते तो हो वह गल्प?''

गगन— जी, नहीं।

श्री म— ठाकुर कहा करते, उस देश (कामारपुकुर) में रकम-रकम की दही होती है— खासा (शुद्ध-खालस), माझारी (मझली) और एक रकम— जलवत् तरल। इसमें फिर और जल की आवश्यकता नहीं होती चिउड़ा भिगोने के लिए। वैसे ही 'चिड़ा भेजा बुद्धि' माने हीन बुद्धि, कामिनी-काञ्चन लाभ की बुद्धि। जिस बुद्धि द्वारा रुपया-पैसा, मान-संभ्रम लाभ होता है, जज-बैरिस्टर होता है, वही बुद्धि है 'चिड़ा भेजा बुद्धि' अर्थात् विषय बुद्धि। ठाकुर इसे 'रांडी-पुति बुद्धि' भी कहा करते। रांड का पुत्र अति कष्ट से मनुष्य होता है। तभी संकीर्ण बुद्धि अर्थात् विषय-बुद्धि। भगवान-लाभ होता नहीं इस बुद्धि द्वारा। वह करना हो तो 'खासा' बुद्धि दरकार। विषय-बुद्धि वाले लोगों को वेद में 'बालाः' अर्थात् शिशु, अज्ञानी कहा गया है। और फिर 'धीराः'— जो केवल उन्हें चाहते हैं, उनकी बुद्धि है 'खासा'। अवतार को जानने का श्रेष्ठ उपाय है आगम। आगम माने revelation अर्थात् उनके निज मुख की वाणी।

गगन— नास्तिक जन 'अवतार' में विश्वास नहीं करते।

श्री म— एक भक्त एकजन को दिखाकर कहने लगे, 'यह नास्तिक।' ठाकुर ने सुनकर उस व्यक्ति की पीठ थपथपाकर कहा, 'न-न, ये क्यों जाएँगे नास्तिक होने— यहाँ आ जो गए हैं। *(गगन के प्रति)* क्यों आप वैसी बात कहते हैं? मुख से कहने से ही तो वैसा हो नहीं जाता। अनेक ही तर्क के समय कहते हैं, मैं नास्तिक हूँ। किन्तु नास्तिक नहीं, अपने-आप कहने मात्र ही से तो होता नहीं। आपके भीतर संस्कार हैं। खींच कर ले आएँगे जोर करके।

गगन— ब्राह्म समाज में उनका आना-जाना था। केशवसेन को पहचानते थे। 'शिवनाथ-शिवनाथ' भी करते थे। किन्तु शिवनाथ कहा करते, अधिक ईश्वर-ईश्वर करके तो पागल हो जाता है।

श्री म *(सहास्य)*— एक भक्त ने रुष्ट होकर ठाकुर से जा कहा, 'शिवनाथ बाबू आपको एक साधारण साधु रूप में लेता है।' ठाकुर ने सुन

कर उत्तर दिया, 'तो तुम उस बात से इतने क्रुद्ध क्यों हो? एक गल्प सुनो : एकजन के पास एक हीरे का टुकड़ा था। उसे बेचना चाहा। तभी बैंगन वाले के पास ले गया। उसने कहा, नौ सेर बैंगन दूँगा। कपड़े वाले ने कहा, नौ सौ रुपये दूँगा। जौहरी ने एकदम देखते ही एक लाख रुपया दाम दिया।' वैसे ही जिसका जैसा आधार होगा, वह वैसा ही दाम देगा। 'हीरा चिने जौहरी' (हीरा पहचाने जौहरी)।

''नरेन्द्र प्रथम-प्रथम कहा करते, ये सब (ईश्वरीय दर्शन, समाधि) हैं hallucination (मति-भ्रम)। सुनकर, ठाकुर के माँ को बतलाने पर, माँ ने कहा, 'वह कैसे बेटा, सब जो मिलता जा रहा है।' नरेन्द्र से कहने लगे, 'तेरी बात को नहीं ले सकता। माँ ने जो कहा है, सब मिलता जा रहा है।'

''ईश्वर बातें करते हैं। सर्वदेशों में, सर्वकालों में ही बातें की हैं। किसी ने संकलन करके रख ली हैं वे सब, किसी ने रखी नहीं। इस देश में वेदव्यास ने यह सब कथा रखी थी। परे भी कितनी हो रही हैं। अवतार के मुख द्वारा जो बाहर होता है सब ही है revelation (वेदवाणी)।''

सन्ध्या समागता। सब ध्यान करने लगे। ध्यानान्ते बऊ बाजार के एकजन भक्त ने दो गाने गाए; और एकजन ने रविबाबू के तीन गाने गाए। फिर सब भक्त मिलकर गा रहे हैं :

श्यामाधन कि सबाय पाय, कालीधन कि सबाय पाय।
अबोध मन बोझे ना ए कि दाय॥

[श्यामाधन को क्या सब ही पाते हैं? काली धन को क्या सब ही पाते हैं? अबोध मन समझता नहीं कि यह क्या दाय (सम्पत्ति) है।]

श्री म— आप में से कोई विहाग जानते हैं? यह बड़ा ही मधुर है। गोपियाँ श्रीकृष्ण के दर्शन करके लौटते समय गाया करती थीं, रात को दस-ग्यारह बजे। छः राग, छत्तीस रागिणियों में उनको पुकारने की इच्छा होती है। यदि कोई सिखा देता मुझको।

गगन— रविबाबू के गानों से पता लगता है वे ब्राह्म होते हुए भी साकार-निराकार दोनों पर ही विश्वास करते हैं।

श्री म— वह न हो तो क्या फिर चलता है? ठाकुर जैसे कहा करते, प्रकाश पर विश्वास हो तो अन्धेरे पर भी होगा ही। ये सब हैं co-relaltive terms (परस्पर सम्बन्धी शब्द)। रविबाबू के संग मेरा पहला मिलन हुआ नन्दन बागान में— बरस बीसेक वयस थी उनकी तब। हमारे संग में एक बन्धु ने आलाप करवा दिया। *(भक्तों के प्रति)* रविबाबू का 'पोस्ट ऑफिस' किसी ने पढ़ा है आप में से? *(गगन के प्रति)* ईश्वर में विश्वास मनुष्य की एक necessity (आवश्यकता) है। और फिर साकार, निराकार इनमें से एक पर होने से ही दूसरे पर भी होगा।

12 जुलाई, 1923 ईसवी।

(2)

आज भी गगन विश्वास इंजीनियर आए हैं। पैंतीस जन भक्त आए हुए हैं। ध्यानान्ते श्री म ने कमल को दो भजन गाने के लिए कहा। कमल गा रहे हैं :

गया गङ्गा प्रभासादि काशी कांचि केवा चाय।
काली काली काली बोले अजपा यदि फुराय॥

[काली, काली, काली कहते हुए यदि मेरे प्राण निकल जाएँ तो गया, गङ्गा, प्रभास, काशी, कांचि आदि तीर्थों की कौन इच्छा करता है?]

मजलो आमार मन भ्रमरा श्यामापद नीलकमले।
जतो विषय मधु तुच्छ हलो कामादि कुसुम सकले॥

[श्यामा के नील कमल रूपी चरणों में मेरा मन रूप भ्रमर लयलीन हो गया है। अब जो भी काम, क्रोधादि फूलों के विषय रूपी मधु थे, सब तुच्छ हो गए हैं।]

अब गगनबाबू श्री म से प्रश्न कर रहे हैं।

गगन *(श्री म के प्रति)*— क्या मनुष्य की स्वाधीन इच्छा है? मनुष्य स्वतन्त्र है कि ईश्वरतन्त्र?

श्री म— वैस्ट (पाश्चात्य) में कितने बड़े-बड़े लोगों ने इस विषय पर माथापच्ची की है— स्वतन्त्रता और प्रारब्ध की समस्या, the problem of

free will and predestination पर। किन्तु ठाकुर ने एक ही छोटी कहानी कह कर इस समस्या का समाधान कर दिया। केशवसेन से कहा था—

‘‘जमींदार का एक नायब था। वही देखता-भालता था जमींदारी। प्रजा के विवादों पर विचार किया करता। एक दिन जमींदार आया inspection (परिदर्शन) करने। कचहरी में सफेद चादर बिछी हुई है। उसके ऊपर तकिए की ठेस लगाए जमींदार बैठा है। नायब खड़ा है, प्रजा सब आई है। अन्य दिनों की भान्ति नायब के पास नालिश कर रहे हैं। अमुक ने हमारा अमुक किया है। नायब जमींदार को दिखाकर कहता है, ‘वे हैं मालिक, आज स्वयं आए हैं। उनको सब कुछ कहो। मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है। आज कर्त्ता आए हैं।’ जभी नायब का कुछ कर्तृत्व नहीं।

‘‘ठीक ऐसे ही ईश्वर-दर्शन होने पर समझा जाता है, ईश्वर ही कर्त्ता, मनुष्य अकर्त्ता। जब तक वह होता नहीं, लगता है जैसे स्वतन्त्र। साक्षात् होने पर देखने में आता है सब कुछ ही परतन्त्र— ईश्वर के अधीन। ‘मैं’ खोजने पर मिलता नहीं— जैसे ठाकुर को हुआ था। ईश्वर क्या वस्तु है, उस देश के लोगों को उसका ही ज्ञान नहीं। यह सब समझेंगे कैसे?’’

बड़े जितेन— ईश्वर क्या माया के अधीन होकर जगत्-लीला करते हैं? माया क्या ईश्वर की अपेक्षा बड़ी है?

श्री म— इतनी बड़ी-बड़ी बातों का काम क्या? हमारा काम है ‘यदुमल्लिक के संग मिलना।’ यदुमल्लिक से मिलने पर तब सब पता लग सकता है। अब मिलना कैसे हो, उसकी ही चेष्टा करना। यदुमल्लिक माने ईश्वर। हाट के भीतर प्रवेश करने पर सब दिख जाता है, समझ में आ जाता है। दूर से खाली ‘हो-हो’ शब्द। भीतर ढुकने की चेष्टा चाहिए।

‘‘केवल क्या वैसा कहा ही है, उपाय भी बतला दिया है। एक दिन, तीन दिन, सात दिन अथवा एक मास— जिसको जो सुविधा हो, कभी-कभी जाकर निर्जन-वास करने को कहा है। निर्जन में रह कर, रो-रो कर प्रार्थना करना— ‘तुम्हें छोड़ हमारा और कोई नहीं, प्रभो! दर्शन देकर कृतार्थ करो।’

(जनैक के प्रति)— ‘‘तो फिर भगिनीपति के घर जाना नहीं। अब

अवतार आए हैं। बड़ा chance (सुयोग) है। पथ खूब सीधा हो गया है। वे जो कह गए हैं, केवल वही कर लेने पर हो जाता है। अमुक शास्त्र पढ़ना, अमुक यज्ञ करना— यह सब दरकार नहीं। रो-रो कर, व्याकुल होकर उनको डाकना (पुकारना)। आन्तरिक होने पर वे सब सुनते हैं। बालक रोता है, घण्टा भर माँ द्वार बन्द करके भीतर काम करती रहती है। ज्यों ही देखा, अछाड़-पछाड़ खा रहा है, त्यों ही काज फेंककर आकर बालक को गोद में उठा लिया। ईश्वर भी ठीक ऐसा ही करते हैं। वे चाहते हैं, मेरे लिए लोग क्रन्दन करें।

''अवतार जो कह गए हैं, वह सब हमारे लिए सुनना, पालन करना उचित। यही सब हुआ revelation (वेद), परम ज्ञान। यह सर्वदा हो रहा है। हमारे देश में वेदव्यास ने मात्र कुछ-एक संकलन किए हैं। इसके पहले भी थे, पीछे भी हैं, भविष्य में भी होंगे— 'Before Abraham was I am.' (St. John 8 : 58) ऋषियों के मुख द्वारा जो बाहर हुआ, अवतार ने जो कहा, वह सब ही (revelation) वेद। ईश्वर अनन्त। वेद भी अनन्त। वेद उनकी वाणी, तभी तो अपौरुषेय। वेद छोड़ ईश्वर-तत्त्व निर्णय होता नहीं। एक ही वस्तु को कोई कहता है, 'noumena' (नुमिना)। स्पिनोजा* कहते हैं, 'substantia' (सब-स्टेंशिया)। वेदान्त कहता है 'ब्रह्म'।

''यह संसार उनका ही खेल है। उनकी इच्छा होती है खेल की। उन्होंने ही किया, वे ही सब हुए हैं, और फिर वे ही इसमें से बाहर निकाल ले जाते हैं— इसी गोरखधन्धे से। उन्हें आह्लाद होता है, बालक मुझे पुकारे, जैसे माँ-बाप को होता है। उनके दो डिपार्टमेंट हैं— योग और भोग। सब को ही वे देख रहे हैं।

''योगी जन केवल उन्हें ही चाहते हैं। उनके लिए अवतार का आगमन है। आकर कहते हैं, 'मेरा चिन्तन करो आन्तरिक, उसी से मुझे पाओगे।' जो भोग डिपार्टमेंट के हैं, उनको भी माँ छोड़तीं नहीं। मल्लिकों की सिंहवाहिनी के आदेश की बात सुनी जाती है। अष्टमी के दिन घर के सब नौकर-चाकर शुद्ध नूतन कपड़े बदल कर माँ के सामने जाएँ। माँ की यही

* Spinoza = एक पाश्चात्य दार्शनिक।

इच्छा है। वे आज भी करते हैं। ये भोग डिपार्टमेंट के होते हुए भी माँ उनको छोड़तीं नहीं। भोगान्त न होने से उनको प्राप्त किया जाता नहीं।''

जनैक भक्त— कभी-कभी तो खूब व्याकुलता होती है। कभी-कभी बिलकुल ही नहीं रहती, ऐसा क्यों होता है?

श्री म— साधुसंग दरकार। मन स्थिर होता नहीं। वह (साधुसंग) हो जाए, फिर वैसा होगा नहीं। नित्य करना उचित, वह बिलकुल ही न हो सके तो रोज अवसर निकाल कर उनके पादपद्म-चिन्तन करना उचित। रूप, महावाक्य, जीवन-चरित— सब ही उनके ध्यान के विषय। बात तो यही है— निरवच्छिन्न तैलधारावत् योग में रहना। योगी माने जिसने मन को वशीभूत किया है। मन जिसका है वश में, मन के वश में नहीं जो। In the world but not of the world— जीवन्त-मृत।

14 जुलाई, 1923 ईसवी।

(3)

आज रथ-यात्रा। श्री म 'रथ' देखने गए थे। आज भी गगन विश्वास आए हैं। विक्रमपुर से एक डॉक्टर आए हैं। भक्तों से घिरे हुए श्री म द्वितल के कमरे में बैठे हैं। ध्यानान्ते रमणी गा रहे हैं—

जार मने लेगेछे जारे भालो, तारा भजुक तारे गो।
मोर मने लेगेछे केवल शचीर दुलाल गोरा गो॥

[जिसके मन को जो अच्छा लगे, वह उसी को भजो रे। मेरे मन को तो केवल शची का दुलारा 'गौर' लगा है रे।]

गगन *(श्री म के प्रति)*— ठाकुर 'बाबा, कर्त्ता, गुरु' कहने से क्यों रुष्ट हो जाया करते थे?

श्री म— शिष्यों की शिक्षा के लिए। उनके ऐसा ग्रहण करने से ही रक्षा थी। नहीं तो सब के सब ही गुरुगिरी आरम्भ कर देते। कहा करते, गुरु है केवल सच्चिदानन्द ईश्वर। उनके बिना और कोई गुरु नहीं।

गगन— अच्छा, मायावादी लोग जगत् को ही माया कहते हैं, वह कैसे? हमारी क्षुद्र बुद्धि से तो यह समझ में आता नहीं।

श्री म— ठाकुर कहा करते, ऐसी बातों से क्या काम? उनका जिस प्रकार लाभ हो, यही चेष्टा पहले करना उचित। निर्जने गोपने व्याकुल होकर रो-रो कर कहने से वे दर्शन देते हैं। तब सब समझ में आ जाता है। विजय बाबू ब्राह्मसमाज के व्यक्ति; प्रथम-प्रथम कहा करते, ईश्वर साकार, यह कैसे? ठाकुर ने सुनकर उत्तर दिया, 'तुम्हें इतनी बातों से क्या काम? तुम व्याकुल होकर उन्हें 'डाको'। बोलो, प्रभु, तुम जिस भाव में ही हो, मुझे दर्शन दो। तब सब जान सकोगे।'

''ठाकुर ने उनके दर्शन किए थे। 'बतलाते, ईश्वर साकार, निराकार और भी क्या-क्या हैं।' एक बहुरूपी की कहानी कहा करते : एक स्थान पर एकजन शौच गया। सामने देखा वृक्ष पर गिरगिट— रंग है लाल। और एक ने आकर कहा, वह तो सब्ज है। नीला, पीला, लाल कह-कह कर सबने झगड़ा आरम्भ कर दिया। फिर उस वृक्षतले रहने वाले एक व्यक्ति से उनका मिलन हुआ। उसने कहा, 'वह तो बहुरूपी है। कभी लाल, कभी सब्ज, कभी नीला, पीला नाना रंग धारण करता है।' वैसा ही है ईश्वर।

''ये सब तत्त्व केवल विचार करके समझ में नहीं आते। वे बुझवा दें तभी होता है। उसके लिए तपस्या चाहिए। केवल विद्या या बुद्धि का विषय नहीं वे। तब तो पण्डितों को— बी०ए०, एम०ए०, को झट आ जाता ईश्वर-तत्त्व। किन्तु ऐसा तो नहीं है। केवल पाण्डित्य से उनका लाभ होता नहीं। विवेक, वैराग्य चाहिए। यह हो तो तपस्या करने की इच्छा होती है। तपस्या द्वारा भोगान्त होने पर तब उनकी ओर पूरा मन जाता है। सूई के भीतर सूत जा रहा है। ज्यों ही एक रेशा आ गया, फिर जाता नहीं। वैसे ही है ईश्वर-दर्शन। एक बिन्दु भी भोग-वासना रहने पर फिर होता नहीं। क्राइस्ट ने एक भक्त से कहा था, 'विषय-सम्पत्ति सब दान करके चले आओ। मेरे निकट रहना पड़ेगा।' वह व्यक्ति नहीं कर सका। गाल पर हाथ दिए बैठा रहा। ...'the Son of man hath not where to lay his head.' (St. Matthew 8 : 20) क्राइस्ट ने सर्वस्व त्याग किया था

उनके लिए, तभी उन्हें जान लिया था।

''जिनको ईश्वर प्यार करते हैं— जो हैं Sons of God (ईश्वर की सन्तान), उनको वे भोग में आबद्ध नहीं करते। विवेकानन्द को कहा था, 'दाल-भात होते पारे, एर बेशी नय।' (दाल-रोटी हो सकती है, इससे अधिक नहीं।) पाण्डवों को देखिए, कितने ऐश्वर्य के भीतर रहते हुए भी भीतर फाँक (खोखली) थी। ज्यों ही श्रीकृष्ण अन्तर्धान हुए, त्यों ही इन्होंने भी राज्य छोड़कर महाप्रस्थान कर लिया। कहाँ! राज्य करने के लिए तो वे फिर रहे ही नहीं। श्रीकृष्ण के आदेश से उन्होंने युद्ध, राज्य सब कुछ किया। उनसे इतना काण्ड करवा लिया, दृष्टान्त रखने के लिए। राज्य गया, लड़के गए, कितने दुख, किसी भी ओर लक्ष्य नहीं, केवल श्रीकृष्ण के मुख की ओर ही सब देख रहे हैं।

''तपस्या करने से भोग कम हो जाता है। पिप्पलाद ऋषि ने तभी तो कहा था, एक वर्ष तपस्या करके आओ। तब बतलाऊँगा इन सब बातों का जवाब। वह न हो तो प्रश्न ही ठीक होता नहीं। उत्तर समझेगा क्या? प्रश्न करने के लिए भी तपस्या दरकार। तपस्या माने निर्जन में बैठ कर जीवन-मरण की चिन्ता करना। संग में घर का कोई नहीं होगा। कोई खाने को पका दे चाहे। नहीं तो निज ही राँध ले। और सारा दिन बैठ कर 'राम-राम' करे। कुछ दिन करने से ही बहुत समझ में आ जाता है, कहाँ पर हूँ और जाना होगा कहाँ?''

विक्रमपुर के डॉक्टर— जी, दीक्षा का प्रयोजन है क्या?

श्री म— ठाकुर किसी-किसी को दीक्षा लेने को कहा करते और फिर किसी-किसी का आधार ऐसा कि ईश्वर के लिए तृष्णा वैसे ही हो जाती है।

विक्रमपुर के डॉक्टर— आपने दीक्षा ली है क्या?

श्री म— ऐसी बातें बताने की नहीं होतीं। इनका दाम रुपया, सवा रुपया नहीं। यह है अमूल्य धन। इससे अमृतत्व लाभ होता है। इन्हें गोपन में रखना चाहिए।

गगन— 'कथामृत' पढ़कर लगता है, आप सर्वदा उनके संग रहा करते।

श्री म— न। तभी तो वे कहा करते, 'अमृत सागर का एक कण पान (करने) से भी अमर होता है और कलसी-कलसी पीने से भी अमर होता है।'

यही भरोसा है। मैं उनका एक कणमात्र रखने की चेष्टा कर रहा हूँ, उनकी वाणी लिख कर समाप्त नहीं की जा सकती, सेंट जॉन ने कहा था।

विक्रमपुर के डॉक्टर— शरत् महाराज ने भी मुझ से कहा है, ठाकुर को पकड़ लेने पर भय नहीं। आपकी बात भी वही।

श्री म— नहीं, नहीं, यह हमारी वाणी नहीं। उनकी ही वाणी है। उन्होंने ही कहा है, 'मेरा चिन्तन करो और कुछ करना नहीं होगा।' हमारी बात का क्या मूल्य? ये हैं उनके महावाक्य।

"अवतार को कोई पहचान नहीं सकता, यदि वे ही न पहचनवावें। वे युग-युग में आते हैं। जब केवल भाव-हीन यागयज्ञ होने लगे थे, तब श्रीकृष्ण आए। आकर वेद का प्रकृत अर्थ गीता के मुख से interpret (व्याख्यायित) किया। निष्काम कर्मयोग, भक्तियोग, कितने ही तो कैसे-कैसे उपदेश दिए। और फिर साधुओं का उद्धार किया। यह ही था उनका प्रधान काज। यही जो ठाकुर आए हैं, ये भी साधुओं का ही उद्धार करने आए हैं। साधु जब विपथ पर चलने लगते हैं, तब वे निज आते हैं उन्हें उठाने :

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे॥ (गीता 4 : 8)

श्री म *(गगन बाबू के प्रति)*— भोग छोड़ो, यह बात संसारियों को अच्छी नहीं लगती। गुरु यदि कहें ईश्वर के लिए सब छोड़ो, झट कहते हैं, यह कैसा गुरु है, सब छोड़ने को कहता है। यदि कोई कहे तुम्हें अर्थ और पुत्रलाभ होगा, तो वह आदर पाता है। ठाकुर देखा करते, भक्तों को कैसे भगवान-लाभ हो— परम धन के अधिकारी हों। अन्य बात नहीं। क्या होगा पुत्र, वित्त से? मृत्यु जो सम्मुख है दण्डायमान।

कलकत्ता में एक अनाथ आश्रम टूट जाने से अनेक बालक मर गए। यही बात उल्लेख करके श्री म कह रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— उनके काज हम मनुष्य क्या समझेंगे? ऊपर-ऊपर से देख कर उनके काज का विचार चलता नहीं। यही देखिए ना, यतीमखाना (orphanage) गिरने से एक प्रहार में तेंतालीस जन को ले

गया— एक हाड़ीकाठ* में ही। निष्पाप शिशु, सब पाँच बार नमाज पढ़ते। लोग भावते हैं ईश्वर का कैसा अविचार है। हम उनके काज को कितना देख पाते हैं। अथवा कितना ही समझते हैं। 1885 साल की बाढ़ में बहुत लोग मारे गए थे। अनेक ही कहने लगे, ईश्वर का कैसा अविचार! सुनकर ठाकुर ने उत्तर दिया, 'अच्छा, यदि वे इन्हें और भी सुन्दर स्थान पर ले जा रहे हों तो?' सब चुप हो गए एक बात से ही। ईश्वर का काम समझा नहीं जाता।

''यही जो काण्ड हुआ, इससे कितना शिक्षा-लाभ हो रहा है। प्रथम, ये सारे ही निष्पाप हैं। हो सकता है, इन्हें अपने पास ले गए हों। द्वितीय, सब लोगों को चैतन्य हो गया है, सब पुराने घर repair (मरम्मत) करने लगे हैं। कॉरपोरेशन, गवर्नमेंट आदि सब की दृष्टि इस समय इधर है। तृतीय, भक्त सीखेंगे, देह कभी भी चली जा सकती है। जभी उनको व्याकुल होकर पुकारना आरम्भ करेंगे। संसार तो है एक महाश्मशान। चतुर्थ, जिनका एक लड़का मरता है, वे शोक से विरत हो जाएँगे। एक संग तेंतालीस जन गए, उनके लिए कौन रोता है? और हम एक ही के लिए इतना रोते हैं— यह सान्त्वना उनको आएगी।

''इसीलिए ईश्वर के कार्य पर remark (मन्तव्य) करना उचित नहीं। हम तो ऊपर-ऊपर से ही टुक देख पाते हैं। कुछ बोलना ही हो तो पूर्वापर, सब देख कर बोलना उचित। ईश्वर के काज का पूर्वापर एक उन्हें छोड़ और कोई जानता नहीं। तभी विचार अनुचित। एकजन ने लिखा था, world (जगत्) है एक light (प्रकाश)— सारजैंट की गुप्ति (लालटेन) की तरह। सिपाही सब को देखता है। हम उसको देख नहीं पाते। घुमा कर अपनी ओर कर ले, तब उसको देखा जाता है। वैसे ही वे बुझवाएँ तो उनका काम बूझा जाता है। मनुष्य का कर्म नहीं उनका काज समझना।''

15 जुलाई, 1923 ईसवी।

---

* हाड़ीकाठ = देवता के ठीक सामने की ओर जमीन पर गड़ा हुआ बलिकाष्ठ, जिसके ऊपर का अंश तीन-चार इंच चीरा हुआ रहता है और जिसमें गर्दन फँसा कर गर्दन काटी जाती है।

(4)

आज भी 'रथ'। आज भी गगन विश्वास इंजीनियर आए हैं। श्री म भक्तों के संग दोतल के कमरे में बैठे हैं। अब अपराह्ण पाँच। 'कथामृत' पाठ हो रहा है— 'रथ यात्रा दिवसे श्रीरामकृष्ण संगे पण्डित शशधर मिलन।' पण्डित को उपदेश दे रहे हैं :

'कलियुग में नारदीय भक्ति।'

'जिस पण्डित में विवेक–वैराग्य ही नहीं, वह पण्डित ही नहीं।'

'ईश्वर का आदेश न हो तो लोक–शिक्षा होती नहीं।'

'जभी कहता हूँ कि ईश्वर के पादपद्म में मग्न होओ'।

अब श्री म ने मोहन से एक गाना गाने के लिए कहा। मोहन के भली प्रकार न जानने के कारण श्री म निज ही मस्त हो कर गाने लगे :

डुब डुब डुब रूपसागरे आमार मन।
तलातल पाताल खुंजले पाबि रे प्रेमरत्न धन।

[डूब डूब रे मेरे मन, रूप सागर में डूब जा। तू तल, अतल, पाताल खोजने पर ही प्रेम–रत्न–धन पाएगा।]

गान समाप्त होने पर श्री म बातचीत कर रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर ने केशवसेन को यही गाना ही तो गाकर सुनाया था। पण्डित शशधर को भी सुनाया था। माने वे खूब लैक्चर देते थे कि ना। जभी कहा करते, 'पहले तपस्या करके कुछ संचय कर लो। फिर लैक्चर देने से लोग सुनेंगे। आदेश न पाने से कौन सुनता है? ईश्वर का आदेश लेकर बातें करने पर तब वे लोगों के हृदय में बैठ जाती हैं।' देखिए, किन को दे रहे हैं यह उपदेश, जो समाज के श्रेष्ठ व्यक्ति हैं— सब ही जिनको मानते हैं। केवल क्या उनसे ही कह रहे हैं, 'ईश्वर के पादपद्मों में मग्न हो जाओ।' सब को ही कह रहे हैं। उपलक्ष्य वे। ये मनुष्यों के मध्य श्रेष्ठ, इनको कहने से ही सब को कहना हो गया।

श्री म भक्तों के संग पुनः भजन गा रहे हैं :

चिन्तय मम मानस हरि चिद्‌घन निरंजन।
किबा अनुपमभाति मोहन मूरति भकत हृदय रञ्जन॥

[हे मेरे मन, चिद्‌घन-निरंजन हरि का चिन्तन करो। वह मोहन मूर्त्ति भक्तों के हृदय को प्रसन्न करने वाली कैसी अनुपम ज्योतिर्मय है।]

चिदाकाशे होलो पूर्ण प्रेम चन्द्रोदय हे।
उथलिलो प्रेम सिंधु कि आनन्दमय हे॥

[अरे चिदाकाश में पूर्ण प्रेम-चन्द्रोदय हुआ है, उससे प्रेम-सिन्धु उथल-पुथल कर रहा है। अरे, यह कैसा आनन्दमय है!]

मजलो आमार मन भ्रमरा श्यामापद नील कमले।

[मेरा मन रूपी भ्रमरा श्यामा माँ के नील कमल-चरणों में निमज्जित हो गया है।]

गया गङ्गा प्रभासादि काशी कांचि केबा चाय।
काली काली काली बोले अजपा यदि फुराय॥

[काली काली काली कहते हुए यदि प्राण जाएँ तो गया, गङ्गा, प्रभास, काशी, कांचि की फिर कौन परवाह करता है?]

भवदारा भयहरा नाम नियेछि तोमार।

[संसार के भय को हरने वाली भवानी, मैंने तुम्हारा नाम ले लिया है।]

भजन शेष हुआ। रात्रि प्रायः नौ। फिर 'कथामृत' पाठ हो रहा है— 'बलराम मन्दिरे पुनर्यात्रा दिवसे श्रीरामकृष्ण'।

जगबन्धु पढ़ रहे हैं, 'इस नाली के जल और गंगाजल में जब कोई भी भेदबुद्धि रहेगी नहीं, तब जानोगे पूर्ण ज्ञान हुआ है।'

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— पूर्ण ज्ञान की अवस्था में मरना और मारना एक-सा ही लगता है। पूर्ण ज्ञानी के लिए मरने पर भी कोई नहीं मरता, और वह मारे भी तो किसी को नहीं मारता। स्वतन्त्र अभिमान नहीं। जगत् की आत्मा के संग में एक ज्ञान हो गया। तभी गीता में है— न हन्यते हन्यमाने शरीरे। (हन्यमान शरीर में आत्मा का हनन नहीं होता— गीता 2 : 20) यही बात ही खूब मन में उठ रही है इन कई दिनों से— तैंतालीस बालकों की मृत्यु पर।

पाठक *(पढ़ रहे हैं)*— केवल पाण्डित्य से क्या होगा? कुछ तपस्या दरकार। कुछ साध्य-साधना दरकार।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— तपस्या माने गुरुमुख से, शास्त्रमुख से जो कुछ सुना गया है, उसका मनन करना। तब फिर एकान्त में बैठकर उसका निदिध्यासन। जभी तो भाव परिपक्व होगा। मन को दस इन्द्रियाँ विषयों में दसों ओर खींचती हैं। उनको ईश्वरमुखी करना होगा— उल्टे पथ पर ले चलना होगा। इतने सांसारिक झंझटों के मध्य रहने से यह हो नहीं सकता। इसलिए एकान्त में बैठ कर इसका ही चिन्तन करना। मनन जब पक्का हो जाता है, तब ज्ञान-भक्ति लाभ होता है। तब आकर संसार में रहना। यह हो जाने पर फिर और अनिष्ट नहीं होता। नन्हें पौधे को बड़ा करो, तना मोटा करो। तब हाथी बाँध देने पर भी क्षति होती नहीं। इसका ही नाम है तपस्या— तना मोटा करना।

पाठक *(पढ़ रहे हैं)*— ज्ञान का प्रथम चिह्न, शान्त स्वभाव। द्वितीय, अभिमान शून्य स्वभाव। ज्ञानी के और भी कितने लक्षण हैं। साधु के पास त्यागी। कर्मस्थल पर, जैसे लैक्चर देते समय, सिंह तुल्य। स्त्री के पास रसराज, रसपण्डित।

श्री म— ठाकुर कहा करते, जिसमें ज्ञान है, उसमें अज्ञान भी है। ज्ञान-अज्ञान के पार होने पर विज्ञानी। परमहंस अवस्था। उस अवस्था में बालकवत्, उन्मादवत्, जड़वत् और पिशाचवत् हो जाता है। जैसे चैतन्यदेव, जैसे ठाकुर। एक दिन बाह्य करने बैठे हैं, सामने एक बेर मिला, झट खाने लग पड़े— बालकवत्। *(जनैक भक्त के प्रति)* सुन रहे हो, ठाकुर कह रहे हैं, 'सर्वदा स्मरण, मनन रहना उचित।' और 'ज्वलन्त विश्वास'— 'एक बार राम नाम किया है, मुझे फिर क्या पाप!'

16 जुलाई, 1923 ईसवी।

(5)

आज बेलुड़ मठ से दो जन साधु आए हैं। श्री म उनको विदा करने के उपलक्ष्य में अमहर्स्ट स्ट्रीट में बी.एम.एस. कॉलेज के सामने आ गए। लौटते हुए मछुआ बाजार के मोड़ पर ब्रजेन्द्र गंगोली की बाड़ी में जाकर दो-चार बातें करके पुन: मॉर्टन स्कूल लौट आए। अब अपराह्ण साढ़े छ:। भक्त समागम होते ही सन्ध्या हो गई। ध्यानान्ते एक भक्त गा रहे हैं :

रामकृष्ण चरणसरोजे मज[1] रे मन मधुप मोर!

गाना शेष होने पर श्री म कह रहे हैं— 'मा त्वं हि तारा' यह हो जाए।

सब भक्त गा रहे हैं :

मा त्वं हि तारा तुमि त्रिगुणधरा परात्परा।
आमि जानि ओ मा दीन दयामयी तुमि दुर्गमेते[2] दु:खहरा॥

गाना शेष हुआ। गगन विश्वास प्रश्न कर रहे हैं।

गगन *(श्री म के प्रति)*— अच्छा, निराकार साधन कैसा है?

श्री म— ठाकुर बतलाते, जैसे खूब बड़े एक तालाब में मछली तैरती है। अथवा अनन्त आकाश में पक्षी उड़ता है। परमात्मा-सागर में जीवात्मा तैरता है।

गगन— ब्राह्मसमाज में तो ऐसा ही है।

श्री म— नहीं, ठाकुर जो ऐसा बताया करते थे इसका अर्थ है। उन्होंने बतलाया ध्यान-व्यान किसलिए है? इसीलिए ना कि उनका उद्दीपन होगा। इन सब में तो कुछ नहीं। उनका उद्दीपन करने के लिए ही इन सब का प्रयोजन है। कहा करते, पत्थर को भी यदि ईश्वर मान कर ध्यान किया जाए, तो भी वे दर्शन देते हैं और बतला देते हैं, यही सब कुछ। किन्तु आन्तरिक होना चाहिए।

गगन— ध्यान करने बैठने पर मन स्थिर ही होता है कहाँ? कितनी ही बातें उठती हैं।

श्री म— वे उठेंगी क्यों नहीं? प्रवाह जो है। मैदान में दो गर्त्त हैं।

---

1 मज = लवलीन हो जा। 2 दुर्गमनीय, कठिन से कठिन।

एक का जल सूख गया, और एक में रह गया, क्यों ? इसीलिए ना, इसका फीडर है— मिट्टी के नीचे से प्रवाह आता है। किसी नदी–वदी में से जल आता रहता है। विषयों के भीतर दिन–रात रहने से मन में भी उन सब का प्रवाह आता रहता है। तभी नाना बातें उठती हैं। जभी तो ठाकुर ने हमें कहा था, घर से दूर जाकर निर्जने गोपने उनको पुकारोगे। सोच कर देखिए ना, सारा जीवन ही हम क्या करते आ रहे हैं। इसके भीतर बैठ कर उनको पुकारने पर ये सब तो मन में आएँगे ही। इसीलिए कभी–कभी निर्जन में जाना चाहिए।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— जो अर्थ के लिए उन्हें पुकारते हैं, वे भी उदार हैं। चार श्रेणी के भक्त हैं— आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। ये सब ही 'उदार' हैं। किन्तु ज्ञानी में उनका प्रकाश है अधिक। ज्ञानी माने जिसका आत्मदर्शन हुआ है अथवा जो दर्शन के लिए व्याकुल है— दृढ़ विश्वासी व्यक्ति। भगवान ने ज्ञानी को अपना स्वरूप कहा है— 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।' (गीता 7 : 18) इसीलिए ज्ञानी का संग और सेवा करना उचित। कारण, इससे ईश्वर का ही संग और सेवा करना हो जाता है। जभी मन स्थिर होता है— नाना बातें नहीं उठतीं।

''मथुरबाबू का पचास हजार रुपये का केस चला कोर्ट में। उन्होंने ठाकुर से कहा, 'बाबा, तुम माँ को यह अर्घ्य एक बार दे दीजिए तो!' ठाकुर समझ गए। बाद में एक भक्त ने कहा, 'कैसा छोटा मन था मथुरबाबू का!' ठाकुर ने कहा, 'नहीं, वैसा नहीं। मेरे देने से ही काज हो जाएगा— देखो कैसा विश्वास'!''

श्री म *(गगन के प्रति)*— अधिक काज–कर्म में फँसना नहीं। कुछ हो गया पेट के लिए तो निश्चिन्त हो गए। अब बैठे–बैठे 'राम–राम' करो। दो–एक सन्तान हो गई, तो फिर और नहीं। अब भाई–बहन की भान्ति रहें पति–पत्नी। ये सब उपाय ही ठाकुर बतलाते। देखिए ना, यदुपति बाबू ऐसे भक्त, किन्तु अधिक विषय–चिन्ता करने से पागल हो गए और उससे ही शरीर गया। इतनी सम्पत्ति है, सब ही पड़ी हुई है। जभी तो ठाकुर कहा करते, अधिक 'फसिओ न'। परिवार के लिए अन्न–वस्त्र की व्यवस्था

करके— मोटा भात, मोटा कपड़ा हो सके— ऐसी व्यवस्था करके निकल पड़े। ‘टुक’ ईश्वर-चिन्तन करो। ‘टुक’ तपस्या करो।

श्री म— ऋषियों के पास प्रश्न करने के लिए जाने पर वे कहा करते, पहले एक वर्ष तपस्या करके आओ। तपस्या न करने से प्रश्न ही ठीक होता नहीं। अपना संशय क्या है, वह भी ठीक-ठीक समझ सकता नहीं।

गगन— पिप्पलाद ऋषि ने कहा था, तपस्या करके आओ। तदुपरान्त प्रश्न करो।

श्री म— हाँ। जभी तपस्या की आवश्यकता है। निर्जन में बैठ कर ईश्वर-चिन्तन करना।

अब कथामृत-पाठ हो रहा है। जगबन्धु पढ़ रहे हैं। गोपियों को भी ब्रह्मज्ञान था। किन्तु वे ब्रह्मज्ञान चाहती नहीं थीं। वे कोई वात्सल्य भाव में, कोई सख्य भाव में, कोई मधुर भाव में, कोई दासी भाव में, ईश्वर-सम्भोग करना चाहती थीं।

श्री म— काशीपुर उद्यान में निजी देह को दिखा कर कहा था, ‘इस शरीर में ही एकजन भक्त और एकजन ईश्वर हैं। भक्त को ही कैन्सर हुआ है।’

अमृत— दो जन क्यों?

श्री म— रस आस्वादन के लिए— लीला जन्य। राधाकृष्ण— राधा कृष्ण का ही अपरांश। इसी रस-आस्वादन के लिए ही दो भाग हुए।

17 जुलाई, 1923 ईसवी।

(6)

आज ध्यानान्ते श्री म ने जगबन्धु से ‘कथामृत’ पढ़ने के लिए कहा। द्वितीय भाग, ऊनविंश खण्ड, निज ही निकाल करके दे दिया। शुकलाल के आग्रह दिखलाने पर अन्त में वे ही पढ़ने लगे। पाठ शेष होने पर श्री म बातचीत कर रहे हैं।

श्री म *(जनैक के प्रति)*— जिनका कुमार-वैराग्य, उनकी एक श्रेणी ही अलग। नैकष्य कुलीन। ऊँचा घर, अति शुद्ध भाव। नारी के संस्पर्श से यह भाव नष्ट हो जाता है, नीचा हो जाता है। जभी साधक की अवस्था में अति सावधान रहना, स्त्रियों के संग से। स्त्री जगन्माता का अंश। किन्तु साधक की अवस्था में, काल-साँप, डाकिनी, बाघिनी, दावानल कहते हैं। कब गप्प करके खा डाले! जभी सावधान। ईश्वर-दर्शन होने पर देखता है, जगन्माता। स्त्री-साधक के पक्ष में पुरुष भी वैसा ही। सावधान! इसीलिए कहा करते, जिन्होंने विवाह कर लिया है, वे दो-एक सन्तान हो जाने पर फिर एक बिछौने पर मत सोवें। देखिए, कहते हैं, भगवान-दर्शन के उपरान्त अधिक भय नहीं। माने, तब भी भय तो रहता है। इसीलिए कहा करते, बहुत सा निर्भय। जिस दिन तक शरीर रहता है, महामाया गिरा दे सकती है। तब भी यदि माँ के अंक का शिशु बन जाए— जैसे ठाकुर, तभी रक्षा। किन्तु यह अवस्था अवतार आदि को छोड़ प्राय: होती नहीं किसी की।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— साधन चाहिए। साधन बिना किए प्राय: होता नहीं। साधन माने, नाना वस्तुओं से मन को बटोर कर उनमें लगाना। इसे ही भक्ति कहते हैं। व्याकुल होकर उन्हें पुकारना चाहिए। कहा करते, भक्ति ही सार।

18 जुलाई, 1923 ईसवी।

(7)

आज हीरालाल विश्वास आए हैं। वे हैं सुगायक— रिकार्डों में उनके गाने हैं। वयस सत्तावन— श्री म के पुराने छात्र। रिपन कॉलेज में पढ़ते थे। सरकारी कर्म करते हैं, अस्वस्थ होने पर भी एक गाना गाकर सुनाया। श्री म ने भी निज गाया :

> चलो गुरु दु'जन जाई पारे, आमार ऐकला जेते भय करे।
> देह छिलो श्मशानेर समान,

गुरु एशे मन्त्र दिले करलो फूल बागान।
तार सौरभे ते आकुल करे,
योगी ऋषिर मन हरे, मुनि ऋषिर मन हरे।
चलो गुरु दु'जन जाई पारे॥

[चलो गुरु, दोनों जने पार चलें। मुझे अकेला जाते हुए डर लगता है। यह देह श्मशान के समान थी। गुरु ने आकर मन्त्र देकर फुलवाड़ी बना दिया। उसका सौरभ व्याकुल कर देता है। योगी, ऋषि, मुनियों का मन हरण करता है। चलो गुरु, दोनों जने पार चलें।]

गान शेष होने पर बातें करने लगे।

श्री म *(हीरालाल के प्रति)*— आहा, आप आए हैं अस्वस्थ शरीर से कष्ट करके। आपका किसके द्वारा आदर करूँ? उनकी वाणी ही उपहार में दी जाए। ठाकुर ने एकजन से कहा था, 'तुम्हें जप-ध्यान दरकार नहीं। गीत गा कर उनको पुकारने से ही दिखलाई देंगे।' केवल पोथी पढ़ लेने से क्या होता है? धारणा चाहिए। साधुसंग करने पर धारणा होती है। और 'गुरुवाक्ये विश्वास'। 'संसार-समुद्र में गुरुवाक्य है नाव'— एक दिन दोपहर वेला में एकजन को कही थी यह बात। गुरु माने अवतार, ईश्वर।

'कथामृत' पाठ हो रहा है— द्वितीय भाग, ऊनविंश खण्ड। श्री म बातें कर रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— 'ये ज्ञानी हैं'— केवल कहने से ही होता नहीं। उसका लक्षण है। प्रथम ईश्वर में अनुराग, द्वितीय कुलकुण्डलिनी शक्ति का जागरण। ईश्वर में प्यार नहीं, केवल बैठ कर विचार करता है, इससे होता नहीं। कुण्डलिनी जाग्रत होने पर भाव, भक्ति, प्रेम हो जाता है। ठाकुर इसको भक्तियोग बतलाया करते। निक्ति* के काँटे के योग का दृष्टान्त। ऊपर का काँटा और नीचे का काँटा समान हो जाएँगे। और दीप-शिखा, इसका दृष्टान्त। निवात निष्कम्प दीप-शिखा। मन एकदम स्थिर हो जाएगा— ईश्वर में लीन हो जाएगा— यह ही है मनुष्य का स्वरूप, normal state. भोग-वासना योग-भ्रष्ट कर देती है। एक-एक बार कहा करते,

---

* निक्ति— छोटी तराजू। काँटी। सोना आदि तोलने-जोखने वाली तराजू।

'गृहस्थ में रह रहे हो, रहो भी तो क्या? किन्तु कर्मफल ईश्वर में समर्पण कर दो।' फिर तो गृहस्थ में रहते हुए भी हो संन्यासी ही। कहा करते, 'खूब कठिन पथ।' तो भी उनकी कृपा से कोई-कोई ऐसा हो जाता है।

कोलकता; 19 जुलाई, 1923 ईसवी, बृहस्पतिवार।
19 आषाढ़, 1330 (बंगला) साल, शुक्ला षष्ठी।

अष्टादश अध्याय

राम राम श्री राम जय जय राम

(1)

मॉर्टन स्कूल। सन्ध्या के पश्चात् ध्यानान्ते श्री म गुन-गुन करके गा रहे हैं, 'राम राम श्री राम जय जय राम।' भक्तगण फर्श पर बैठे हैं। कुछ काल भजन हो जाने पर बातें कर रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— एक समय ठाकुर इसी राम-राम को करते-करते पागल की न्यायीं हो गए थे। पञ्चवटी में बैठे रोया करते। मैं ऋषिकेश में था, दस-एक वर्ष पहले की बात है। तब लछमन झूले में एक महाराष्ट्र के साधु रहा करते थे। वयस तीस वर्ष की होगी। खूब भले साधु थे। संग में नारायण-शिला रहती। रोज भोग लगाकर पाठ करके तब खाते। हमारे साथ आलाप था— जभी कभी-कभी प्रसाद भी भेज दिया करते, जैसा होता रहता है साधुओं में। मैं तब स्वर्गाश्रम में था। प्राय: एक वर्ष पश्चात् मैं जब कलकत्ता में था, अन्य एक महाराष्ट्र के साधु के मुख से सुना, वही साधु गोदावरी तीर पर कुटीर बना कर 'राम राम श्री राम जय जय राम'— यह महामन्त्र जप कर रहे हैं। तेरह वर्ष इस जप-व्रत का पालन करेंगे। तेरह अक्षर हैं न। जभी तेरह वर्ष। ऐसे साधु भी हैं, व्याकुल होकर उन्हें 'डाकते' (पुकारते) हैं।

इतने में शुकलाल, डॉक्टर, बड़े जितेन, विनय, जगबन्धु, किरण, छोटे जितेन, शची, अमृत, मनोरंजन, सुधीर, रमेश, छोटे अमूल्य, गदाधर प्रभृति आ गए।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— आप भी सब लोग कीजिए न यही नाम।

यह कह कर श्री म ने स्वयं आरम्भ कर दिया। संग–संग भक्तगण भी गा रहे हैं— 'राम राम श्री राम जय जय राम।' ध्वनि क्रमशः उच्च हो रही है। कुछ क्षण नाम होता है, फिर अल्प क्षण श्री म ईश्वरीय बातें करते हैं और फिर नाम। ऐसा दीर्घ काल तक चलता रहा। भक्तगण सब कुछ भूल कर मत्त होकर राम–नाम कर रहे हैं। मॉर्टन के द्वितल गृह में आज अपूर्व स्वर्गीय भाव–प्रवाह चल रहा है!

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर कहा करते, याग, यज्ञ, व्रत, पाठ किसी से भी कुछ नहीं होता, तपस्या से भी होता नहीं, बिना उनकी कृपा हुए। कृपा तब होती है जब देखते हैं कि सब छोड़–छाड़ कर, कष्ट करके, उनको पुकार रहा है व्याकुल होकर रो–रो कर; तब दर्शन देते हैं। कहा करते, 'आन्तरिक हो जाने पर दर्शन देंगे ही देंगे।'

उच्चकण्ठे सकल ही गा रहे हैं— 'राम राम श्री राम जय जय राम।' और फिर थम गए। अब फिर श्री म बातें कर रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— यही राम–नाम ठाकुर ने बताया था, स्वयं महादेव मणिकर्णिका (घाट) पर मुमूर्षुओं के कान में देते हैं। उन्होंने शिव को ऐसा करते हुए देखा था। *(साग्रह, भक्तों के प्रति)* गाइए, वही नाम आप लोग गाइए।

भक्तसंगे श्री म गा रहे हैं, 'राम राम श्री राम जय जय राम।' कुछ काल पर पुनराय श्री म बातें कर रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर 'ध्रुव–चरित' का अभिनय देखने गए थे। सुनीति का क्रन्दन देखकर बोले, 'यहाँ तुम लोगों से एक बात बोल देता हूँ— आन्तरिक होने पर दिखाई देंगे ही देंगे; देंगे ही देंगे।' दो–बार बोले। इसका अर्थ है, निश्चय ही दर्शन देंगे। आन्तरिक होना ही चाहिए। रो–रो कर निर्जने, गोपने— साइन बोर्ड लगा कर नहीं। कैसे, जैसे बिल्ली का बच्चा। माँ बिना कुछ जानता नहीं। खाली 'म्यूँ–म्यूँ' करता है। माँ जानती है सब। कभी भली जगह रखती है, कभी खराब। जहाँ पर रखा, वहाँ से ही 'म्यूँ–म्यूँ'। ऐसा आन्तरिक होने पर होगा। अथवा बछड़ा जैसे गाय के लिए

'डाकता' है। ऐसे डाकने पर तभी होता है। यह साधु भी इसीलिए ही कर रहे हैं, आज भी ऐसे लोग हैं। कैसी कठोर तपस्या! सब समय 'राम-राम'। ऐसे लोगों की बात स्मरण होने से मन में कितना जोर आता है! इस भारत में आज भी ऐसा हो रहा है।

श्री म भक्तों के संग पुनः उच्चकण्ठे गा रहे हैं, 'राम राम श्री राम जय जय राम'। और फिर बातें कर रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— विवेकानन्द को कहा, जिनको वेद में अखण्ड सच्चिदानन्द कहते हैं, मैं उन्हें ही 'माँ-माँ' कहता हूँ। उन्हें ही 'राम, राम' कहता हूँ। विवेकानन्द प्रथम ज्ञानमार्गी थे कि ना।

श्री म भक्तों के संग फिर गा रहे हैं— 'राम राम श्री राम जय जय राम।' और फिर उपदेश दे रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— अध्यात्म (रामायण) में है, शरभंग ऋषि और सिद्ध शबरी श्रमणा की कथा। राम के सम्मुख उन्होंने देहत्याग किया था। दोनों जन दो कुटीरों में बैठे दिवानिशि 'राम-राम' करते हैं। शबरी ने ऋषियों की सेवा की थी, जभी उनके ऊपर ऋषियों की कृपा हुई। जभी 'राम, राम' यही महामन्त्र जप करती रही। बनवास-काल में राम उसी आश्रम में जा पहुँचे। राम की दोनों ने पूजा की। चले जा रहे हैं, तब शरभंग बोले, 'राम, थोड़ा ठहरो। तुम्हारे सामने ही यह वृद्ध देह त्याग करता हूँ।' श्रमणा व्याधकन्या ने राम को फल-मूल खिलाए। रोज़ राम के लिए फल तोड़ कर रखती थी। ताज़ा था सारा फल। उन्होंने भी अन्त में राम के सामने देह रख दी। वे महाराष्ट्र के साधु भी ऐसा ही कर रहे हैं। सुनते हैं, ईश्वर-जन्य अनशन से प्राण-त्याग करता है कोई-कोई। महेश वीणावादक ने वही किया था। इन्होंने वीणा से ठाकुर को गाना सुनाया था। हम उन्हें देखने गए थे, काशी में रहा करते थे। वीणा का दाम था दो हजार रुपया। उसी वीणा से ठाकुर को गाना सुनाया था, वही रागिणी हमें भी सुनाई— कान्हड़ा।

डॉक्टर— जी, इससे अपमृत्यु नहीं होती?

श्री म— नहीं। ज्ञान होने पर नहीं होती। देवघर जाकर एकजन ने

प्राणत्याग किया था। ये (गोपालसेन) ठाकुर के पास आया करते। घर वालों के संग झगड़ा करके आत्महत्या कर ली। ठाकुर से पूछने पर वे कहने लगे, 'भगवान-दर्शन हो जाने पर दोष नहीं।' उन्होंने भगवान को अर्थात् ठाकुर को देखा हुआ था कि ना, तभी दोष नहीं।

(भक्तों के प्रति)— "गाइए, गाइए आप लोग।" यह कह कर श्री म मत्त होकर भक्तों के संग गाने लगे— 'राम राम श्री राम जय जय राम।'

ईश्वरीय बात, तब फिर राम-नाम— उपदेश और अभ्यास एक संग अनेक क्षण चलता रहा। इस मणि-काञ्चन संयोग ने स्थान और काल भुला दिया। भक्तहृदय में आनन्द-प्रवाह संचारित हुआ। श्री म पुनराय उपदेश दे रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— तपस्या चाहिए। वह नहीं तो होता नहीं। तपस्या करने से उनकी कृपा होती है। एक मिस्त्री कल या परसों यहाँ पर काम कर रहा था। मुझसे कहने लगा, 'बाबा जी, आप तो बूढ़े हो गए हैं। अब तपस्या करने जाओ।'

"आहा, कैसी बात! भारत के लोग कहते हैं यही बात— सामान्य मिस्त्री के मुख से ज्ञान की बात। भारत के mass (जनसाधारण) के भीतर ऐसा गम्भीर ज्ञान! भारत का यही स्वरूप। यही है जीवनी-शक्ति भारत की। इसीलिए आज भी भारत है जीवित। कितने राजा आए, कितना अत्याचार हुआ। भारत को ध्वंस कर सके नहीं। उसके हृदय में प्रवेश कर सके नहीं। यह शक्ति है ही नहीं, आक्रमणकारियों में। तभी धन-दौलत 'लाऊ कुमड़ा' लेकर चले जाते हैं। भारत के परम-धन का सन्धान मिलता नहीं। यह धन रहता है भारतवासी के हृदय में। ईश्वर सत्य, संसार अनित्य। ईश्वर-लाभ आगे, संसार परे।

"देखिए, सामान्य मिस्त्री के मुख से कैसा ज्ञान! कहाँ पाएँगे ऐसी वस्तु? उस देश में (पश्चिम में) यह मिलेगा नहीं। वे सारे ड्रिंकि-फ्रिंकिं लिए रहते हैं। क्या बात सुनाई ठाकुर ने उस मिस्त्री के मुख द्वारा! ठाकुर ने उसे भेज दिया हमारे चैतन्य के लिए। तब भी क्या चैतन्य होता है? मैंने पूछा,

साधुसंग हुआ कि नहीं। कहने लगा, 'मेरे गुरु जी ज्ञानी हैं।'

"ठाकुर कहा करते, सिप्पी स्वाति-नक्षत्र के जल के लिए समुद्र की surface (ऊपरी तल) पर तैरती रहती है। ज्यों ही जल पड़ा, फिर ऊपर नहीं। पेट में oyster (मुक्ता) होगा, तभी गम्भीर जल में डूब गई। काशी में, सुना जाता है, इस प्रकार की एक घटना हुई थी। एकजन अन्य एकजन* को महापुरुष के रूप में जानता था। नित्य गङ्गा-स्नान करते थे दोनों ही। एक दिन महापुरुष एक नाम करते-करते घाट पर चढ़ रहे थे। दूसरे व्यक्ति ने वही नाम सुना, लिया और एकदम निर्जन में भाग गया। वही नाम जप और वही वस्तु ध्यान करने लगा। गम्भीर तपस्या में मग्न हो गया। ऐसा विश्वास और ऐसा मन का जोर! दीक्षा-वीक्षा की दरकार क्या? ऐसा आग्रह चाहिए— एक बार सुनकर एक दम दौड़। जभी ठाकुर कहा करते, 'जो खेलता है, वह कानी कौड़ी से खेलता है।' बढ़ई ने मुझ को चेतन कर दिया।"

श्री म भावोन्मत्त होकर नाम करने लगे। भक्तगण भी संग-संग गाने लगे, 'राम राम श्री राम जय जय राम'। क्षण काल पर फिर उपदेश।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— सब छोड़ दूर जाकर तपस्या करने से वे दिखलाई देते हैं। व्याकुल होकर निर्जने-गोपने रो-रो कर डाकने से दिखलाई देते हैं। ठाकुर पञ्चवटी में मिट्टी के ढेले पर सिर रखकर कितनी ही रातें काट दिया करते। क्रन्दन सुनकर कितने लोग जमा हो जाया करते और प्रबोध दिया करते— 'रोओ मत, तुम पाओगे, तुम्हारा होगा।'

(जनैक के प्रति)— स्नेह काटने का नाम ही है संसार-त्याग। संसार का एक नाम है स्नेह। ईशु ने एकजन को कहा था, 'come and follow me' घर-बार छोड़ कर मेरे संग चले आओ। स्नेह-बन्धन छोड़ कर चले आना, इसका ही नाम संन्यास— सर्वस्व त्याग। जिसने यह आस्वाद एक बार पा लिया, वह क्या और घर में रह सकता है, या कुछ और कर ही सकता है? '...when he had found one pearl of great price, he went and sold all that he had, and bought it.' (St. Matthew 13 : 46) माने,

---

* रामानन्द और कबीर

सर्वस्व त्याग करके भगवान के पादपद्म में आश्रय ले लिया है— संन्यास हो गया है।''

कुछ भक्तों ने प्रवेश किया। कथा-प्रवाह क्षणकाल बन्द रहा। पुनराय श्री म कथा कह रहे हैं।

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— शशधर पण्डित को कहा था, 'गाछे ना उठतेई एक कांदि', अर्थात् पेड़ पर बिना चढ़े ही एक गुच्छा! पहले तपस्या करो, कुछ संचय हो जाए, फिर लैक्चर देना। पहले ईश्वर या देश-उद्धार, वक्तृता?

कथा कहते-कहते प्रेमोन्मत्त होकर गाने लगे :

आपनाते आपनि थेको मन जेओ नाको कारु घरे।
जा चाबि ता बशे पाबि, खोंज निज अन्तःपुरे॥
परमधन ओइ परशमणि, जा चाबि ता दिते पारे॥
कतो मणि पड़े आछे चिंतामणिर नाच दुआरे॥

[हे मन, अपने आप में ही रहो। मत जाओ किसी के घर में। जो चाहोगे, बैठे-बैठे पाओगे। अपने अन्तःपुर में खोजो। परमधन तो वही पारसमणि है, जो चाहोगे वही वह दे सकती है। कितनी मणियाँ पड़ी हैं उस चिन्तामणि के नाच द्वार में।]

आमि अभय पदे प्राण संपेछि।
आर कि यमेर भय रेखेछि॥
काली नाम कल्पतरु हृदये रोपण करेछि।
ए देह बेचे भवेर हाटे दुर्गानाम किने एनेछि॥
देहेर मध्ये सुजन जे जन, ताँर घरेते घर करेछि।
एबार शमन एले हृदय खुले देखाबो भेवे रेखेछि॥
सारात्सार तारा नाम, आपन शिखाग्रे बेंधेछि।
रामप्रसाद बोले दुर्गा बोले यात्रा करे बोसे आछि॥

[मैंने अभय पद में प्राण सौंप दिया है। मुझे अब यम का भय क्या? कालीनाम कल्पतरु को हृदय में रोपण कर लिया है। इस देह को भव-हाट में बेच कर दुर्गा-नाम खरीद लाया हूँ। देह के मध्य जो सुजन है, उसके घर में घर कर लिया है। अब की बार यमराज के आने पर हृदय खोल कर दिखा दूँगा, यह निश्चय कर रखा

है। मैंने सारात्सार तारा नाम अपनी चोटी में बाँध लिया है। रामप्रसाद कहता है, दुर्गा बोल कर मैं यात्रा के लिए तैयार बैठा हूँ।]

श्री म— 'देह बेचे भवेर हाटे दुर्गा नाम किने एनेछि'— सब छोड़ कर ईश्वर को सार कर लिया है। दोनों तरफ रखी जाती नहीं। ईश्वर को चाहने पर संसार छोड़ना होता है। देह-धारण करने का नाम ही है संसार। जभी 'देह बेचे' अर्थात् संसार त्याग करके, भोग छोड़ कर— 'दुर्गा नाम खरीद लिया है'— 'bought one pearl of great price', अर्थात् श्री भगवान के शरणापन्न हुआ हूँ। प्रथम दोनों दिशाएँ रखकर चलता है, अन्त में और फिर कर सकता नहीं। मद अधिक पी लेने पर फिर होश रहता नहीं। 'देहेर मध्ये सुजन जे जन ताँर घरेते घर करेछि', (इस देह में जो 'सुजन' है, उसी ने घर में अपना घर कर लिया है।) माने ईश्वर के दर्शन किए हैं। ईश्वर-दर्शन हो जाने पर फिर जन्म-मृत्यु के अधीन होना पड़ता नहीं। तभी 'दुर्गा' बोल कर यात्रा के लिए तैयार बैठा हुआ हूँ। शरीर चले जाने पर एकदम निर्वाण, मुक्ति।

20 जुलाई, 1923 ईसवी।

(2)

आज रथ की पुनर्यात्रा। सन्ध्या होने पर श्री म नगर-परिक्रमा करने के लिए बाहर निकले। संग में जगबन्धु, छोटे रमेश, शची और शान्ति। वैद्युतिक आलोक से कलकत्ता का राजपथ आलोकित। श्री म आनन्दपूर्ण होकर मेछुआ बाजार में से चले जा रहे हैं। दाएँ हाथ नवविधान ब्राह्मसमाज मन्दिर देखकर हाथ जोड़कर प्रणाम कर रहे हैं। आंगन में प्रवेश करके बोले, ''इसी मन्दिर में ठाकुर बहु बार आए थे। ब्राह्मसमाज के भीतर अपना भाव ढुका दिया था।''

पश्चिम दिशा में कुछ दूर आगे बढ़ कर बोले, ''यह देखो, राजा दिगम्बर मित्र की बाड़ी। प्रथम-प्रथम ठाकुर इसी बाड़ी में पूजा किया करते। मैंने तब तक उन्हें देखा नहीं था।''

और थोड़ी दूर अग्रसर होकर दाएँ हाथ की एक बाड़ी दिखा कर

बतलाया, ''यह बाड़ी ईशान मुखर्जी की है। यहाँ भी ठाकुर आए थे। मैं ठाकुर के संग इस बाड़ी में आया था, सोजा रथ* के दिन।

''आज मैंने आप लोगों को तीन स्थान दिखा दिए। ईशानबाबू की बाड़ी भी यदि उनके ही किसी के हाथ में रहती तो अच्छा होता। इसी बाड़ी में मैं पहले अनेक बार आया हूँ। ईशानबाबू का लड़का श्रीश मेरे साथ पढ़ा करता था। फिर डिस्ट्रिक्ट जज हो गया। इतने वर्ष हो गए, किन्तु लगता है, जैसे उस दिन की ही तो बात है।''

श्री म मॉर्टन स्कूल में लौट आए। दो तल के कमरे में भक्तों के संग बैठे हैं। नित्य के भक्तगण आए हुए हैं। भक्तों को गाना गाने के लिए कहकर निज ही गाने लगे, 'किंकरे करुणामयी...।' गान शेष होने पर बोल रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर इसी गाने को गाया करते इसी लाइन के लिए, 'घूम नाई तार धनेर लागि' (निद्रा नहीं उसे धन के लिए)। व्याकुलता का गाना। कहते, 'पास के कमरे में धन रखा है, चोर उसमें घुस नहीं सकता। वह जैसा व्याकुल होता है उस धन के लिए, वैसा ही व्याकुल होने पर ईश्वर-दर्शन होता है।' अवतार के आने से व्याकुलता बढ़ जाती है लोगों की। व्याकुलता बढ़ाने के लिए आते हैं वे। आकर कहते हैं, 'निर्जने-गोपने व्याकुल होकर रो-रो कर पुकारो, वे दिखाई देंगे।' अवतार के आने से पहले लोग गङ्गा-स्नान, जप, पुरश्चरण विधिवत् सब करते रहते हैं। वे आकर कहते हैं, 'इससे होगा नहीं। आगे बढ़ो, व्याकुल होकर काँदो (रोओ)।'

श्री म मत्त होकर गाना गाने लगे :

एबार आमि भालो भेवेछि,
भालो भाविर काछे भाव शिखेछि।
जे देशे रजनी नाई मा, से देशेर एक लोक पेयेछि,
आमि किबा दिबा किबा सन्ध्या सन्ध्यारे बन्ध्या करेछि।

[इस बार मैंने निश्चय कर लिया है, एक शुद्ध भाव वाले के पास से भाव सीख लिया है। जिस देश में रजनी नहीं है माँ, उस देश का एक व्यक्ति मैंने पा लिया है। मैंने कभी दिन और कभी सन्ध्या करने वाली सन्ध्या को बाँझ बना दिया है।

---

* रथ-यात्रा का पहला दिन।

(दिन-रात का मुझे होश नहीं है।)]

सुरापान करि ना आमि सुधा खाई जय काली बोले।
मन माताले माताल करे, मद माताले माताल बोले॥

[मैं सुरापान नहीं करता, 'जय काली' बोलकर अमृत पीता हूँ। मेरा मन मुझे मतवाला करता है। किन्तु मद-मतवाला कहता है, मैं मद से मतवाला हूँ।]

श्यामा मा कि कोल कोरेछे, काली मा कि कोल कोरेछे।
चौद्द पोया कलेर भितरि कतो रंग देखातेछे॥

[श्यामा माँ ने कैसी कल रची है! काली माँ ने कैसी कल रची है। चौदह पाव (साढ़े तीन हाथ) की कल के भीतर कितने खेल दिखाती है।]

गाना शेष हो जाने पर छोटे ललित को गाने के लिए कह रहे हैं। छोटे ललित गा रहे हैं—

गाओ रे सघने वीणे हरिगुण गान।....

बाजे श्यामेर मोहन वेणु।....

यह गाना भी शेष हुआ।

श्री म *(अमृत के प्रति)*— हाँ अमृतबाबू, आप गाइए। एकजन को गाना गाने के लिए कहा गया, (वह) खूब लजीला (था)। उसने कहा, 'बत्ती बुझा दो।' *(सब का हास्य)* किन्तु यहाँ वैसा नहीं, प्रकाश तो एकदम ही नहीं। *(सब का उच्च हास्य)*। यहाँ गाया जा सकता है। अजी, देखता हूँ, वे तो घूँघट ही खोलने के लिए राजी नहीं हैं। तो फिर और क्या करें? आपका ही हो जाए। ललित फिर गा रहे हैं :

'महादेव परमयोगिन् महतानन्दे मगन!'

(3)

आज सन्ध्या के ध्यान के उपरान्त श्री म ने मोहन को एक गाना गाने को कहा। मोहन ने गाया, 'सुन्दर तोमारि नाम दीनशरण हे'। शेष होने पर श्री म ने फिर स्वयं भी वही गाया। अन्य एकजन गा रहे हैं, 'डुब डुब डुब रूप-सागरे आमार मन।' (ओ मेरे मन, भगवान के रूप सागर में डूब जा, डूब

जा।) इस गाने से श्री म का भावसिन्धु मानो उथल पड़ा है। वे मत्त होकर अविराम गा रहे हैं :

पाड़ार लोके गोल करे बोले आमाय गौरकलंकिनी।
एकि कयबार कथा, कइबो कोथा लाजे मरि ओ प्राण सजनी॥

[मोहल्ले वाले शोर करके मुझे गौरकलंकिनी कहते हैं। यह क्या कहने की बात है? कहूँ भी तो कहाँ, ओ मेरी प्राण सजनी, मैं तो लाज के मारे मरी जा रही हूँ।]

मोहन— जी, 'कयबार' कि 'कोइबार'।

श्री म— ना, 'कयबार'। ठाकुर वैसा ही गाया करते।

मोहन— यह क्या भूल नहीं?

श्री म— हाँ। तुम शुद्ध करके गाओ। हमारी तो है 'His Master's Voice' (गुरुवाणी)।

गान— आमि साधन भजनहीन। (गौर–लीला का गाना)

श्री म— इसी गाने को एक भक्त ने पञ्चवटी में अकेले गाया था। सुनकर ठाकुर खड़े–खड़े रोने लगे।

सुरधुनीर तीरे गौर बो'ले के जाय रे।
बूझि प्रेमदाता निताई एसेछे रे॥

[सुरधनी के तीर पर गौर, गौर कहता हुआ कौन जा रहा है? जान पड़ता है, प्रेम–दाता निताई आया है।]

श्री म— ठाकुर कमरे के भीतर पायचारी करते हुए इसी गाने को गाया करते :

गौर निताई तोमरा दु'भाई परमदयाल, हे प्रभो!

श्री म— इसे ही सर्वदा गाया करते। 'चण्डी के गीत' जो गाते हैं, उनको यह गाना भी सिखा दिया था। अब सुना जाता है, वे चण्डी के गाने के संग इस को भी गाते हैं।

हरि बोले आमार गौर नाचे, श्रीवास–अंगने;
नाचे संकीर्तने भक्तसंगे।

[श्रीवास के आँगन में भक्तों के संग संकीर्त्तन करते हुए 'हरि नाम' बोल कर मेरे

गौरांग नाच रहे हैं।]

गौर प्रेमेर ढेउ लेगेछे गाय,
तार हुंकारे पाषण्ड दलन, ए ब्रह्माण्ड तलिये जाय।
मने करि कूले दाँड़िये रई,
गौरचाँदेर प्रेमकुमीरे गिलेछे गो शोई,
एमन व्यथार व्यथी के आर आछे;
आमाय हात धरे टेने तुलाय॥

[गौरांग के प्रेम की लहर देह को छू गई है। इस हुंकार से पाखण्डियों का दलन होता है और लगता है कि ब्रह्माण्ड रसातल को जा रहा है। हे सखि, मेरा मन करता है कि मैं किनारे पर ही खड़ी रहूँ, गौर चन्द्र के प्रेम रूपी मगरमच्छ ने मुझे निगल लिया है। अब इस व्यथा से छुटकारा देने वाला ऐसा और कौन है जो हाथ पकड़ कर मुझे ऊपर उठा ले।]

तारे कोइ पेलाम शोइ, हलाम जार जन्ये पागल।
ब्रह्मा पागल विष्णु पागल आर पागल शिव,
तिन पागले युक्ति करे भांगलो नवद्वीप॥

आर एक पागल देखे एलाम वृन्दावनेर माझे।
राई के राजा शाजाइये आपनि कोटाल साजे॥

आर एक पागल देखे एलाम नवद्वीपेर पथे।
राधाप्रेम सुधा बोले करोया किश्ती हाते॥

[अरी सखी, उसको कहाँ पा सकी जिसके लिए मैं पागल हुई हूँ। ब्रह्मा पागल, विष्णु पागल और एक पागल शिव हैं। इन तीनों पागलों ने युक्ति करके नवद्वीप का नाश कर दिया है। और एक पागल को देख कर आई हूँ। वृन्दावन के बीच जो राधा को राजा बनाकर स्वयं कोतवाल बनता है। और एक पागल नवद्वीप के पथ पर देख कर आई हूँ जिसके हाथ में कड़ुआ कमण्डल है और कहता है राधा का प्रेम ही सुधा है।]

छोटे अमूल्य हैं सुकण्ठ। श्री म के कहने पर उन्होंने एक गाना कृष्णलीला का और एक गौरांग का गाया। पुनराय श्री म गा रहे हैं :

के कानाइ नाम घुचाले तोर, ब्रजेर माखन चोर।
कोथाय रे तोर पीत धड़ा, कोथाय तोर मोहन चूड़ा॥
होये नेड़ा मूड़ा, धरेछो कौपीन डोर।

अश्रु कम्प स्वरभंग, पुलके पूरित अंग,
संगे लये सांगोपांग हरिनामे होये विभोर॥

[अरे ब्रज के माखन चोर! तेरा कन्हाई नाम किसने बिगाड़ दिया है? तेरा पीला वस्त्र कहाँ है? और कहाँ है तेरा मोहन चूड़ा? सिर मुंडा कर, कौपीन डोरी पहन कर, अश्रु-कम्प स्वरभंग से पुलकित अंग हुए, संग सांगोपांग लिए अब तुम हरिनाम में विभोर हो गए हो।]

सब गा रहे हैं :

बाजे श्यामेर मोहन बेणु, बेणुरव सुने जुड़ालो तनु।
जे बने बाजिछे सेई बने जाई, ए छार जीवने आर काज नाई॥
पंचमेते पाखी धरियाछे गान, पवन दाँड़ाये शुनितेछे तान।
जाहार नामेते जमुना उजान, हाम्बा हाम्बा रबे डाकितो धेनु॥

[श्याम की मोहनी बंसी बज रही है। बांसुरी के स्वर से तन शीतल हो रहा है। री सखी, जिस वन में यह बज रही है उसी वन में चलते हैं। इसे छोड़ जीवन में और कोई काज नहीं है। पञ्चम स्वर में पक्षी गा रहे हैं, पवन स्थिर होकर तान सुन रहा है। जिसके नाम से जमुना उजान पथ पर चलने लगती थी और गौवें 'हम्बा-हम्बा' पुकारने लगती थीं, यह उसी की बाँसुरी बज रही है।]

25 जुलाई, 1923 ईसवी।

(4)

आज सारा दिन वृष्टि होती रही। श्री म ठाकुरबाड़ी जाकर अटक गए थे वृष्टि के कारण। अभी-अभी मॉर्टन स्कूल आए हैं। अब रात्रि आठ। बहु भक्त प्रतीक्षा में बैठे हैं। बेलुड़ मठ के स्वामी गिरिजानन्द जी आए हुए हैं।

श्री म *(गिरिजानन्द जी के प्रति)*— देखो, विषय कैसी भीषण चीज है! मनुष्य की सत्ता ही नाश कर देती है। यदुपति बाबू, विषय के फंदे में पड़ गए, वही भावते-भावते पागल हुए, अन्त में प्राण भी गया।

(सहास्य)— एकजन स्त्री भक्त को ठाकुर ने सिखला दिया था, 'तुई बरं बोलिस, तोर बापके, आमार टाका नाड़ाचाड़ा करते भालो लागे।' (तू

बल्कि अपने बाप को कह दे कि मुझे रुपयों से खेलना अच्छा लगता है।) उससे उसके मन में appeal (करुणा) उदय होगी। बाप के पास रुपया जमा था। बाप की थी मारने की इच्छा।

''क्यों सिखलाई थी यह बात? वे लोग उसी आनन्द को लिए ही रहते हैं कि ना, तभी। और ठाकुर का निज का क्या हुआ करता? दस हजार रुपया उन्हें देना चाहता था एकजन। सुनते ही मूर्छित हो गए थे। मैंने अपने कानों से सुना है, ठाकुर कह रहे हैं, 'मुझे मूर्छा हो गई थी।' जब मूर्छा भंग हुई तब बोला था, न भाई, माँ ने मुझे ऐसी अवस्था में रखा ही नहीं। देखिए, इतनी ऊँची अवस्था, किन्तु निज credit (वाह-वाह) लेते नहीं! जभी वे कह रहे हैं, 'माँ ने मुझे उस अवस्था में रखा ही नहीं।' ''

श्री म इन्हीं बातों की कई बार आवृत्ति कर रहे हैं; एक-एक भक्त को लक्ष्य करके।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— देखिए, कैसा व्यापार! हम क्या लिए हुए हैं? और ठाकुर की है कैसी अवस्था! रुपये के नाम ही से एकदम मूर्छा। यदुपति बाबू, इतने बड़े भक्त, उनकी ही यह अवस्था, अन्य की तो बात ही क्या? व्यवसाय में बहुत धन नष्ट हो गया, वही चिन्ता कर-करके दिमाग बिगड़ गया। उससे ही देह गई। जभी तो ठाकुर कहा करते, 'ईश्वर जिन्हें प्यार करते हैं, उनके लिए केवल दाल-भात का ही प्रबन्ध रहता है। इससे अधिक नहीं। वह होने से भूल जो जाएँगे उन्हें।'

श्री म की दृष्टि अन्तरे निबद्ध। चक्षु स्थिर, उन्मना भाव।

श्री म *(स्वगत)*— कामिनी-काञ्चन लेकर पागल मनुष्य, और ठाकुर पागल ईश्वर जन्य। धन लेकर खेलना ('नाड़ाचाड़ा' करना) पसन्द करते हैं मनुष्य, धन न मिले तो मनुष्य पागल। और धन का नाम सुन कर उनको मूर्छा! स्पर्श करना तो दूर की बात! डॉक्टर ने हाथ को रुपया स्पर्श करवाया था, झट हाथ मुड़कर आड़ष्ट हो गया— जैसे पत्थर। और दम बन्द!

श्री म कुछ काल मौन रहे, पुनः बातें करने लगे।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— Imitation of Christ (इमिटेशन ऑफ

क्राइस्ट) में है— avoid woman, rich man and young man (कामिनी, धनी और युवक— इनका संग त्याज्य)।

''ठाकुर ने कहा, 'हजार भक्त होने पर भी स्त्रियों के संग अधिक बातें करोगे नहीं।' एकजन ने एक स्त्री भक्त के संग तीन घण्टे बातें कीं। दूसरे एकजन ने उससे पूछा, 'अच्छा, यह व्यक्ति यदि मूँछ वाला पुरुषभक्त होता, तब भी क्या तीन घण्टे बातें करता।' उसने उत्तर दिया, 'नहीं।' ऐसा है आकर्षण! जभी avoid woman (स्त्री-संग त्याज्य)।

''Rich man (धनी एकजन) आता है, हाथ में घड़ी, फिटफाट बाबू। 'आइए महाशय, बैठिए महाशय,' कहकर उसका आदर किया जाता है। और फिर जब यही व्यक्ति ही एक टूटी हुई छतरी, फटी-मैली धोती, कुरता पहन कर आता है, बुरे दिन आ जाने से; तो क्या फिर उसका उसी प्रकार आदर किया जाता है? Rich man (धनी) का प्यार काञ्चन-प्यार है; तभी avoid rich man (धनी त्याज्य)। और young man (उठन्त युवक) अधिक बातें कहता है। बोलना है कुछ, बोलता है कुछ, वाचाल। नालियों की बातें करते हुए कह डालेगा, एक हिलसा मछली देखी थी नाली में। *(सब का हास्य)*। संयम नहीं वाणी में, अस्थिर चित्त। इसीलिए avoid young man (उठन्त युवक त्याज्य)।

श्री म *(जनैक नवागत के प्रति)*— मारवाड़ी भक्त ने दस हजार रुपया हृदय मुखर्जी के पास रखना चाहा, तब भी माने नहीं ठाकुर। क्यों? उससे काज बढ़ जाता है। हो सकता है, अनुचित खर्च होता देखकर प्रतिवाद करना पड़े। और भले काम में खर्च होता न देखकर उसे करने के लिए बोलना पड़े।

आज श्री म के भीतर एक प्रच्छन्न उच्च भाव-प्रवाह चल रहा है। वह मानो दिखाई दे रहा है। कभी उसका किंचित् स्फुरण और कभी आवरण। पर्वत के भीतर जैसे प्रस्रवण-प्रवाह, कहीं स्फुरण, कहीं आवरण; तभी तो बातें हैं बाहर से असंलग्न। श्री म कह रहे हैं ''और फिर ठाकुर कहा करते, 'एक कुछ है (ठाकुर के भीतर); और फिर बातें भी करता है जो'!''

26 जुलाई, 1923 ईसवी।

(5)

आज श्रावणी पूर्णिमा। प्रातः से ही वृष्टि; तथापि भक्तगण पूर्ववत् आए हैं। सन्ध्या ध्यानान्ते श्री म के आदेश से माखन गाना गा रहे हैं।

पाबि ना क्षेपा मायेर क्षेपार मतो ना क्षेपिले,
सेयान पागल बुँचकि बगल काज होबे ना ओरूप होले॥

[अरे पागल की भान्ति पागल हुए बिना तू पागल माँ को नहीं पा सकेगा। बगल में पोटली दबा कर बनावटी पागल बनने से तेरा काम नहीं होगा।]

जय शिव शंकर हर त्रिपुरारि, पाशी पशुपति पिनाकधारी।

गाना समाप्त हुआ। नाग महाशय के भक्त पार्वती मित्र की बातें एकजन भक्त बतला रहे हैं। खूब भले व्यक्ति। सर्वदा पूजा-अर्चा लिए रहते हैं। एक विलायती ऑफिस के बड़े बाबू हैं। नाग महाशय का वार्षिक उत्सव किया करते हैं। ये सब बातें सुनकर श्री म ने अन्तेवासी से कहा, ''एक दिन वहाँ जाकर सब खबर लेकर आना होगा।''

भक्तों के दलादली* की बातें हो रही हैं।

श्री म *(सब के प्रति)*— किन्तु ठाकुर कहा करते केशव आदि भक्तों को, 'अच्छा, तुम बिना देखे शिष्य क्यों करते हो? अन्तर्दृष्टि द्वारा देख कर तब करना उचित। वह न हो तो पीछे लाठालाठी होती है।' अपनी बातों में कहते, 'आमार गुरु, कर्त्ता, बाबा— होबार जो नाइ। आमि खाइ-दाइ आछि। माँ जानेन सब।' ('मैं गुरु, कर्त्ता, बाबा हो ही नहीं सकता। मैं खाता-पीता हूँ। माँ जानती हैं सब।') एक दिन कहा, 'मैं को खोजने गया, देखता हूँ माँ ही सब में जड़ी हुई बैठी हैं। निज कोई भी credit (प्रशंसा) लेंगे नहीं। दूसरे लोग क्या करते हैं? जरा सा कुछ कर लिया किसी ने, झट कहते हैं, मेरे कहने से किया था, इसलिए हुआ— claim (दावा) करते हैं। ठाकुर का वह नहीं। इतना किया, किन्तु claim (दावा) नहीं। तनिक से ही अन्य लोग गुरुगिरी, दल-वल कितना कुछ कर बैठते हैं! ठाकुर थे माँ की गोद के शिशु।

श्री म *(जनैक एटोर्नी के प्रति)*— सब ही लोग क्या झट से सब कुछ

* समाज में दो दलों का विरोध, जिसमें दूसरे दल वालों के यहाँ भोजन भी नहीं करते।

छोड़ सकते हैं? जरा सोचो, जो गुरुगिरी कर रहे हैं, संसार में नाना विषय लिए रहते हैं; वे कैसे उसे झट से छोड़ देंगे? तभी तो कभी-कभी कहा करते, 'बोलने से ही क्या कर पाता है?' इसके भीतर रहते हुए ही जितना थोड़ा सा भी करवाया जा सकता है, अवतार उसी की चेष्टा करते हैं। नौका डूब रही है तूफान में। माँझी कहता है, 'हिलो मत, ठीक होकर बैठे रहो, जहाँ पर भी हो। मैं ठीक ले जाऊँगा।' ज्यों ही कोई एक उठा, त्यों ही चीत्कार करके बोल उठा, 'बैठो, बैठो।' क्यों? क्योंकि नहीं तो सब लोग ही जो डूब कर मर जाएँगे। और माँझी भी गिर जाएगा। ठाकुर पक्के माँझी। जभी कहा करते 'संसार-फंसार कर लो— खा लो, पहन लो, और जो कुछ कर लो।' किन्तु उसके ही भीतर और भी कुछ (ईश्वरीय भाव) ढुकाने की (प्रवेश करवाने की) चेष्टा किया करते। उसके ढुकने पर तो अपने-आप ही संसार अलग हो जाएगा। भीतर खोखला हो जाएगा। एकजन कितना कष्ट करके एक दल करता है, फिर एक बात से छोड़े भी कैसे? तभी तो उसके भीतर रखकर ही क्रमश: भीतर खोखला कर लेते।

श्री म *(जनैक युवक के प्रति)*— केशवसेन जब विलायत होकर आए, मैं तब स्कूल में पढ़ा करता। दुमंजिले पर चढ़कर देखा करता, 'मेल-लैटर्ज़'— विलायती डाक लिख रहे हैं; कितना कुछ कर रहे हैं! अंग्रेज़ी, बंगाली पत्रिका लिखना, ब्राह्म समाज करना, ब्याह-श्याह कितना ही कुछ लेकर व्यस्त हैं। इसके पाँच वर्ष पीछे ठाकुर के संग मेल हुआ। तब उनके sermon (धर्म वक्तृता) में 'आदेश पाना', 'ईश्वर का बातें करना' ये सब बातें सुना करता। (उनके) दल के अनेकों ने ही उन्हें पागल समझ कर छोड़ दिया। प्राय: चौदह आना साधारण ब्राह्मसमाज में चले गए। ठाकुर के संग मिलन होने के बाद ही बदल गए। ठाकुर को वे पहचान पाए थे। नहीं तो क्या ठाकुर दौड़े-दौड़े उनके पास चले आते?

''इसके सात वर्ष पीछे मैं मिला ठाकुर से। तब समझ गया क्यों केशवसेन के sermon (वक्तृता) इतने अच्छे लगा करते थे— किस fountain (स्रोत) से ये सब बातें आती थीं। ये सातों वर्ष ब्राह्मसमाज में जाता रहा। इसीलिए मैक्समूलर ने कहा था, 'केसवसेन के हठात् परिवर्तन का कारण

क्या? हठात् क्यों मत बदल लिया है? प्रतीत होता है अन्य एक force (शक्ति) उनके ऊपर act (काज) कर रही है।' तब तक भी मैक्समूलर ठाकुर की बात जान नहीं पाए थे। पीछे जब उनका जीवन-चरित (life) सुना, तब समझ पाए थे कि क्यों बदल गए थे।

'' 'चिड़ा-भेजा बुद्धिते ताँके पाओया जाय ना।' (हल्की बुद्धि से उन्हें पाया जाता नहीं।) इसका काम नहीं। 'खासा' (शुद्ध) बुद्धि आवश्यक है। और यह भी ठीक है कि सब को ही एक वस्तु अच्छी नहीं लगती। कोई संसार को प्यार करता है। कोई करता है ईश्वर को प्यार— और सब छोड़कर चला जाता है। सुना है, झरिया में एक साधु मैदान में कुटी बनाकर उनके चिन्तन में निमग्न हैं। कभी कुटी में रहते हैं, कभी गुहा में।''

27 जुलाई, 1923 ईसवी।

(6)

आज कलकत्ता जलमय। बहु राजपथ सम्पूर्ण जल-मग्न। यान-वाहन प्राय: सब बन्द। अविश्रान्त वृष्टि के फल से यह परिस्थिति। किन्तु इस दैव दुर्विपाक में भी श्रीरामकृष्ण-कमल-मधु-लोभी भक्त-अलिकुल भण्डारी श्री म के समीप पहुँच गए हैं। अब रात्रि आठ।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— अचलानन्द ने ठाकुर से कहा था, 'तुम क्या शिव की कलम (तन्त्र-शास्त्र) को मानते नहीं?' वे तन्त्र मत से साधन किया करते थे। ठाकुर अपने भक्तों से तन्त्र-वन्त्र प्राय: कहते ही नहीं थे। किन्तु निज सब कर रखा था। ठाकुर ने उत्तर दिया, 'क्या जानूँ भाई, वह भी एक पथ है। किन्तु मेरा है मातृभाव।' नरेन्द्र को कहा था, 'वे सब गन्दे पथ हैं— पाखाने के पथ।' ठीक रास्ते से भी प्रवेश किया जाता है और फिर पाखाने के रास्ते द्वारा भी। वे सब हैं पाखाने के पथ। इस युग में वे निज पालन करके दिखा गए हैं— मातृभाव का साधन है युगोपयोगी।

श्री म *(जनैक के प्रति)*— निर्जला एकादशी की बात कहने से कौन सुनता है? जो गुरु कहता है, उसके अधिक शिष्य होते नहीं। यदि एक चुटकी भस्म द्वारा रोग हटा दे, किंवा पैदल गङ्गा पार हो जाए, तब अनेक शिष्य होंगे। 'कामिनी-काञ्चन छोड़ो' कहने से फिर लोग आएँगे नहीं। यदि कहा जाए, भोग-वोग भी करो, ईश्वर को भी पुकारो, तब गुरु अच्छा है human estimation (मनुष्य के विचार) में। उसका कितना नाम! लोग कहते हैं, 'उनके आने पर ही तो जो कुछ भी हुई हमारी उन्नति ही उन्नति हुई। और छः लड़कियों पर लड़का हुआ उनके ही आशीर्वाद से।' ऐसा होने से लोग अनेक जुट जाते हैं। ठाकुर के पास है निर्जला एकादशी। जभी लोग कम। *(सहास्य)* काशीपुर बागान में कहा था, 'ओ नोटो, गोन तो क'जन भक्त हलो।' (अरे लाटू, गिन तो कितने भक्तजन हुए?) एक-दो-तीन गिनने पर इक्कीस जन हुए। ठाकुर सुनकर कहने लगे, 'तेमन आर कि हलो।' उतने फिर क्या हुए? *(सब का हास्य)*।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— एक दिन रात्रि को घर में खिल (सिटकनी) लगाए सोए हुए हैं। एक जोड़ी बग्गी जाकर हाजिर। एक बाबू ने कहा, 'आपको तनिक कष्ट करना होगा। अमुक मल्लिक को एकशिरा* हुआ है, चलिए।' *(सब का हास्य)*। ठाकुर ने कहा, 'वह व्यक्ति पञ्चवटी में रहता है'। व्यक्ति wrong place (गलत जगह) पर आया है, जानकर क्षमा माँग कर चला गया। एक दिन एक स्त्री कहने लगी, 'मेरे प्रेमी को ला दीजिए, जादू-टोना करके!' हाथ जोड़कर ठाकुर बोले, 'वो सब मैं जानता नहीं, माँ।' *(सब का हास्य)*

'मनुष्य-जीवन का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य है ईश्वर-दर्शन और प्रधान कर्त्तव्य है भगवत्-भजन; विषय-भोग नहीं।' इसी महामन्त्र को भक्तों के हृदय में दृढ़बद्ध करने के लिए श्री म ने आज हँसी-तमाशा रूप अभिनव उपाय का अवलम्बन किया है।

श्री म *(युवक के प्रति)*— संन्यास लेकर बारह वर्ष अज्ञात रहना चाहिए। तब फिर भगवान में भक्ति होने पर, उनका दर्शन हो जाए तब आकर मिला जाए उन लोगों के संग। नजदीक रहने से गिरने का भय रहता है।

---

* अण्डकोष बढ़ जाने की बीमारी— Hydrocele.

काशी में एकजन संन्यास लेकर आठ बरस था। घर के लोग सम्वाद पाकर आ जाते हैं। एक दिन साली जाकर पकड़ लेती है और कहती है, 'अच्छा, तुम ऐसी सामान्य सी बात से गुस्से हो गए? दीदी को नेक देरी हो गई थी भात देने में। चलो घर और क्या?' *(सब का उच्च हास्य)* खींच कर ले चली। देखिए, भात में देरी होने से वैराग्य! *(हास्य)* स्त्री घूँघट मारे दूर खड़ी है। बहुत दिन से स्वामी-त्याग, तभी लज्जा! *(सहास्य)* और भी है— क्रमशः प्रकाश्य। साली कहती है, 'फिर यह क्या ढोंग रच रखा है? लो यह धोती।' यह कह खींचकर गेरुआ उतार दिया और धोती पहना दी। बाबा जी में प्रतिवाद की क्षमता नहीं। ऐसा काण्ड! मठ में भी कोई दो-एक बरस ठहरकर चला जाता है। बड़ा मुश्किल काज! एक पैसे का पोस्टकार्ड मन बदल देता है। तभी भगवान-दर्शन न हो जाने तक किसी के भी संग मिलना न चाहिए। फिर चाहे चल सकता है। किन्तु प्रथम मरणप्रण चाहिए।

श्री म *(अन्तेवासी के प्रति)*— हाँ, उनको कैसा देखा? नाग महाशय का उत्सव कैसा हुआ?

अन्तेवासी— वे खूब गुरु भक्त हैं। नाग महाशय की छवि की पूजा हुई, ठाकुर की छवि देख पाया नहीं। बाड़ी है मानो देवालय। स्वामी-स्त्री सर्वदा पूजा, भोग पकाना इत्यादि लेकर रहते हैं। दो लड़के हैं, वे भी वैसे ही हैं। प्रसाद छोड़ वे अन्य कुछ खाते ही नहीं। ऐसा प्रायः देखने में आता नहीं। मठ में जाना-आना खूब कम है।

श्री म— हाँ, चन्दन-काठ का संधान पा लिया है। किन्तु वह लेकर बैठे रहने से होता नहीं। ठाकुर कहते, 'आगे बढ़ो।' चाँदी, सोने, हीरे की कितनी ही खाने हैं आगे। *(सहास्य नयने)* घटक[1] गया था घटकाली[2] करने, कन्या सुन्दर देखकर स्वयं विवाह करके बैठ गया— वह न हो जाए अन्त में! साधु, सावधान!

श्री म *(गम्भीर भावे, भक्तों के प्रति)*— ठाकुर भक्तों की weakness (दुर्बलता) सब जानते। कहीं पीछे गिर न जाए, तभी पहले से ही सावधान

1 घटक— विवाह का सम्बन्ध कराने वाला।

2 घटकाली— विवाह पक्का करवाना।

कर देते। कितनी प्रकार से रक्षा करते। किसी का दोष पकड़ते नहीं। देखते कि ना, 'माँ ही सब करवा रही हैं। उनकी माया में सब मुग्ध।' जभी प्रार्थना किया करते— 'भूलियो ना माँ, तोमार भुवनमोहिनी मायाय मुग्ध करो ना।'

श्री म *(डॉक्टर के प्रति)*— एक दरिद्रनारायण अस्वस्थ पड़े हैं। इसी स्कूल के शिक्षक, हेमन्तबाबू। बाल-बच्चे हैं। आय कम। उनको देख लिया जाए एक बार।

डॉक्टर इस जल में ही बाहर निकल पड़े। श्री म ने विनय और छोटे अमूल्य को संग में जाने के लिए कहा। इनके द्वारा सेगो, मिश्री, मधु पथ्यादि भेज दिए। स्वयं बरामदे में खड़े होकर देख रहे हैं। वे घुटने-घुटने जल को चीर कर जा रहे हैं।

28 जुलाई, 1923 ईसवी।

(7)

मॉर्टन स्कूल के द्वितल कमरे में श्री म बैठे हैं। सन्ध्या के ध्यान के उपरान्त, मिहिजाम वास* का अनुध्यान कर रहे हैं। चारों ओर भक्तगण।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— कैसा सुन्दर निर्जन स्थान! कैसा प्रशस्त मैदान! यतीन बाबू की बाड़ी, परेश बाबू, विनय बाबू, बैरिस्टर बाबू, पुलिन बाबू, 'हमारे कवि,' संथालों के लड़के— यही सब places and personalities (स्थान और पात्र)।

जनैक भक्त— जी हाँ।

श्री म— ये सब हैं हमारे friends and neighbours (पड़ोसी और बन्धु)। और फिर नीरव रजनी में नक्षत्र खचित आकाश, क्यों, नहीं?

भक्त— जी हाँ। और उन्मुक्त वातास, आमबागान, भ्रमर।

श्री म— भ्रमर कैसे मधुपान में मस्त! फूल पर बैठा, फिर गुन-गुन नहीं।

---

* श्री 'म' दर्शन प्रथम भाग देखिए।

''और फिर केओरजाली-गमन— निताई कविराज महाशय, रामनवमी का मेला। मण्डप में राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा कितनी मूर्त्तियाँ। ठाकुर की छवि भी। संकीर्त्तन हो रहा है :

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे,
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।

ढोलची कैसे 'ताक्टि-ताक्टि' कर रहे थे।

''लौटती बार पथ में ऊँचे तीर वाला पुकुर देखकर जयरामवाटी का उद्दीपन। खुले मैदान में चाँद देख कर कालिदास की कविता का स्मरण। कालिया पहाड़, संथालों के विवाह।''

भक्त— और बालकों का, 'सलाम बाबाजी।'

श्री म *(आह्लादे)*— सरल कि ना वे सब! शहर की भद्रता जानते नहीं। प्रकृति की सन्तान। आहा, मन तो चाहता है छूट कर चला जाऊँ। यह (शरीर) जो सहता नहीं, भाग्य में क्या और फिर होगा— कौन जाने?

श्री म *(सब के प्रति)*— निर्जन में जाकर मन का प्रसार होता है। यहाँ लगातार रहने से मन लिमिटिड (सीमाबद्ध) हो जाता है। जैसे चीनियों के पाँव। बचपन से ही जूता पहना देते हैं, और बड़े हो पाते नहीं, जितने थे उतने ही रहते हैं। यहाँ मन की भी वही अवस्था है। यहाँ रहना जैसे हाण्डी की मछली और निर्जन में जाना जैसे सरोवर की मछली— स्वाधीन, मुक्त। संसार तो घेरा है, बड़ा होने देता नहीं मन को। जभी तो योगी निर्जन में चले जाते हैं। वहाँ उनके संग एक हो जाते हैं।

''योगी अनाहत शब्द सुन पाते हैं निर्जन में। इन कानों से नहीं, नूतन कान हो जाते हैं। सर्वदा प्रणवध्वनि हो रही है— 'मैं हूँ, मैं हूँ।' लोकालय में सुना नहीं जाता— निर्जने। निर्जन में रहने से उपाधि-लोप हो जाता है। मैं अमुक का लड़का, अमुक का पिता, अमुक का अमुक— ये सब हैं उपाधियाँ। तब स्वस्वरूप को पहचान पाता है। स्वस्वरूप को जान लेने पर उनके संग एक हो जाता है। नहर भी नदी हो जाती है, यहाँ भी ज्वार, वहाँ भी ज्वार। एक ही जल।

"भक्ति के पथ द्वारा निज को पहचान लेने से भी मैं कितना बड़ा हूँ, मन में आ जाता है। मैं उनका लड़का। किनका लड़का?— ईश्वर का। यह क्या कुछ कम बड़ी बात! ज्ञान के पथ द्वारा पहचानना— वह भी कितनी बड़ी (बात)! उनमें, मेरे में कोई भेद नहीं। वे ही मैं— सोऽहम्। यह सब अमूल्य धन, निर्जन की सम्पद्। 'चिड़ा-भेजा' बुद्धि से यह ऐश्वर्य लाभ होता नहीं। इधर का सब हो सकता है— धन, विद्या, यश। ईश्वर-लाभ होता नहीं, वह यदि चाहो, निर्जने जाओ— बुद्धि 'खासा' हो जाएगी।"

श्री म *(सुरेन के प्रति)*— नाना जन नाना बातें कहते हैं, सुनकर ठाकुर माँ को बतलाया करते सब बातें। कहते, 'माँ, शिवनाथ कहता है यह करो; इंग्लिशमैन कहता है जो युक्ति-युक्त है, वह करो; और एक-एक शास्त्र बोलता है एक-एक बात, किसकी बात सुनूँ? किसी की बात सुनूँगा नहीं, खाली तुम्हारी बात ही सुनूँगा।' 'तुम्हारी बात' माने revelation (वेद)— ईश्वर की बात। जभी वेद नित्य और अपौरुषेय।

श्री म *(विरिंचि के प्रति)*— आज हमने 'कथामृत' पढ़ी साँझ को— चार श्रेणी के भक्तों की बात। प्रवर्तक— जिसने अभी-अभी ईश्वर का नाम लेना आरम्भ किया है। कुछ दिन तक तपस्या कर लेने से उनके पाने की चेष्टा करने पर कहलाता है 'साधक'। उनका दर्शन होने पर 'सिद्ध' होता है। इस अवस्था में जीवन्मुक्त हो जाता है। सर्वदा उनका 'बोधे-बोध' होता है। सत्-असत् अलग-अलग हो जाता है। उसके ऊपर है— 'सिद्धों का सिद्ध'। तब उनके संग बातें करना। दर्शन, स्पर्शन, कथन।

श्री म गाना गाने लगे :

गान— कखनो कि रंगे थाको मा श्यामा सुधातरंगिणी।

गान— जीवन-वल्लभ तुमि प्राण-रमण हे।

गान— सुन्दर तोमारि नाम दीन-शरण हे।

गान— राज राजेश्वर देखा दाओ।

अमृत *(श्री म के प्रति)*— अब रात के साढ़े नौ हो गए हैं।

श्री म (गाने में उत्तर दे रहे हैं।) :

ऐबार आमि भालो भेबेछि,
भालो भाबीर काछे भाव शिखेछि।
जे देशे रजनी नाई मा, से देशेर एक लोक पेयेछि॥
आमि किबा दिबा किबा संध्या संध्यारे बन्ध्या करेछि॥

[इस बार मैंने निश्चय कर लिया है। एक भले भाव वाले के पास से भाव सीख लिया है। जिस देश में रजनी नहीं है, माँ उस देश का एक जन मैंने पा लिया है। दिन की अथवा साँझ की सन्ध्या को मैंने वन्ध्या बना दिया है।]

''यह भी एक अवस्था है— 'जिस देश में रजनी नहीं है, उसी देश का जन पा लेना' अर्थात् समाधि-लाभ करना। यही हुआ मनुष्य का normal state (स्वरूप)।''

29-30 जुलाई, 1923 ईसवी।

(8)

श्री म द्वितल के कमरे में बैठे हैं। नाग महाशय के भक्त पार्वती मित्र ने ज्येष्ठ पुत्र दुर्गा को श्री म के दर्शन के लिए भेजा है। दुर्गा के हाथ में उपहारार्थ अपनी माँ द्वारा लिखित नाग महाशय की जीवनी है। एकजन भक्त सूचीपत्र पढ़कर सुना रहे हैं। 'ठाकुर के संग में मिलन' अध्याय को श्री म ने दुर्गा को पढ़ कर सुनाने के लिए कहा। किन्तु अन्य चर्चा चल पड़ने से फिर पाठ हुआ नहीं। दुर्गा के चले जाने पर छोटे अमूल्य ने वह पढ़कर सुनाया।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— बाजार में गए नाग महाशय। दुकानदार ने जो चाहा, वही दाम दे दिया। एकजन ने कहा, 'अरे ओ, वे तो साधु हैं, इतना दाम क्यों लिया?' तब पैसे लौटाने आया। वे कहने लगे— 'न, आपका नुकसान होगा, रख लें।'

बड़े अमूल्य— किन्तु ठाकुर ने तो कहा था ना, बाजार में जाकर पाँच दुकान देखकर खरीदोगे।

श्री म— वह क्या सब के लिए? जो संसार को लिए हुए हैं, वे पाँच दुकान देखेंगे नहीं तो क्या करेंगे? जो छत पर चढ़ गए हैं, उनके लिए नहीं।

जिस देश में रजनी नहीं, वे हैं उसी देश के लोग। जो यहाँ ठगा जाता है, वह किस प्रकार ईश्वर-दर्शन करेगा? तभी वह देख-भाल कर लेगा। 'पैसा बचाने' से, 'ठगे न जाने के अभ्यास' का दाम भी अधिक है। इसी सजग अभ्यास का मोड़ ईश्वर की दिशा में फिरा देना। जभी कहा करते, 'जो नमक का हिसाब कर सकता है, वह मिश्री का हिसाब भी कर सकता है।' किन्तु जो छत पर चढ़ गए हैं, जिनका ईश्वर-दर्शन हो गया है, उनके लिए यह नियम नहीं है।

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— बाजार से मजदूर आया। समस्त शरीर पसीने में तर। झट (नाग महाशय) पंखा लेकर हवा करने लग गए। फिर घर में जो मिठाई थी, वह लाकर खिलाने लगे। भेदबुद्धि नहीं। संसारी लोग सोचेंगे, इन्होंने मजदूर के ऊपर दया की। किन्तु यह दया नहीं— पूजा। दया में 'मैं बड़ा हूँ' यह अभिमान रहता है। जो सर्वभूतों में नारायण-दर्शन करते हैं, उनके सब काम ही पूजा। दया से credit (प्रशंसा) लेते हैं, अन्य को कृतार्थ करने के कारण, पूजा से निज कृतार्थ होता है। तभी हिन्दू का जीवन है आद्योपान्त पूजा।

श्री म *(जनैक छात्र के प्रति)*— जिनका प्रथम जन्म, वे भोग विलास में व्यस्त। जिनके अनेक जन्म हो चुके हैं, उनके भोग कट गए हैं। अन्य चीज में मन नहीं। सर्वदा ईश्वर-चिन्तन में मग्न। ऐसा भी सुना जाता है, कोई-कोई उनके लिए अनशन से प्राण-त्याग करता है। अवतार आने से सब ताज़ा है, खूब सुविधा है। अब जो जन्मे हैं, उनके लिए खूब chance (सुविधा) है। सुनता हूँ कोई-कोई एकदम ब्याह करेंगे ही नहीं। परिवार में कितनी 'गंजना', कैसी यन्त्रणा! क्यों पड़ें इस झंझट में?

श्री म *(विरिंचि के प्रति)*— इस मोहल्ले में एक वकील की दूसरी स्त्री है। वह सर्वदा झगड़ा करती है सास के संग। वकील बाबू माँ से कहते हैं, 'क्यों ब्याह दिया था, ना की थी कि नहीं तब?' माँ चुप, जो करवाता है उसके ऊपर भार पड़ता है। अक्षम बालक का ब्याह करने पर भी है यही ज्वाला।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— इस संसार की ओर आँख उठाकर देखने

पर दीख पड़ता है; सब ही पुरुष-प्रकृति, शिव-शक्ति का मिलन। वृक्ष-लता, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु सब में ही वे। शिवलिंग को ही देखिए। ब्रह्मयोनि के ऊपर रहता है। वहाँ भी शिव-शक्ति का मिलन। दिन-रात इसी का ध्यान करने से भी हो जाता है, 'पुरुष-प्रकृति', 'पुरुष-प्रकृति', 'शिव-शक्ति', 'शिव-शक्ति'। बैठे-बैठे यही चिन्तन कर लेने पर ईश्वर-दर्शन होगा। और कुछ दरकार होगा नहीं। इस 'पुरुष' और 'प्रकृति' की उन्होंने ही सृष्टि की है; उनके organisation (जगत्) रक्षाजन्य।

अमृत— स्त्रियाँ न होतीं तो भला होता।

श्री म *(गम्भीर हास्य सहित)*— इतने दिनों में क्या आपने यही आविष्कार किया है, सोच-विचार करके? उनके grand organisation (विश्व) की रक्षा के लिए शिव-शक्ति का मिलन है। जन्म भी देते हैं वे, संहार भी करते हैं वे। संहार का कारण मोटे हिसाब में हम जो समझते हैं। *(सहास्य)*, वह न हो तो रखेंगे कहाँ। इतने जीव रहेंगे कहाँ, यदि न मरें। जभी epidemic, pestilence (रोग, महामारी)। सब ही जीते रहें तो जगह होगी कहाँ? अन्य कारण भी है। सुना है, ऋषि कहते हैं ये सब प्राणी अन्य लोकों में भी जाते हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— जभी हठ करके कुछ भी करते नहीं। कच्ची अवस्था में आम का छिलका उतार कर फेंक दो, तब आम होगा नहीं। गूदा होगा, गुठली होगी, पकेगा, तब फैंको कोई क्षति होगी नहीं। Unprepared (अपक्व) अवस्था में कुछ करते नहीं। Natural way (स्वाभाविक भाव) से चलना ही अच्छा है। त्याग-श्याग समय होने पर वे स्वयं करवा लेते हैं। भीतर पक जाए, तब छोड़ो, दोष नहीं। असमय में जोर करके करने से ही विपद्।

''किन्तु चेष्टा करते रहना, और प्रार्थना और सत्संग।''

कोलकता; 31 जुलाई, 1923 ईसवी, मंगलवार।
15 श्रावण, 1330 (बंगला) साल, कृष्णा चतुर्थी।

ऊनविंश अध्याय

अलॅग्जैण्डर, नैपोलियन और क्राइस्ट

(1)

मॉर्टन स्कूल का ऑफिस-घर। श्री म कुर्सी पर बैठे हैं, पास ही एक भक्त शिक्षक। अब वेला पौने दस। घर में अन्य जन नहीं। गत कल श्री नाग पञ्चमी तिथि थी। इसी तिथि को श्री म का जन्म। डॉक्टर के घर में भक्तों ने उत्सव किया। श्री म ने पूछा, ''कल के उत्सव का खर्च किसने किया, डॉक्टर बाबू ने किया क्या? और काम किया किस-किस ने?'' भक्त की सारी बात समाप्त न होने से पहले ही अन्य शिक्षकगण आ उपस्थित हुए। श्री म ने साथ वाली एक कुर्सी पर भक्त से बैठने के लिए कहा, और मृदुस्वर में बातें करने लगे।

श्री म *(शिक्षकों के प्रति)*— ठाकुर कहा करते, कर्मकाण्ड बड़ा कठिन, मुश्किल में डाल देता है। मन उसमें ही पड़ा रहता है दिन-रात। तभी वे यह पथ लेने को मना किया करते। कोई-कोई ऐसे करते हैं— मठ में रुपया दे देते हैं। अथवा कोई वस्तु खरीद कर दे देते हैं, कैसा उत्तम काज होता है इससे। प्रथम ठाकुर को निवेदन करना हो गया, फिर सब साधुओं ने प्रसाद पा लिया। उसके संग भक्त लोग भी पा लें तो और भी अच्छा है।

''ठाकुर के जन्मोत्सव पर देखा है, बहुत से लोग ऐसा करते हैं। इससे अपना कोई भी झंझट नहीं रहता। वे ही सब कर लेते हैं। कोई-कोई स्वयं भी जाकर सहायता कर देते हैं। एकजन गया, प्रसाद लाया, भक्तों को दे दिया। भक्त माने जो गृह में रहते हैं। ऐसा काम वे कर सकते हैं; अनेक लोग हैं, उनका organisation (संघ) है। जिनके पास इस प्रकार की सुविधा

नहीं, उनके लिए बड़ा ही मुश्किल है। स्वयं ही सारा करना पड़ता है। ये डाक्टर बाबू ही सारा दिन परिश्रम करते हैं। इधर तो शरीर (तर्जनी दिखाकर) ऐसा है। उस पर इतना परिश्रम! ठाकुर को खिलाकर साधु प्रसाद पावें तो खूब अच्छा है। आप क्या कहते हैं? मठ में रुपया देकर कह दो, ठाकुर-सेवा के लिए है। रोज ही तो होता है। आज जरा सा और। किस उपलक्ष्य से दिया जा रहा है, यह कहने की भी क्या आवश्यकता? ठाकुरसेवा, साधुसेवा में लगने से ही काज हुआ।

अब वेला साढ़े तीन। श्री म ने भक्त शिक्षक के हाथ में बड़ी एक बोतल बढ़िया गाय का घी दे कर कहा, ''हेमन्त बाबू अस्वस्थ हैं, उन्हें यह दे आइए।'' यह घृत शुकलाल ने श्री म को उपहार में दिया था। जाते समय पुनः कह रहे हैं, ''मठ में दरिद्रनारायण सेवा होती है। आप उसी दरिद्रनारायण को यह भी दे आइए।'' इसके पूर्व भी और एक दिन दाल, चावल, सागुदाना, मिश्री इत्यादि भेजी थी। हेमन्त हैं मॉर्टन के शिक्षक।

साढ़े पाँच बजे चारतल की छत की दरार को सिमेण्ट द्वारा श्री म अपने हाथ से सँवार रहे हैं। एक स्थान पर दरार में से चिउँटियाँ निकलते देखकर श्री म ने एक भक्त से कहा, ''नहीं, यहाँ नहीं लगाइए। तब फिर ये निकल नहीं सकेंगी।'' यह क्या सर्वभूतों में नारायण दर्शन?

अब सन्ध्या। नित्य के भक्तगण सब ही आए हैं। नूतन भक्त भी कई जन आए हैं। डॉक्टर के चाचा जी, गायक ललित और नायब आए। ध्यानान्ते एकजन नूतन भक्त प्रश्न कर रहे हैं।

नूतन भक्त *(श्री म के प्रति)*— जी, आस्तिक्य बुद्धि जो आ रही है, उसका लक्षण क्या है?

श्री म— साधुसंग। वह साधुसंग करेगा। यह हुआ beginning of the religious life (धर्म-जीवन का आरम्भ)। एक धनी व्यक्ति से ईशु ने कहा था, मेरे संग रहना हो तो सब कुछ छोड़ना होगा— 'Give (your all) to the poor, ... and follow me.' किन्तु कर सका नहीं। जो आन्तरिक साधुसंग करेगा, समझना होगा उसने ईश्वर का सार समझ लिया है। A man

is known by the company he keeps, and the ideal he worships. (आदर्श और संग देखकर मनुष्य पहचाना जाता है।) एक व्यक्ति का आदर्श (ideal) यदि कोई कांग्रेसमैन है तो समझना होगा patriotism (स्वदेश-प्रीति) है, पॉलिटिक्स (राजनीति) को प्यार करता है। एकजन यदि विद्यासागर महाशय के निकट बैठता है, तो समझना होगा कुछ philanthropy (परोपकार) भाव है, दया है। और एकजन यदि साधु के पास बैठता है तो समझना होगा, उन सब में उसका मन नहीं है। वह समझ गया है ईश्वर सत्य, संसार अनित्य; जभी eternal life (अमृतत्व) के लिए व्याकुल है— कैसे वे मिलें।

नूतन भक्त— मर्कट वैराग्य और असली वैराग्य में क्या पार्थक्य है?

श्री म— मर्कट वैराग्य में— गृहस्थ की ज्वाला में जलकर गेरुआ लेकर काशी में वास करता है। दो मास परे घर पत्र लिखता है, "मुझे एक काम मिल गया है, शीघ्र घर आ रहा हूँ।" काज-कर्म नहीं था, जभी वैराग्य हुआ। असली वैराग्य होने पर गृहस्थ पातकूआ और आत्मीय स्वजन कालसर्प की भान्ति बोध होते हैं, ठाकुर यही बात कहा करते। एकजन आठ वर्ष काशीवास करके गेरुआ फेंक कर घर आ गया है। भात देने में देर हो जाने पर पत्नी पर क्रोध होने से वैराग्य हुआ था। यह वैराग्य परीक्षण में टिकता नहीं। ईश्वर में ठीक-ठीक अनुराग होने पर संसार से विराग हो जाता है।

द्वितीय भक्त— जी, लोग खामख्वाह मिथ्या बातें क्यों करते हैं?

श्री म— फिर किसी दिन होगी यह बात।

अब तक शुकलाल, डॉक्टर, विनय, मनोरंजन और बड़े जितेन आ गए हैं। छोटे अमूल्य, वीरेन, सुधीर, सुरेन गंगोली, गदाई प्रभृति भी आ गए।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ऐसे भी सुने जाते हैं जैसे नाग महाशय; ब्याह हुआ, घर में युवती भार्या; किन्तु उसे ग्रहण करेंगे नहीं। एक घर में वास, किन्तु उसे ग्रहण किया नहीं। ऐसा सिद्ध पुरुष का होता है— महापुरुषों का। प्रथम ब्याह हुआ, स्त्री की वयस सोलह वर्ष। उसी प्रकार ग्रहण नहीं किया। द्वितीय बार फिर ब्याह ही करना नहीं चाहते। घर में माँ नहीं, बाप रोने लगे बेटे के विवाह के लिए। पता लगने पर बाप से कहा, विवाह

करूँगा। ब्याह किया, किन्तु फिर वही— देह सम्पर्क नहीं। महापुरुष को छोड़ और कौन इस प्रकार 'काम' के हाथ से निष्कृति पाता है? ईशु क्राइस्ट ने जभी तो कहा था : Who are married let them live as if they were not married. (जो विवाहित हैं, वे ऐसे रहें जैसे ब्याह नहीं हुआ।) घर में स्त्री, किन्तु ग्रहण नहीं करते— कैसा मन का जोर!

श्री म *(वीरेन के प्रति)*— दशरथ के पास एक ऋषि आए। कहने लगे, 'महाराज, आपने बहुत से राज्य जीते हैं सत्य, किन्तु एक वस्तु अभी भी बाकी है।' दशरथ ने कहा, 'वह क्या?' ऋषि ने कहा, 'आपने काम को जय किया है क्या?' दशरथ ने कहा, 'नहीं।' ऋषि ने कहा, 'तब फिर और क्या किया— केवल ढेरों राज्यों को जय करने से ही क्या होगा? जिसने काम को जीत लिया है वही है यथार्थ विजयी।'

श्री म *(मोहन के प्रति)*— नैपालियन ने सेण्ट हेलेना में अन्त समय में यही बात कही थी, 'सीज़र, अलॅग्जैण्डर तथा मैंने क्या किया? दो दिन के लिए राज्य जीता, किन्तु ईशु की विजय चिरकाल तक रहेगी।' कहा था, 'Our kingdom breaks even while we are living, but his (Christ's) kingdom begins at his deatlh, and extends for ever.' दिग्विजयी नैपोलियन की इस दुर्दशा और क्राइस्ट के शाश्वत सुख में आकाश-पाताल का अन्तर है— 'Behold the destiny of him who has been called the great Napoleon! What an abyss between my deep misery, and eternal religion of Christ.' और भी कहा था, अनन्त महिमामय श्री भगवान के निकट नैपोलियन की उज्ज्वल प्रतिभा कुछ भी नहीं है, अत्यन्त नगण्य है— "There exists an Infinite Being. Compared with Him, I, Napoleon with all my genius, am truly nothing, a pure nothing!"

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— क्राइस्ट ने कामक्रोधादि सम्पूर्ण जय कर लिए थे। इसी के परे ही शाश्वत सुख-शान्ति लाभ होता है। जभी उनका धर्मोपदेश चिरकाल के लिए सत्य है। उनके धर्म-राज्य का विनाश नहीं है।

"संसारी जीव क्या लेकर पड़े हैं? Environments (परिवेश) अन्य रकम का है। उससे ही adaptation (आदत) हो गई है। जभी कहता

है, 'बड़ा अच्छा हूँ।' अवतार आते हैं इसी जड़ता को तोड़ने। वे आकर शक्ति देते हैं, तभी यह जड़ता टूटती है। Source of strength (शक्ति केन्द्र) हैं अवतार। तब भी क्या चैतन्य होता है लोगों को? वे अभी-अभी तो आए हैं। कितने जनों को चैतन्य हुआ है! चैतन्य देव ने जभी तो माँ से कहा था, 'तुम घर में रहने को कहती हो, तभी रहूँगा; किन्तु देह नहीं रहेगी इस अग्नि के भीतर।' माँ सुनकर बोलीं, 'जहाँ तुम्हारा शरीर रहे, जाओ।' इसीलिए संन्यास हुआ। संसार 'ज्वलन्त अनल' ठाकुर कहा करते। ठाकुर ने भी रो-रो कर कहा था जगन्माता से, 'माँ, इस कामिनी-काञ्चन के भीतर जल-भुन रहा हूँ। देह रहेगी नहीं'।''

श्री म *(डॉक्टर के प्रति)*— आजकल कितनी सुविधा है! मठ इतना निकट है। और फिर ठाकुर ने स्टीमर कर दिए हैं। कितने भले-भले लोग हैं मठ में— बहुत से बी०ए०, एम०ए० हैं। किस प्रकार भगवान प्राप्त हों उसी के लिए हैं व्याकुल। जो, जो कुछ कहता है, वही करते हैं— कभी ध्यान करते हैं, तो कभी बाजार करने जाते हैं। कभी फिर बाढ़ आने पर सहायता करने जाते हैं। 'ब्रह्मज्ञानी' माँ की न्यायीं व्याकुल रहता है। 'ब्रह्मज्ञानी' माँ-ठाकुर की मूर्त्तियों को नहीं मानता, कहता है, लात मारता हूँ ठाकुर-देवताओं को। पैर से चाहे न भी मारे, मुख से तो कहता ही है। किन्तु ज्यों ही लड़के को असुख होता है, डॉक्टर, कविराज जब कुछ भी कर सकते नहीं, पड़ोस की बुढ़ियाँ तब कहती हैं, तारकनाथ में धरना दो। फिर करे भी तो क्या? अन्त में धरना ही देता है। अब तो लड़के के लिए व्याकुल जो! वैसे ही ये मठ के साधु हैं व्याकुल, ईश्वर के लिए।

''मठ के साधु क्या केवल विद्या के जोर से ही हैं? अटूट ब्रह्मचर्य भी है साथ इनके। तभी उनका knowledge (ज्ञान) इतना अधिक है, जो कुछ पढ़ेंगे, जो कुछ सुनेंगे, वही मन में रहेगा— ब्रह्मचर्य जो है। उनका एन्साइक्लोपीडिक नॉलेज, बहुमुखी ज्ञान। ठाकुर कहा करते, 'छिद्र वाली कलसी में हजार जल डालो, ठहरेगा नहीं।' वैसे ही ब्रह्मचर्य न हो तो कुछ भी याद रहता नहीं। दो पन्ने पढ़ कर परीक्षा पास कर ली, फिर सब भूल गया— कारण, ब्रह्मचर्य जो नहीं है। पुरी में चैतन्य देव भक्त-सभा में बैठे हुए हैं। एकजन ने पूछा, 'ईश्वरीय बात

संसारी लोगों के मन में ठहरती क्यों नहीं?' चैतन्य देव ने कहा, 'वे स्त्री–संग जो करते हैं।' ठाकुर भी यही बात ही कहा करते।''

अब श्री म के कहने पर ललित ने तीन गाने गाए। उनका कण्ठ है अति सुमधुर; और उन्होंने विवाह किया नहीं। अन्त में गा रहे हैं :

एमन दिन कि होबे मा तारा।
जखन तारा तारा तारा बोले दु'नयने बइबे धारा॥
हृदिपद्म उठबे फुटे, मनेर आँधार जाबे टूटे।
धरातले पड़बो लुटे, तारा बोले हये सारा॥

[हे माँ तारा, ऐसा दिन क्या होगा, जब तारा, तारा, तारा कहते हुए दोनों नयनों से धारा बहेगी, हृदय–पद्म खिल जाएगा और मन का अन्धेरा चला जाएगा। जमीन पर लोट लगाऊँगा, 'तारा' बोल कर पूर्ण हो जाऊँगा।]

गान समाप्त हुआ। सब मुग्ध हुए हैं। तभी क्या श्री म उनको श्रेष्ठ उपहार प्रदान कर रहे हैं? श्री म कह रहे हैं, ''समझे ललित बाबू, संसार का सब देख कर, कोई–कोई तो बिलकुल ही स्त्री ग्रहण करना नहीं चाहते। क्यों जाएँगे इस गोरखधन्धे में मरने?''

अब रात्रि साढ़े नौ।

2 अगस्त, 1923 ईसवी।

(2)

मॉर्टन स्कूल के तीन तल के बरामदे में छठी क्लास। श्री म इसी क्लास में प्रवेश करके लड़कों से कहने लगे, ''देखो, अब मैं ऊपर जा कर चारतल की छत से, जहाँ से जल गिरता है, वहाँ सब जगहों पर चूना, सुरखी डालूँगा अपने–आप।'' इस बात से लड़के कोई–कोई अवाक् होकर श्री म के मुख की ओर ताकते रहे। कोई विस्मय से कह उठे, ''आप स्वयं डालेंगे, रैक्टर महाशय?'' श्री म ने कहा, ''हाँ भाई, हाँ, मैं ही स्वयं दूँगा।'' कोई–कोई फिर हँस पड़े। स्कूल में छुट्टी हो गई है। श्री म चारतल की छत का निज हाथ से संस्कार कर रहे हैं। एक भक्त सहायता कर रहे हैं। श्री म ने भक्त से कहा, ''लड़के तब हँस

पड़े थे— 'यह काम मैं स्वयं करूँगा' सुन कर। किन्तु यह बात सारा जीवन याद रखेंगे। अपना काम स्वयं न करेंगे तो कौन करेगा?''

अपराह्ण में एक भक्त को स्वामी अभेदानन्द जी की वेदान्त सोसाइटी में भेजा था। वेदान्त सोसाइटी अभी हाल में ही सेन्ट्रल ऐवेन्यू में स्थापित हुई है। किन्तु आज वक्तृता नहीं हुई थी। भक्त के लौट आने पर कहने लगे, ''वेदान्त माने revelation (ईश्वर की बात)। ईश्वर नाना मुखों से बातें करते हैं— केवल क्या अवतार के मुख के द्वारा ही बातें करते हैं? पञ्चवटी में एक कुत्ता आया कि ठाकुर ने कहा, 'जाऊँ, शायद माँ इस कुत्ते के मुख से कुछ कहेंगी'।''

(3)

आज सकाल सात से साढ़े आठ तक श्री म 'सत्संग सभा' में थे। वह मॉर्टन स्कूल के शिक्षक और छात्रों का रविवासरिक सम्मेलन है, श्री म द्वारा स्थापित। प्रथम प्रार्थना, फिर उद्‌बोधन संगीत होता है, फिर गीता और भागवत का पाठ। तब फिर धर्म-प्रसंग। प्राय: ही महापुरुषों की जीवन-कथा की आलोचना होती है। आलोच्य विषय पहले से निर्धारित रहता है। सभा समाप्त होते ही श्री म ने अन्तेवासी को दक्षिणेश्वर भेज दिया। ये सन्ध्या को सात बजे लौट आए। उनके पास से दक्षिणेश्वर का सब सम्वाद पूछ रहे हैं। परम श्रद्धेय किसी जीवन्त व्यक्ति के सम्बन्ध में खोज की न्यायीं, पञ्चवटी, बेलतला, ठाकुर-घर, हंसपुकुर, नहबत, बकुलतला, माँ काली, राधाकान्त और द्वादश शिव मन्दिर, चाँदनी और वकुलतला का घाट, नाट-मन्दिर आदि की बातें, अति भक्तिभरे भाव से पूछने लगे। आज रविवार— कितने लोग आए थे, घाट पर कितनी नौकाएँ बँधी हुई थीं, ये सब पूछने लगे। लग रहा था, मानो अपने गुरु भगवान श्रीरामकृष्ण की बातें ही पूछ रहे हैं— ऐसी श्रद्धा और सजीव भाव! सब बातें सुनकर श्री म कहने लगे, ''A good day's work (आज के दिन का सद्‌व्यवहार) हुआ। उस स्थान पर ही ठाकुर तीस वर्षों तक थे। वहाँ का atmosphere is surcharged with spirituality (वातावरण धर्मभाव से ओतप्रोत है)।''

दोतल की सीढ़ी के बायीं ओर के कमरे में श्री म बैठे हैं। सन्ध्या का ध्यान आदि शेष हो गया है। कमरे के फर्श पर भक्तगण हैं। दोनों जितेन, डॉक्टर, विनय और छोटे अमूल्य आए हैं। बहुत दिन परे 'हीलिंग बाम' के दुर्गापद आए हैं। शची, अमृत, वीरेन, गदाई, मनोरंजन और छोटे नलिनी भी हैं; और भी कोई-कोई हैं।

श्री म *(मोहन के प्रति)*— 'वेदान्त समिति' में क्या-क्या बातें हुईं?

मोहन— अभेदानन्द महाराज ने बताया, आत्मा का सुख-दुःख नहीं, लाभालाभ नहीं। धर्म के दो भाग हैं— एक non-essential (असार भाग) और एक essential (सार भाग)। और बतलाया जगत्-चैतन्य के साथ जीव के खण्ड चैतन्य का योग कर देना। यही है problem of life (जीवन की समस्या)।

श्री म— किन्तु ठाकुर कहा करते, तपस्या चाहिए। हजार पोथी ही पढ़ो और जो भी करो, निर्जने तपस्या न करने से कुछ भी समझ में नहीं आता। भारत के लोग धन्य, यहाँ जन्म लेने के कारण। इनके पास केवल पाण्डित्य काम नहीं कर सकता। वह तो उस 'देश' में है— वैस्ट (पश्चिम) में। यहाँ की बात है— 'तपस्या करो'।

''केशवसेन वक्तृता देते थे खूब। मैं तब स्कूल में पढ़ता था सैकेण्ड क्लास (नौवीं) में। अंग्रेज़ी भली प्रकार समझ नहीं सकता था। फिर भी सन्ध्या को लैक्चर होगा और मैं तीन बजे जाकर बैठ जाया करता। अंग्रेज़ी का कैसा प्रवाह! लौटते समय रास्ते में सब लोग बातचीत करते, 'समझा तो नहीं एक बिन्दु भी, किन्तु बोले खूब!' *(सब का हास्य)*। वक्तृता जैसे नीरस। ओ माँ, इसके बाद जब ठाकुर के पास गया, तब देखता हूँ प्रत्येक बात ही रस में डूबी हुई— प्राण शीतल हो जाता सुनकर।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— शास्त्रादि पढ़ना, उसमें भी विपद् है। ठाकुर कहा करते, शास्त्र में चीनी और बालू मिला रहता है। केवल चीनी चुन कर कौन देगा तुम्हें? सारा खाओ तो असुख करेगा। शास्त्र interpret (व्याख्या) करने आते हैं अवतार। उनकी बातों के साथ मिला कर पढ़ना। जो मिलेगा वह लेना, जो नहीं मिलेगा, उसका त्याग करना। जो लोक-शिक्षा देंगे उन्हें थोड़ा-थोड़ा

जानना अच्छा है। ये हैं सब ढाल-तलवार, अन्य को मारने के काम में आते हैं। अपने लिए तो ठाकुर का एक ही महावाक्य यथेष्ट है।

श्री म *(दुर्गापद के प्रति)*— कच्चे मन को बहुत भय है। निष्काम कर्म करने जाओ तो अनेक बन्धन आ पड़ते हैं। कर्मयोग है बड़ा कठिन। सुनता हूँ कि मठ में अनेक ही छटपटाते हैं कि कब अवसर होगा, उन्हें (ईश्वर को) पुकारने का। बहुत काम-काज है कि ना। बहुत बार मनुष्य 'घटकाली' करने जाकर निज ही ब्याह कर डालता है। घटकाली माने परोपकार। यह करने जाकर अपने आप बँध जाता है। कितना बड़ा भय कच्चे मन से! जभी देखता हूँ मठ के वे, ज्यों ही एक-टुक अवसर हुआ त्यों ही छूट कर भागते हैं। एकजन गए हैं देहरादून की ओर, एकान्त में उन्हें पुकारने के लिए।

''निर्जन में जाओ तभी धात ठीक रहती है, ठाकुर कहा करते। और कहा करते, 'उनकी कृपा हो जाए तो वेद-वेदान्त अपने-आप समझ में आ जाते हैं। माँ ने मुझे सब दिखा दिए हैं।' बिलकुल भी सुविधा न हो तो जिस अवस्था में ही रहा जाए, उसी अवस्था में रहते हुए ही उनको पुकारना चाहिए। ऑफिस में कार्य करता है एक व्यक्ति, वह यदि भावना करे कि परिजनों को शान्त करने के लिए ही मेरा यह काम है। इनके शान्त हो जाने पर सम्पूर्ण मन से उनको पुकारने का अवसर होगा— इस भाव से करने से भी कर्मयोग हो जाता है।

''उद्देश्य है ईश्वर लाभ। ज्यों ही अवसर हुआ, त्यों ही निर्जन में जा कर उन्हें पुकारना। प्रकृति में कर्म होता है तो क्या फिर जाना चाहता है? गुरु इच्छा करते हैं, तुम उसी पथ से ही उनको प्राप्त करो। इतने बड़े उत्तमाधिकारी अर्जुन, उनको भी कर्म करना पड़ा। संकेत बतला दिया, 'मेरे लिए करो, इससे तुम्हारा बन्धन नहीं होगा।' किन्तु तपस्या चाहिए। बीच-बीच में निर्जन में जाना उचित।''

सब भक्तों ने विदा ली। डॉक्टर वीरेन प्रभृति रह गए। अब रात्रि साढ़े नौ। बरामदे में खड़े हुए श्री म डॉक्टर से कह रहे हैं, ''गृहस्थ में रहते हुए गृहपालित पशुओं को अपनी सन्तान की तरह देखना चाहिए। घोड़ा बड़ी ही tragically (दुर्दशा से) मरा है। इससे गृह-स्वामी को दोष स्पर्श करता है।

गृहस्थी करना क्या मुख से बोलना है! ऐलोमेलो* होने से कैसे होगा? इससे तो गृहस्थी छोड़ देना ही अच्छा है।

वीरेन— हम क्या गृहस्थ के उपयुक्त हैं?

श्री म— ठीक कहते हो। 'पक्का खिलाड़ी हो जाए तो गृहस्थ करे,' ठाकुर कहा करते। गढ़ के मैदान में आठ आने की सीट पर बैठ कर भक्तों के संग सरकस देखा था ठाकुर ने। बाहर आकर कहने लगे, 'देखा, वह बीबी इतना अभ्यास करने पर ही तो चलन्त घोड़े के ऊपर एक पैर से खड़ी रही। वैसा पक्का खिलाड़ी हो जाए तब ही गृहस्थी में रह सकता है। नहीं तो चकनाचूर।'

5 अगस्त, 1923 ईसवी।

(4)

श्री म दो तल के घर में भक्तों के संग बातें कर रहे हैं। अब सन्ध्या अवतीर्ण हो गई है। एक नक्शा हाथ में लिए जनैक भक्त ने गृह में प्रवेश किया। यह एक मकान का नक्शा है। उसे मॉर्टन स्कूल के लिए लेने की बात हो रही है। श्री म की इच्छा से भक्त ने नक्शा प्रस्तुत किया है।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर कहा करते, 'माँ ने मुझे एक ऐसी अवस्था में रख दिया था, जब तक दस–पाँच जने मेरी पूजा न कर लेते, अशान्ति होती रहती।' *(अपने)* भीतर में माँ को देखते थे कि ना, जभी ऐसी अवस्था होती थी और कहा करते, 'कभी–कभी ऐसी अवस्था में रखतीं, तब चाहे पाखाना ही साफ करने लग जाया करता।'

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— माँ ने नाग महाशय का आदर्श गृही भक्तों के दृष्टान्त के लिए रखा था। जिन्हें लोक–शिक्षा के लिए रखेंगी, उन्हें यह छोड़, वह पकड़, इस प्रकार दस–पाँच में हाथ नहीं देना पड़ता। एक में ही crystallised (एकाग्रचित्त) हो जाता है। नाग महाशय के जीवन से दिखा दिया कि सेवा किसे कहते हैं। घर में अतिथि आता तो वे देखते साक्षात् नारायण आए। उन्हें

* ऐलोमेलो = अव्यवस्थित, विशृंखल, उल्टा–पुल्टा।

खिलाकर, हुक्के से तुष्ट करके, विश्राम की व्यवस्था करके फिर स्वयं खाएँगे। उन्हें सर्वजीवों में समदर्शन था। नारायण का अधिष्ठान देखते। जभी सब की पूजा करते। यह दया नहीं। दान, दया, सेवा— एक-से-एक बड़े हैं। दया में, 'मैं बड़ा हूँ', यह अभिमान रहता है। सेवा में वह नष्ट हो जाता है। भगवान को सर्वदा देखते हैं, उनकी ही सेवा करते हैं। अपने को उनके पास छोटा किए रहते हैं। उनके लिए ही जगत् में सेवक सब से बड़े होते हैं।

''चण्डी में यही कथा ही है। जो लोग भगवान के निकट छोटे, वे जगत् के आश्रय हैं, श्रेष्ठ व्यक्ति हैं, 'त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति।' (चण्डी 11:28) गृह में रहकर सम्पूर्ण संन्यास किस प्रकार से होता है, उसका ही दृष्टान्त हैं नाग महाशय। ये लोग क्या कम हैं? ठाकुर अवतार हैं— संग के वे लोग उनके ही अंश हैं। नाग महाशय सेवा से crystallised (एकाग्रचित) हुए थे। क्या समझे, ईश्वर बीच-बीच में इन्सपैक्शन, निरीक्षण करने आते हैं सांगोपांगों को लेकर। तब हम कहते हैं, अवतार।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— चैतन्य देव स्वयं संन्यास लेकर 'पुरी' में रहने लगे— निताई को भेज दिया, विवाह करके गृही होने के लिए। कैसा त्याग— आबाल्य संन्यासी गृही हो गए! क्यों हुए, गृहियों की शिक्षा के लिए। गृह में रह कर भगवान को कैसे पुकारना चाहिए, यह दिखाने के लिए नित्यानन्द गृही हुए। गृह को 'काजल का घर' कहा करते ठाकुर। यहाँ रह कर जरा और ही प्रकार का हो जाता है। कहाँ संन्यासी का मुक्त जीवन और कहाँ गृही!

''एक बार पुरी में गए निताई, किन्तु चैतन्य देव के संग मिलने नहीं गए— लज्जा हो रही है। अन्य सब भक्त मिले। निताई को न देख वे कहने लगे, 'मेरा निताई कहाँ है?' भक्तों ने बतलाया, 'नरेन्द्र सरोवर के तीर पर।' झट दौड़ कर गए मिलने आप ही। और सब को कहा, 'निताई का चरणामृत जो लेगा, उसको ईश्वर-दर्शन होगा।' क्यों ऐसा मान दिया? कितना बड़ा त्याग, जगत् के कल्याण-जन्य! भगवान के कहने से संन्यास त्याग कर दिया, उनके पास छोटे हुए; किन्तु जगत् के पास हुए बड़े। निताई हैं भक्तों का आश्रय।''

बड़े जितेन— इस प्रकार सम्मान देने का क्या और भी कोई अर्थ है?

श्री म— है नहीं तो क्या? भगवान किसी को भी छोड़ सकते नहीं। सब पर ही है उनका समान प्यार। हम उन्हें भूले भी रहें तो भी उनकी दृष्टि तो है हमारे ऊपर समान। तभी तो संसारी जन साहस पाएँगे। ऐसा होगा तो एकदम ही डूब नहीं सकेंगे संसार में। यही सोचेंगे, हमारे भूल जाने पर भी वे तो भूलेंगे नहीं हमें; जैसे निताई को भूल नहीं सके थे। जभी तो क्राइस्ट ने कहा था, '...for he maketh his sun to rise on the evil and on the good,' (St. Matthew 5 : 45) (सूर्य की न्यायीं उनकी करुणा है सब पर समान)।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— श्री रामचन्द्र राज-दरबार में बैठे हैं। नारद आए। राम-सीता ने तुरन्त सिंहासन से नीचे उतर कर साष्टांग प्रणाम किया और स्तव करके कहने लगे, 'प्रभो, आप जगत्-गुरु संन्यासी— लोकशिक्षा के लिए गृही को दर्शन देते हैं।' नारद ने उत्तर दिया, 'राम, मेरे निकट गोपन रखने से चलेगा नहीं। मैं जानता हूँ तुम कौन हो। तुम हो परब्रह्म, तारक ब्रह्म; इदानीं नरदेह धारण करके आए हो, रावण के वध के लिए।' राम मुस्कराने लगे।

''महाप्रभु ने निताई को क्यों यह सम्मान दिया? अथवा नारद को ही क्यों राम ने साष्टांग प्रणाम किया? कारण, उनके करने से अन्य भी करेंगे। औरों के करने से उद्धार हो जाएगा। 'आपनि आचरि धर्म जीवेरे सिखाय', (अपने आचरण से जीव को धर्म सिखाते हैं।) जभी हमारे लिए उचित है कि वे जो कहें और करें, हम उसका पालन करें। वे हमारे लिए अधिक भावना करते हैं। हम उनके हाथों में हैं।''

रमणी गाने लगे :

आशुतोष शिवशंकर भोला।
आध चाँद भाले, कपोले कुण्डल, कण्ठे हलाहल फणीन्द्र दोला॥
विभूतिभूषण, वृषवर वाहन, बाघाम्बर धर डमरु वादन;
बबबम् बबबम् उथले घन, कल कल खल खल उथले गंगा॥

कोलकता; 6 अगस्त, 1923 ईसवी, सोमवार।
21 श्रावण, 1330 (बंगला) साल, शुक्ला दशमी।

विंश अध्याय

‘अज्ञान’-रोग का हस्पताल— मठ

(1)

मॉर्टन का वही द्वितल गृह। सन्ध्या होने पर शुकलाल ‘कथामृत’-पाठ कर रहे हैं— तृतीय भाग, ऊनविंश खण्ड और चतुर्थ भाग, चतुर्विंश खण्ड। श्री म के निर्देशानुसार पाठ शेष हुआ। श्री म कह रहे हैं, ‘‘जो पढ़ा गया है उसका कुछ क्षण ध्यान किया जाए। फिर अन्य बातें करना अच्छा। ध्यान माने environments (वातावरण) से मन को perfectly detached (सम्पूर्ण रूप से पृथक्) करना। जिसके भीतर born and brought up (जन्मे और बड़े हुए) उससे मन को एकदम उठा लाना।’’ यह कह कर श्री म ध्यान करने बैठ गए। भक्तगण भी ध्यान करने लगे। तत्पश्चात् ईश्वरीय वार्त्ता होने लगी।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर कहा करते, ‘मैं कौन और तुम कौन— यह जान सकने पर ही हुआ। और कुछ दरकार होगा नहीं।’ अर्थात् वे ईश्वर, अवतार होकर आए हैं— यह जान लेने से भक्तगण उनका अंश, पार्षद होंगे। यह बात समझ सकने पर वे फिर माया में नहीं पड़ेंगे।

‘‘ठाकुर ने कहा, *(शरीर दिखाकर)* इसके भीतर दोनों ही हैं— एक भक्त और एक ‘माँ’। भक्त को ही कैंसर हुआ है। दो पक्षी हैं— एक साक्षी स्वरूप, दूसरा सुख-दुःख भोग करता है। न्यांग्टा* से कहा था, ‘इसका जब तक बोध नहीं होता, तुम्हारा जाना होगा ही नहीं’।’’

बड़े जितेन— उनका फिर और जानना क्या बाकी रहा था?

---

* न्यांग्टा = श्रीरामकृष्ण के संन्यास-गुरु, नागा-साधु, तोतापुरी।

श्री म— लोक शिक्षा के लिए सब कुछ किया जा रहा था। लोग सोचें, देह अनित्य है, तब सुख-दुःख में सर्वदा उन्हें पुकारेंगे। जभी असुख-ग्रहण। माँ के अनन्त रूप। 'न्यांग्टा' बनकर उन्होंने ही वेदान्त सुनाया था। जो लोक-शिक्षा देंगे उन्हें पाँच रकम का जानना आवश्यक होता है कि ना। तभी तो माँ ने थोड़ा-सा सुना दिया था। सुनकर, देखकर, (बोले), 'ओ, ए एई'— ओ, यह यही तो!

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— विवेकानन्द जब उस देश (पश्चिम) से आ गए, तब एक दिन बलराम बाबू के घर की छत पर टहलते-टहलते हमारे संग आलाप हुआ। उन्होंने (ठाकुर ने) कहा था, 'तेरा वेदान्त की दिक् से नहीं'। उनकी यह बात अब तक भी समझ में नहीं आई। उन्होंने किन्तु इंगित कर दिया था। कोई-कोई जरा-मरा सा कुछ पढ़कर व तपस्या करके ही कहता है, मैं समझ गया हूँ, 'सोऽहम्'। वह क्या इतना सहज ही होता है? संसार में जो हैं, उनके लिए तो समझना और भी मुश्किल।

''संसार में adaptation (जड़ित) होने से सब भूल जाता है। एक शराबी गढ़े में पड़ा है। चौकीदार पुकार कर कहता है, 'उठो'। शराबी उत्तर देता है, 'बड़ा अच्छा हूँ, क्यों सुखी देह को दुःखी करते हो पुकार-पुकार कर।' संसारियों की है यही अवस्था। कामिनी-काञ्चन में बेहोश। जोर करके उठाने जाओ तो बहुत कष्ट पाता है, कच्चा दाँत निकलने से जो होता है। तब भी उपाय है, गुरु सहायी हों तो सब हो सकता है। उनकी कृपा से हजार गाँठों वाली रस्सी भी खुल जाती है। गुरु कृपा! गुरु हुए सच्चिदानन्द। वे अवतार होकर आते हैं। उन्हें छोड़ और गुरु नहीं। गुरुकृपा, गुरुकृपा— गुरुवाक्ये विश्वास।

''गुरुकृपा होने पर एक-एक करके परदा उठता जाता है और भीतरी mystery (ऐश्वर्य) देखकर लोग अवाक् हो जाते हैं। कामिनी-काञ्चन के भीतर रह-रह कर मन के ऊपर ऐसी गाँठ पड़ जाती है जो शीघ्र खुलना नहीं चाहती। ये प्रतिकूल संस्कार, एकमात्र गुरु बदल दे सकते हैं। 'गुरु मेहरबान तो चेला पहलवान।' गुरुवाक्य पर विश्वास के लिए ही तपस्या आवश्यक। तपस्या करने पर कुछ समझ में आ जाता है। Intellectually (विचार द्वारा)

समझने के विषय नहीं हैं ये सब।''

श्री म *(मोहन के प्रति)*— वे देख रहे हैं सब कुछ। हमें इतनी भावना नहीं करनी होगी। हम उनके हाथ में पड़े हैं। वे हमारे हाथ में नहीं पड़े। जो कह गए हैं, उसे पालन करने की चेष्टा करो। बाकी सब-कुछ वे करेंगे। अनेकों के ही ऐसे शुभ संस्कार हैं कि ठाकुर को अवतार मानकर झट करके पहचान लिया और अनेक ही तो मान पाए नहीं। क्यों हुआ उनका? पूर्वजन्म में बहुत तपस्या की हुई थी कि ना। गुरुवाक्ये विश्वास न होने से कहता है 'किन्तु।' तपस्या थी, इसी कारण वे भी पहचान गए और ठाकुर ने भी प्यार किया।

''गुरुवाक्ये विश्वास करने पर और कुछ करना नहीं पड़ता। नहीं तो काज बढ़ जाता है। कुरुक्षेत्र युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर ने कहा— 'मेरे लिए ही यह समस्त कुटुम्ब-हत्या हुई।' श्रीकृष्ण ने कहा, 'ऐसा कुछ नहीं।' युधिष्ठिर की 'किन्तु' रह गई। इसीलिए राजसूय यज्ञ हुआ। काज बढ़ गया। हजार पोथी ही पढ़ो और तपस्या ही करो, गुरुकृपा न हो तो कुछ भी होगा नहीं। उसी के लिए प्रार्थना करनी चाहिए— शरणागत, शरणागत। और बीच-बीच में माँ के लिए डाब (कच्चा नारियल) और चीनी की मनौती करनी चाहिए।''

डॉक्टर— तो फिर तपस्या करने को क्यों कहता है गुरु?

श्री म— तपस्या क्या कोई और करता है? गुरु ही करता है, भक्त के द्वारा। यह भी है एक लीला। गुरु का उपदेश लेकर तपस्या करने पर उनके प्रति विश्वास हो जाता है। उनकी बात पर विश्वास होते ही हो गया। कर्म बहुत कम हो जाते हैं। वे स्वयं सब कुछ कर देते हैं तब। और गुरु का उपदेश बिना लिए तपस्या करने पर, पहले एक कोठरी बनेगी, उसमें बैठ कर पुरश्चरण का आयोजन होगा; और दस जन देख कर कहेंगे, 'वाह, वाह, यह बड़ा साधु है।' गुरुकरण होने पर वे बतला देते हैं, उनको पुकारना चाहिए— अति गोपने और निर्जने। दूसरा कोई जान न पाए। निर्जने, गोपने तपस्या करने से स्व-स्वरूप को जाना जाता है, ''मैं'' कौन, पहचाना जाता है, उपाधियाँ सारी दूर हो जाती हैं— मैं अमुक का पिता, अमुक का पुत्र, ये सब।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— 'सोऽहम्' कौन समझ सकता है? जिनका प्राण जला जा रहा है कामिनी-काञ्चन के भीतर रह कर। ऐसा किसी का होता है; क्या है कोई? मुख से ही बोलने से हो गया, 'सोऽहम्, सोऽहम्'? यह तो कहा भी नहीं जा सकता, तपस्या बिना किए। उसे समझने का उपाय नहीं। मान लेने से होता नहीं।

''एक भक्त के तपस्या की बात बोलने पर ठाकुर कहने लगे, 'अमृत ठीक कहता है। एकजन ने अति कष्ट करके, लकड़ी-फूस जमा करके, आग जला ली। तब अनेक जन ही तो उस आग से सेंक सकते हैं कि नहीं, बोलो?' अर्थात् उन्होंने आग जला कर रखी हुई है। जो उन पर विश्वास करेंगे, उन्हें कुछ करना न होगा। वे गुरु की तपस्या का benefit (लाभ) उठाएँगे। भक्त की इच्छा तपस्या करने की थी। ठाकुर ने कैसे सुन्दर भाव से अमृत का नाम करके जवाब दे दिया, two sides meet (दो दिशाओं का मेल कर दिया)।

जगबन्धु— किसे कही थी यह बात?

श्री म— एक भक्त को। अनेक ही तो नाम प्रकट करना नहीं चाहते कि ना, इच्छा करते हैं, बहुत जने न जानें।

श्री म *(विनय के प्रति)*— मठ का क्या सम्वाद, कहो तो।

विनय *(अति मधुर स्वर में)*— जी, आज गया नहीं।

श्री म *(सुन नहीं पाए)*— Louder please (जरा जोर से)। *(सब का उच्च हास्य)*।

बड़े जितेन— हाई कोर्ट में एक वकील आहिस्ते-आहिस्ते 'मिन्-मिन्' कर रहा था; मैंने कहा, जोर से बोलिए।

श्री म— न, ये लोग यह नहीं करेंगे— मठ के लोग जो। उनके संग इनकी तुलना? इनमें अरब हाथियों का बल है। *(उत्तेजित होकर)* क्या कहते हैं आप, इनके संग में उन संसारियों की तुलना? उनका अपना ideal (आदर्श) वे स्वयं आप ही हैं। छिः छिः! मठ में बहुत लोग खूब गुणवान हैं। कितना पास कर गए हैं! उनकी रोख कितनी! कैसे earnest (व्याकुल)!

होंगे नहीं तो क्या, इधर का कितना ही कुछ तो छोड़ कर गए हैं।

जनैक भक्त— ठाकुर क्या पहले से ही जान लेते थे, कैसे-कैसे लोग आवेंगे?

श्री म— हाँ, माँ पहले से ही बता देती थीं, कैसे भक्त आएँगे। गौरांग-दर्शन होता, तो समझते गौर-भक्त आएगा। काली देखते तो शाक्त आता, इसी प्रकार। किन्तु अन्तरंगों में से प्रत्येक को माँ ने बहुत पहले से ही दिखा दिया था। बाईस-तेईस वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ी थी उनके लिए। फिर अन्तरंग गण जाकर सब जुटे।

7 अगस्त, 1923 ईसवी।

(2)

श्री म का शरीर खराब। कई दिन से बाएँ हाथ की वेदना भोग रहे हैं। तथापि ईश्वरीय कथा का विराम नहीं। इधर नवविधान ब्राह्मसमाज में भाद्रोत्सव चल रहा है। ठाकुर की पुण्य-स्मृति विजड़ित होने के कारण उनकी इस ब्राह्मसमाज के प्रति अतिशय श्रद्धा है। असुख लेकर ही उत्सव-दर्शन करते हैं। समाज के आचार्यगण श्रीरामकृष्ण और केशवचन्द्र-मिलन के उपलक्ष्य में उनके सम्बन्ध में आलोचना के लिए एक दिन निर्दिष्ट रखते हैं। 17 अगस्त, शुक्रवार को वह दिन था। किस प्रकार क्या आलोचना करनी होगी— उपदेश देकर श्री म ने मोहन को भेज दिया। मोहन आचार्य नन्दलाल सेन, प्रमथनाथ सेन प्रभृति के संग आलोचना कर रहे हैं। उसी समय देखा अस्वस्थ शरीर लिए ही श्री म कई भक्तों के संग समाजगृह में प्रवेश कर रहे हैं। ईश्वरीय कथा में श्री म देह का असुख भूल गए हैं।

आज 20 अगस्त। श्री म का शरीर ठीक नहीं। बेलुड़ मठ से एक संन्यासी आए हैं। ये भारत के प्राय: समस्त प्रधान तीर्थस्थान दर्शन करके लौटे हैं। विभिन्न तीर्थ, साधु और भक्तगणों की बातें मस्त होकर श्री म सुन रहे हैं। साधु ने भुवनेश्वर, पुरी, मद्रास, काँची, पक्षीतीर्थ, चिदम्बरम्, श्रीरंगम, बालाजी, मीनाक्षी,

रामेश्वरम्, कन्याकुमारी दर्शन किए हैं। फिर नासिक, पञ्चवटी, पुण्यपत्तन, द्वारका, प्रभास प्रभृति देखकर हिमालय में स्थित यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदार, बद्री, ऋषिकेश, हरिद्वार, वृन्दावन, मथुरा, प्रयाग, काशी प्रभृति तीर्थ-दर्शन किए हैं। नाना स्थानों का प्रसाद और निर्माल्य लेकर आए हैं।

शुष्क विल्वदल किंवा तुलसीपत्र मानो हैं महामूल्य मणि। और चन्दन, कुमकुम, मिष्टान्नादि प्रसाद मानो हैं अमूल्य सम्पद्। यह सब अमूल्य सम्पद् पाकर श्री म आज जगत् भूल गए हैं। बालक की न्यायीं आनन्द और चपलता से परिपूर्ण हैं। स्वभाव-गम्भीर श्री म हैं आज वाचाल। अति आग्रह से एक-एक तीर्थ का नाम दस-दस बार ले रहे हैं। भक्तों से कह रहे हैं, ''यह देखिए, महाप्रसाद ठाकुर ने भेज दिया है। दर्शन, स्पर्शन और सेवन करिए। यह दर्शन कीजिए जगन्नाथजी का महाप्रसाद, यह रामेश्वर का। यह कन्याकुमारी का— यह माँ का प्रसाद। यह द्वारकानाथ का प्रसाद। यह हिमालय के केदारनाथ और बदरी-नारायण का महाप्रसाद, यह विश्वनाथ का नकुलदाना।''

अब तक बहुत भक्त आ गए हैं। डॉक्टर, शुकलाल, दोनों जितेन, अमृत और योगेन। विनय, जगबन्धु, छोटे नलिनी, रमेश और नायेब प्रभृति आए। कटिहार से भी एकजन आए। उन्होंने आज ही स्वामी सारदानन्दजी से दीक्षालाभ की है। संन्यासी के संग भी और एकजन भक्त आए हैं। श्री म के अनुरोध से संन्यासी ने दो गाने गाए। एक ठाकुर का और एक का भाव है, ''हरि आओ, हृदय में बैठो। तुम्हारे रातुल (लाल) चरण अश्रुजल से धो दूँगा''। साधु हैं गायक। गाना सुनकर श्री म कह रहे हैं, ''ठाकुर कहा करते, 'गाने से भी उन्हें पुकारा जाता है'।''

संगी भक्त— 'कथामृत' में है, आपने ठाकुर से कहा था, आज क्या और गाना होगा?

श्री म *(उच्च हास्ये)*— हाँ, उन्हें तो फिर कहा नहीं जाता ना कि एक गाना हो जाए। जभी इस प्रकार कहा था। कुछ क्षण सोच कर ठाकुर बोले, 'न, आज और नहीं होगा। कोलकता बलरामबसु के घर जाऊँगा, वहाँ होगा, तुम आना।' बोलते ही कहा, 'क्या कहा, बताओ, देखूँ।' मैंने कहा, 'बलराम

बाबू के घर, बोसपाड़ा, बागबाजार में जाऊँगा। वहाँ जाकर सुनूँगा गाना।' तब कहा, 'हाँ, वहाँ पर आना।'

श्री म *(सब के प्रति)*— साधु, भक्त, अवतार, ये जाकर ही तो तीर्थ उद्धार करते हैं। शंकर ने केदार, बद्री उद्धार किया था, चैतन्य देव ने वृन्दावन। धान के खेतों में खड़े-खड़े रोया करते। पूर्व की (श्रीकृष्ण रूप की) बातें स्मरण होती थीं कि ना। और भाव में कहने लगे, 'यही राधा-कुण्ड है।' फिर उसी स्थान को खोद कर आज का राधा-कुण्ड हुआ। ब्रजवासी लड़के माताओं के पास जाकर कहते हैं, गाने में है, 'देखे एलाम एक नवीन संन्यासी गौरवर्ण। आमादेर कानाइयेर मत, कांदछे तरुर डाल धरे।' (एक नवीन गौरवर्ण संन्यासी देख कर आया हूँ। वृक्ष की डाल पकड़ कर, हमारे कान्हाई की तरह रोता है।) लुप्त तीर्थ व्यक्त करते हैं और फिर नूतन तीर्थ की सृष्टि करते हैं।

श्री म *(साधु के प्रति)*— ठाकुर कहा करते, भक्त का हृदय है भगवान का बैठकखाना। अन्दर सब घुस नहीं सकते। बैठक में सब ही जा सकते हैं। अवतार को सब ही पहचान नहीं सकते, किन्तु साधु के रूप में, सिद्ध पुरुष के रूप में, परमहंस, भक्त इन समस्त रूपों में पा सकते हैं। ये ईश्वर, अवतार हैं अन्दर का हिस्सा, वहाँ घुसना कठिन है। वे permit (अनुमति) न दें, तो वहाँ जाया नहीं जाता। *(स्वगत)* वे कौन हैं रे भाई— जिनकी बात से, चिन्तन से मन स्थिर हो जाता है? जिनका एक गाना सुनकर जगत् भूल हो जाता है; योगी की अवस्था हो जाती है, वे हैं कौन?

(भक्तों के प्रति)— योगी की अवस्था माने जिनका मन उनके पादपद्मों में सर्वदा स्थिर होकर रहता है— 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।' इसे ही समाधि कहते हैं। योगी— जिसने मन को वशीभूत कर लिया है, भोगी— जो मन के वशीभूत है।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— आज हमारा कितना सौभाग्य! यहाँ बैठे-बैठे ही कितने तीर्थ करवा लिए। उनके महावाक्य में है— 'शरीर कुछ नहीं करता, मन ही सब'। वेश्यालय में जो गया था, उसका वैकुण्ठ में गमन हुआ; और जो भागवत सुनता था, वह गया नरक में— दो मित्रों की गल्प सुनाकर

यही बात ही कहा करते ठाकुर। शरीर तो सर्वदा सब स्थानों में जा सकता नहीं, मन को भेजने से ही हुआ। बूढ़ा हो गया है, जा सकता नहीं, जभी इन्हें भेज दिया है। इनके मुख से सुनकर उस विषय का ध्यान करने से प्राय: जाने का ही काज होता है। सोलह आना न हो, चौदह आना हो जाता है। किसी-किसी का सोलह आना ही हो जाता है— जिनकी है खूब powerful imagination (सुतीक्ष्ण कल्पनाशक्ति)। तभी तो मैं तीर्थ, महापुरुष, तपस्वी— इन सब की बातें सुनता हूँ और खोज-खोज कर प्रसाद लेता हूँ। आज हमारा सौभाग्य, घर बैठे-बैठे ही सब तीर्थ हो गए।

20 अगस्त, 1923 ईसवी।

(3)

आज है झूलन एकादशी*। आज भक्तों की बैठक द्वितल के रास्ते के पास के कमरे में लगी है। गत कल के सब ही आए हुए हैं। अधिक आए हैं शची, मणि और विरिंचि। अब रात्रि आठ। शची को भागवत पाठ में निरत करके श्री म आहार करने गए। आकर सुना, ध्रुवलोक की बात हो रही है।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ध्रुव लोक की बात से मिहिजाम की बात मन में आ गई। जामुन के तले बैठ कर हम देखा करते तारका मण्डल, सप्तर्षि। सप्तर्षि ध्रुव के चारों ओर घूमते हैं। यहाँ भी हैं, किन्तु देखने की सुविधा नहीं। यह स्थान मन को छोटा करे रखता है। *(तर्जनी द्वारा कमरा दिखाकर)* इसी compartment (गृहस्थ आश्रम) में।

''वहाँ अर्थात् निर्जन में बड़ी चीज देखी जाती है। 'ब्रह्म' माने बड़ी चीज। निर्जन में जाकर ऐसा उद्दीपन होता है। तब लगता है मानो एक हंडिया की मछली सागर में जा पड़ी है। यहाँ पर सब समय कामिनी-काञ्चन के घेरे के भीतर रहकर मन छोटा हो जाता है। इस environment (वातावरण) में अधिक रहते-रहते adaptation (अभ्यास) हो जाता है। लगता है, ठीक

---

* शुक्ल पक्ष की एकादशी से प्रारम्भ होने वाला बाल-कृष्ण के पालने को झुलाने का उत्सव।

ही हूँ। मन चीनी स्त्रियों के पैरों जैसा हो जाता है। शैशव से ही उनके पैर लोहे के जूतों में बाँध कर रख देते हैं। जभी वैसे छोटे ही रहते हैं सारा जीवन। इसे सौन्दर्य का चिह्न कहते हैं, किन्तु इधर जो छोटे हो गए हैं, उधर लक्ष्य ही नहीं। मन भी संसार में रहकर छोटा हो गया है।

“मथुरबाबू की कोठी से रात को दो बजे के समय ठाकुर चले आए थे। कहाँ जान बाजार और कहाँ दक्षिणेश्वर! मथुरबाबू ने कहा, ‘बाबा, इतनी रात में गाड़ी कैसे जुतवाऊँ? वे सब सोए हुए हैं।’ ‘मैं पैदल जाऊँगा’; कहते ही चल दिए। तब फिर क्या करें, उसी समय ही गाड़ी करके भेजा। जब तक भक्ति का बन्धन था, तब तक रहे। लगता है कोई त्रुटि आ गई, तभी चले आए। कामिनी-काञ्चन के भीतर फिर रह ही सके नहीं। जब तक रहे थे, केवल भक्ति के जोर पर रहे थे।”

श्री म— यह भी क्या वस्तु है— यही ध्रुव जिसके चारों ओर सप्तर्षि घूमते हैं? अथवा घूमते भी क्यों हैं? मैं देखा करता और सोचा करता। *(मोहन को दिखा कर)* इसको इन्होंने भी देखा है। *(मोहन के प्रति)* कैसे भला? *(भक्तों के प्रति)* आज है झूलन, श्रीकृष्ण की कथा होना ही उचित होगा, उनका उद्दीपन होगा।

यह कहते ही गाना गाने लगे :

बंशी बाजिलो विपिने, तोरा जाबि कि ना जाबि बोलो।
श्याम पथे दाँड़िये आछे, आमार तो ना गेले नय॥

[वन में बंशी बजी है, तुम चलोगी या नहीं, बताओ। श्याम मार्ग में खड़े हैं, मुझ से तो बिना गए रहा जाएगा नहीं।]

श्री म— रात दस-ग्यारह का समय था। बिछौने पर बैठ कर ठाकुर ने गाया था। असुख था तब। *(छोटे नलिनी के प्रति)* भागवत-पाठ करें, रास पञ्चाध्याय। आज गोपियों की कथा पढ़ना अच्छा। गोपी-गीता।

पाठक *(पढ़ रहे हैं)*— गोपियाँ कह रही हैं, हे सखे, तुम वास्तव में यशोदा की सन्तान नहीं। सब प्राणियों की अन्तरात्मा हो तुम। विश्वरक्षा के निमित्त भगवान ब्रह्मा की प्रार्थना पर तुम यदुकुल में उत्पन्न हो गए हो।

श्री म— अखण्ड सच्चिदानन्द, जो वाक्य मन के अतीत, वे ठीक मनुष्य की न्यायीं होकर आए, जगत् के कल्याण के लिए। प्रथम-प्रथम नन्द-यशोदा श्रीकृष्ण को पुत्र के रूप में ही जानते। किन्तु अब उनकी कृपा से उन्हें ईश्वर रूप से पहचान पाए हैं। जभी जगत् की अन्तरात्मा कह रहे हैं उन्हें। गोपियों ने भी पहचान लिया था। जभी तो कह रही हैं, 'हम तुम्हारी अशुल्क दासियाँ।' अर्थात् हम हैं तुम्हारी बिना पैसे की दासियाँ— महीना नहीं।

''कथामृत का प्रथम मन्त्र भी गोपियों के इस समय की ही उक्ति है— 'तव कथामृतम्।' रासमण्डल से अन्तर्धान हो गए भगवान, गोपियाँ एकदम विरह में उन्मादिनी हो गईं। उनकी बात भावते-भावते देह ज्ञान विलुप्त हो गया— ऐसा प्यार! उसी भगवान का 'झूलन' चल रहा है। उनके विषय में कुछ गाने हो जाएँ।''

स्वयं ही गाने लगे :

गाना— आमि वृन्दाबने बने बने धेनु चराबो।
[मैं वृन्दावन में वन-वन में धेनु चराऊँगा।]

गाना— केशव कुरु करुणा दीने कुंज काननचारी।
माधव मनमोहन, मोहन मुरलीधारी॥
(हरिबोल हरिबोल हरिबोल बोलो मन आमार।)

व्रजकिशोर कालीय हर कातर भय-भंजन।
नयन बाँका बाँका शिखिपाखा, राधिका हृदिरंजन।
गोवर्धन धारण, बनकुसुमभूषण, दामोदर कंसदर्पहारी।
श्याम रासरस बिहारी।
(हरिबोल हरिबोल, हरिबोल, बोलो मन आमार।)*

21 अगस्त, 1923 ईसवी।

---

* अर्थ सहित यह सम्पूर्ण गान ''श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत'' (हिन्दी) के द्वितीय संस्करण, तृतीय भाग, पृष्ठ 297 पर है।

(4)

मॉर्टन स्कूल, द्वितल का पश्चिम का कमरा। रात्रि अब प्राय: आठ। श्री म जमीन पर दक्षिणास्य बैठे हैं। सम्मुख तीनों ओर मनोरंजन, छोटे नलिनी, शची, वीरेन, योगेन, छोटे जितेन, डॉक्टर, विनय प्रभृति भक्तगण उपविष्ट हैं। जगबन्धु वेदान्त सोसाइटी से वक्तृता सुनकर आए हैं। आज सारा दिन वृष्टि।

छोटे रमेश भागवत का पाठ कर रहे हैं। क्षुधातुर होकर श्रीकृष्ण ने याज्ञिकों के पास अन्नभिक्षा के लिए भेजा। विप्रों ने इनकार कर दिया। द्वितीय बार याज्ञिक पत्नियों के पास याचना करने पर वे चतुर्विध अन्न लेकर श्रीकृष्ण के पास आईं और परितोषपूर्वक भोजन करवाया। विप्रपत्नियों ने श्रीकृष्ण की कृपा से ब्रह्मज्ञान लाभ किया। तब याज्ञिक-गण पश्चाताप करने लगे।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— जभी तो ठाकुर भक्तों के घर में जाकर माँग कर खाया करते। नन्द बोस के घर गए थे। वे नहीं जानते थे ये सब कुछ, तभी माँग कर खाया। अपने आप ही कहा, 'किछु मिष्टिमुख कराते होय।' (कुछ मीठा-मुँह करवाने से हो।) भक्तों के पास से भगवान इस प्रकार माँग कर खाते हैं। उसका अर्थ है उन पर कृपा करेंगे।

''याज्ञिक पत्नियों की निष्काम भक्ति थी, जभी वे सम्वाद पाते ही अन्न लेकर दौड़ी आईं। याज्ञिकगण थे सकाम भक्त। तभी तो जब तक यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हुआ, अन्न दिया नहीं। उन्हें यह ज्ञान नहीं था कि यज्ञेश्वर भगवान स्वयं शरीर धारण करके अन्न माँग रहे हैं। उन्हीं की महामाया ने आच्छन्न कर रखा था। उनका दोष नहीं। पीछे पत्नियों को देख कर उन्हें चैतन्य हुआ, फिर पश्चाताप करने लगे। किन्तु स्त्रियों का कोई भी उच्च संस्कार नहीं था। एक मात्र निष्काम प्यार से ईश्वर लाभ किया। वे अब ईश्वर-तुल्य हैं— ठीक-ठीक भक्त और भगवान एक। जभी उनकी कृपा से उनके पतियों को भी बोध हुआ, श्रीकृष्ण भगवान हैं।

''नन्द बोस के घर पर ठाकुर को वे लोग पहचान नहीं सके। वे समझे

थे दक्षिणेश्वर का साधु आया है। साधु यदि गृहस्थ के घर आए तो सामर्थ्य अनुसार उसकी सेवा करनी चाहिए, यह भी वे जानते नहीं थे। जभी माँग कर खाया। इससे उन्हें शिक्षा होगी। उनको— साक्षात् ईश्वर नर रूप में जो आए हैं— वे किस प्रकार पहचानेंगे उनके बिना पहचनवाए?

''जभी ठाकुर कहा करते, 'बात तो है यही, सच्चिदानन्दे प्रेम।' उनको प्यार करना। विप्र-पत्नियों ने इसी प्रेम के द्वारा ईश्वर-लाभ किया। उन्होंने मन-ही-मन में श्रीकृष्ण को आलिंगन किया था। मन पड़ा रहता था श्रीकृष्ण में, शरीर के द्वारा गृहकर्म करतीं। जभी ठाकुर दो बन्धुओं की गल्प कहा करते। उसका सार है, 'मन ही सब'।''*

श्री म *(डॉक्टर के प्रति)*— खूब कठिन है घर में रह कर ईश्वर-लाभ। नाना आसक्तियों में जड़ित होना पड़ता है। फिर भी उनकी इच्छा से सब कुछ हो सकता है। एक कहानी है, एक व्यक्ति ऊँट खोजने गया चौमंजिले की छत पर। *(सब का हास्य)* अर्थात् ऊँट यदि चौमंजिले की छत पर मिल सकता है, तो भगवान को भी घर में रह कर पाया जाएगा। इतना कठिन होने के कारण ही तो ठाकुर कहा करते, 'नित्य सत्संग और व्याकुल प्रार्थना; और बीच-बीच में निर्जनवास चाहिए।'

श्री म *(विनय के प्रति)*— अच्छा, विनय बाबू कितने दिन हो गए मठ में जाते हुए? मठ में जाकर उनका काज करना चाहिए। मठ में जाकर पूछना चाहिए क्या मैं आपका कोई कार्य कर सकता हूँ? ठाकुर-दर्शन करने गए, और मन्दिर में चट से प्रणाम करके चले आए— इससे क्या फिर होता है?

''एक भक्त मठ में गए साधु-दर्शन करने, वे थे तब कार्य में व्यस्त। 'अच्छा, आप कर लें, मैं अभी आता हूँ।' यह कह कर चला आया। *(सब का हास्य)*। सुधीर बाबू, घर कौन चला आया था, जब साधु अलमारी नीचे उतार रहे थे। उनका कितना कष्ट का अन्न है, वह तो ग्रहण कर लिया और तनिक काज के समय पलायन। उनकी सेवा जो कर पाते हैं, वे तो हैं धन्य। ठाकुरबाड़ी के आँगन में जो झाड़ू दे, जो बर्तन माँजे, वह तो धन्य। मिलता ही

* भागवत-पाठ में और वेश्यालय में जाने वाले दो बन्धु— प्रथम गया नरक में, दूसरा वैकुण्ठ में; मन के कारण।

है किसे वह काज?

“मठ के एक साधु भारत के समस्त तीर्थ— चारधाम करके लौटे हैं। यहाँ आए थे उस दिन। उन्होंने बताया, ‘मैं जहाँ भी गया, खाना-पीना राजाओं की न्यायीं पाया।’ मैंने कहा— वह क्या फिर उनके संन्यास के लिए मिला? कितने बड़े घर का व्यक्ति, किसके साथ सम्बन्ध! ठाकुर का चिन्तन करते हैं कि ना, वे हैं उनके आश्रित। जभी तो ऐसी पूजा पाई सर्वत्र। साक्षात् भगवान अवतार होकर आए। ठीक-ठीक जो चिन्तन करते हैं, वे सर्वत्र पूजित होते हैं।”

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर एक गल्प बतलाया करते— पाँच वर्ष का शिशु दुर्गा-पूजा वाले घर गया निमन्त्रण की रक्षा करने। कर्त्ता उसका खूब आदर करने लगे। चाँदी की थाली में दो तीन भाँत के ‘सन्देश’। वे लोग सन्देश रोज ही खाते हैं, कर्त्ता जानता है। सोने की कटोरी और गिलास। अपने-आप पास बैठ कर कर्त्ता खिलाते हैं और बीच-बीच में प्यार से पूछते हैं— ‘अरे हाँ, नन्हे, तुम्हारे दादाजी ठीक तो हैं। हवा खाने जाते हैं?’ *(हास्य)* और फिर खाने के समय कितने नौकर-चाकर खड़े थे— किन्तु स्वयं गोदी में उठाकर गाड़ी में बिठा दिया। क्यों किया ऐसा? उसकी खातिर, या दादा महाशय का नाती जान कर? दादा महाशय सुनकर खुश होंगे, जभी किया। यह सम्मान दादा महाशय का प्राप्य था।

“इन साधु ने जो सर्वत्र आदर पाया, उसमें फिर आश्चर्य ही क्या? कितने बड़े घर का है लड़का! उस घर की चाकरी ही पाता है कौन? जो पावे सो धन्य— महासौभाग्य उसका! जभी मठ में जाकर साधुओं की सेवा करनी चाहिए।”

मोहन— एक बार मठ में उत्सव पर दिन-रात काम करते-करते सब ही थक गए। यहाँ के भक्तों का तो था उससे भी बुरा हाल। हम सन्ध्या के समय बैठ कर जरा विश्राम कर रहे थे। केष्ट लाल महाराज आकर सस्नेह कहने लगे, ‘जाओ, आँगन को जरा धो दो; तभी ठाकुर का भोग बनेगा। और कहूँ भी तो किससे, कोई करेगा नहीं।’

श्री म *(आह्लाद से)*— आहा, ये क्या केष्टलाल महाराज बोले थे— ठाकुर ही बोले। दूसरे की सेवा करो, अपनी सेवा मत लो— यही बात ठाकुर ने कही इस घटना से। ठाकुर एक गाना गाया करते थे।

श्री म भावोन्मत्त हो गाने लगे :

गान— आमि मुक्ति दिते कातर नइ गो
शुद्धा भक्ति दिते कातर होई ॥

भक्तिर कारणे नन्देर भवने,
नन्देर बाधा माथाय बोइ ॥

आमार भक्ति जेबा पाय,
से जे सेवा पाय होय त्रिलोक जयी।

[श्रीकृष्ण कह रहे हैं, मैं मुक्ति देता हुआ कातर नहीं रे भाई, शुद्धा भक्ति देता हुआ कातर होता हूँ। भक्ति के कारण नन्द के भवन में मैं नन्द की 'बाधा' (पादुका, खड़ाऊँ) सिर पर उठाता हूँ। मेरी भक्ति जो प्राप्त कर लेता है, वह मेरी सेवा प्राप्त करता है। उससे वह त्रिलोकजयी हो जाता है।]

श्री म— वे जिनकी सेवा ग्रहण करते हैं, समझना चाहिए उनके प्रति उनकी कृपा हो गई है।

(क्षण भर मौन रह कर)— एक दिन ठाकुर ने कहा था, 'चीनी के रस से मठ (हटरी), हाथी ये सब मिठाइयाँ तैयार होती हैं। और फिर चूरा करने से वही चीनी का रस हो जाता है।' ये सब कुछ ही वे— विश्वव्याप्त। उनमें से ही आता है, उनमें ही जाता है। सब की खबर रखते हैं वे।

''सुरेश मित्र की गाड़ी कोलकता जा रही है। भक्तों ने कहा— 'भीतर स्थान नहीं है तो छत पर बैठ जाएँगे।' ठाकुर झट बोल उठे, 'यह क्या रे, लगता है तुम्हारा उस ओर ख्याल ही नहीं— घोड़ा जो मरेगा।' वे सर्व भूतों के संग एक होकर रह रहे हैं कि ना, जभी ऐसी बात कही। पत्ता तोड़ नहीं सकते थे— फूल और बेलपत्ते तोड़ना तक बन्द हो गया था। फूलों के वृक्षों को विश्वनाथ की पूजा में निवेदित एक-एक स्तवक समझते— देखते incessantly (अविरत) उनकी पूजा हो रही है! जभी तो मैं डॉक्टर बाबू से

कहा करता हूँ, आध घण्टे से अधिक रहना हो तो गाड़ी विदा कर दें, ट्राम में जाएँ। नूतन घोड़ा है, उसे कष्ट होगा— और फिर साइस को भी कष्ट होगा।

22 अगस्त, 1923 ईसवी।

(5)

श्री म चार तल की छत पर बैठे हैं। नूतन चार जन भक्त आए हैं। उनके संग ईश्वरीय कथा हो रही है। अब छः बजे हैं। भक्तगण चले गए नीचे, द्वितल के पश्चिम के कमरे में भक्तों की बैठक जमी हुई है। कुछ काल परे श्री म इसी कमरे में बैठ गए। शुकलाल, डॉक्टर, मनोरंजन, विनय, छोटे नलिनी, छोटे रमेश, बड़े जितेन, छोटे जितेन, विरिंचि, योगेन, मणि, दुर्गापद, यतीन नाग, सुधीर, शान्ति, जगबन्धु प्रभृति भक्त लोग आए हुए हैं। गुरु ट्रेनिंग स्कूल के एक शिक्षक भी आए हुए हैं। इन्होंने नाग महाशय का संग किया हुआ है। श्री म उनसे कहने लगे : ''चलिए, हम वहाँ जाकर बैठकर बातें करें। ये सब अब जप-शप करेंगे।'' यह कहकर वे जाकर बरामदे में बैठ गए। श्री म की यह बात सुनकर कमरे के बीच में छोटे जितेन और एकजन भक्त ध्यान करने बैठ गए। तब फिर सब ध्यान करने लगे।

अब साढ़े आठ। श्री म कमरे में आकर भूमि पर बैठ गए। सब शान्त। क्षण काल परे वे ईश्वरीय कथा कहने लगे।

श्री म— ठाकुर बतलाते, अंतरंग और बहिरंग दो श्रेणी के भक्त हैं। अन्तरंग जो हैं, उन्हें चैतन्य सहज ही हो जाता है; बहिरंगों को लेशमात्र अहंकार रहता है। उनका भाव होता है कि तपस्या बिना किए ज्ञान लाभ नहीं होगा। ठाकुर उपमा दिया करते, नाट-मन्दिर के भीतर के स्तम्भ और बाहर के स्तम्भ। भीतर के स्तम्भ जैसे अन्तरंग, बाहर के बहिरंग। किन्तु सब ही हैं स्तम्भ। अन्तरंगों से काम करवाएँगे, जभी इतना प्यार किया करते। अमेरिका, यूरोप कितने ही स्थानों पर काज करवा रहे हैं।

श्री म *(मोहन के प्रति)*— एक दिन रात नौ बजे; घर में कोई नहीं।

ठाकुर पश्चिम के बरामदे में जाकर खड़े हो गए। सम्मुख गङ्गा कल-कल रव से बही जा रही है। कहीं भी कुछ नहीं, हठात् बोल उठे, 'देखो, केउ जेनो मने ना करे, आमि ना होले चलबे ना।' (देखो, कोई अपने मन में यह न सोचे कि मेरे न होने से चलेगा नहीं)। झट चुप, और कोई बात ही नहीं। तब इसका अर्थ समझ नहीं पाया था। अब कुछ-कुछ समझ आता है। जल के कितने ही तो नल होते हैं। एक नल के टूट जाने से क्या जल की मशीन बन्द हो जाती है? इंजीनियर टूटा हुआ बदल कर और एक ठीक लगा देता है। उनके अनेकों नल हैं। एक टूटे तो नूतन और एक बिठा देंगे। जिससे भक्तों को अहंकार न हो जाए— मेरे बिना चलेगा नहीं।

श्री म *(दुर्गापद के प्रति)*— और एक दिन, पूर्णिमा। कलुटोला में नवीनसेन* की बाड़ी में ठाकुर गए। केशवसेन का शरीर चला गया था। मैं तब श्यामपुकुर में रहा करता। कुछ risk (विपद्) लेकर घर में सब के सो जाने पर चला आया। नवीनसेन की बाड़ी के चबूतरे पर बैठ कर सारे गाने सुनता रहा। ठाकुर थे ऊपर। आहा, कैसा नृत्य! बातें सुन नहीं पाया। गाने सब सुने थे। उनके घर के सब ही सोए हुए थे। मैं जो नीचे बैठा हूँ, कोई भी जान नहीं पाया। तब फिर रात को बारह बजे अकेला लौटा। आहा, क्या चाँद, कोजागरी पूर्णिमा का! आज भी मन में हो रहा है जैसे अभी उसी दिन की ही बात है।

"परले दिन सब बैठे हुए थे— एक कमरा-भरा लोग। मैं था कुछ दूरी पर। ठाकुर निकट आकर एकाएक कहने लगे, 'गोपने खूब भालो।' वे जान गए थे मैं आया था। कहने लगे, गोपन में ईश्वर को पुकारना चाहिए— यह बहुत अच्छा है। मुझे encourage (उत्साहित) किया।"

श्री म आहार करने ऊपर गए। भक्तगण 'कथामृत'-पाठ श्रवण करने में निरत। जन्माष्टमी 1885 पाठ चल रहा है— गिरीश घोष, ठाकुर को पूर्ण-ब्रह्म कह कर स्तव कर रहे हैं। एम०डी० पास डॉक्टर भगवान रुद्र की बातें भी हुईं।

श्री म को नीचे आने में तनिक देर हो गई, ऊपर एक बिल्ली के बच्चे की

---

* यह सेन परिवार है श्री म का सम्पर्कीय ससुराल। केशवसेन महाशय थे श्री म के सम्बन्धी।

सेवा कर रहे थे। स्वयं उसे दूध पिला रहे थे। कई दिन से यह बच्चा अतिथि है। अपने-आप ही आकर उपस्थित हो गया था। तब से उसको खिलाने का भार दिया था यतीन नाग के ऊपर। उसने आज खिलाया नहीं। इसलिए आप ही खिला रहे थे।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— आने में देरी हुई। घर में एक अतिथि आया हुआ है, उसी की सेवा हो रही थी। जिनके ऊपर भार था, वे भूल गए भात देना। जभी दूध पिलाना पड़ा। अतिथि है एक बिल्ली का बच्चा। इतना-सा ही तो है, किन्तु इस बीच आत्मरक्षा कितनी सीख गया है! कैसा आश्चर्य, क्योंकर आ गया?

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— सुन ली 'कथामृत' में डॉक्टर रुद्र की बात? ठाकुर ने बतलाया था, बैल की जीभ की तरह पकड़ कर खींच लिया। शायद डॉक्टर ने सोचा, मैं ठीक तरह से देख लूँ। किन्तु रोगी का जो मरण हो रहा है, उधर लक्ष्य ही नहीं। डॉक्टर लोग, विशेष करके जो छुरी चलाते हैं, वे heartless (निर्दय) हो जाते हैं। सर्वाधिकारी के दल के लोग, जरा सा कुछ हुआ, झट कहते हैं, आओ काट देता हूँ। हमारी एक आत्मीया को उरुस्तम्भ (जंघा पर फोड़ा) हुआ था। बड़े-बड़े सर्जन कहने लगे, amputation (दूषित अंग काटना) पड़ेगा। लड़की ने कहा, जरूरत नहीं, मैं ऐसे ही मर जाऊँगी। अन्त में कविराज से ठीक हो गई।

''वार्ड साहब ने लेक्चर दिया था 'The operation was successful, unfortunately the patient succumbed.' *(सब का उच्च हास्य)*— काँट-छाँट तो ठीक हो गई थी, किन्तु रोगी सह न सका, इसलिए मर गया। नन्द हालदार ने बताई थी यह बात। काटना तो भाई ठीक रहा, रोगी ही जो उधर हो चुका, उसका क्या करना!

''एक स्त्री-भक्त ने अन्य एक स्त्री-भक्त को लिखा था सान्त्वना देते हुए, 'बहन, तुम चिन्ता न करो। वे डॉक्टर हैं, छुरी चलाते हैं। उनके हृदय नहीं है। उनकी तरफ ताकने से नहीं होगा। ईश्वर को पुकारो। वे उन्हें सुमति देंगे। तुम्हारा दुःख दूर करेंगे।' इस स्त्री-भक्त का पति डॉक्टर है।

पति साधुसंग करता है पत्नी को 'देश' (घर) भेज कर'।''

अब रात्रि दस। भक्तगण विदा ले रहे हैं। डॉक्टर कार्त्तिक बक्शी ने ज्यों ही नमस्कार किया, श्री म कल्पित विस्मय से बोल उठे, ''अरे डॉक्टर बाबू, आप यहाँ पर थे!'' *(श्री म और सब का गम्भीर हास्य)*।

24 अगस्त, 1923 ईसवी।

(6)

मॉर्टन स्कूल। द्वितल का पश्चिम का कमरा। अब रात्रि पौने आठ— भाद्र मास। श्री म नित्य के भक्तों के संग ध्यान कर रहे हैं। मुकुन्द आए हैं। वे हैं रामपुर हाट में रेक्टर। और भी एक नूतन युवक-भक्त आए हैं। ध्यानान्ते युवक श्री म को तनिक बाहर आने का अनुरोध करने लगे। श्री म और युवक रास्ते के ऊपर के बरामदे के उत्तर प्रान्त में खड़े होकर दीर्घ काल तक कुछ परामर्श करते रहे। भक्त-गण अधीर हो उठे। यही भावना है कि श्री म का शरीर है अस्वस्थ, इससे असुख बढ़ जाएगा। और भी कुछ काल परे दोनों ने गृह में प्रवेश किया। श्री म के फर्श पर बैठते ही युवक पैर की धूल लेकर विदा हुए। क्षणकाल पीछे बातें करने लगे।

श्री म *(जनैक युवक के प्रति)*— इस youngman (युवक) में कैसा तेज है, म्यान से निकली तलवार! विवाह किया है, घर में सोलह-सत्रह वर्षीया पत्नी। श्वसुर ढ़ाई हजार रुपया महीना पाता है— सुपरिण्टेण्डेण्ट इन्जीनियर। भाई सब अलीपुर के वकील, बाप रिटायर्ड। माँ दो वर्ष हुए मर गईं। आप यूनिवर्सिटी साइन्स कॉलेज में लेक्चरर थे। पी.आर.एस. के लिए भवानीपुर की ओर एक बाग में रहकर पढ़ाई-लिखाई किया करते। किन्तु पढ़ाई वैसी नहीं होती थी— खाली ईश्वर-चिन्तन किया करते। कल होगी झूलन पूर्णिमा। इस शुभ दिन में संसार छोड़कर चला जाएगा। तीव्र वैराग्य हुआ है। मैंने suggestion (परामर्श) दिया है आप कुछ दिन प्रतीक्षा करें एवं और भी किसी-किसी से consult (परामर्श) करें। कहता है, ''नहीं,

कल पूर्णिमा है, कल ही जाऊँगा।'' कैसी रोख!

''कोई-कोई है जिन्हें संसार का कोई भी बन्धन नहीं; तब भी होता नहीं— चिउड़ा भोग।[1]

''विवाह जिन्होंने नहीं किया, उनके लिए है बड़ा ही chance (सुयोग)। ब्याह न करने से ही world of difference (आकाश-पाताल का अन्तर)। A world of difficulties (दुखपूर्ण संसार) से बच गया। *(शची के प्रति)* क्या कहते हो शची बाबू, पन्द्रह वर्ष पश्चात् होगा ब्याह-श्याह। अभी ठीक नहीं। यही जो लड़का जा रहा है, इसका किस प्रकार का वैराग्य! पूछने से पता लगा, पत्नी अनुगत है। कहता है, 'भगवान उसे सुमति देंगे। मैं फिर करूँ भी क्या? उसे खाने-पहनने का कष्ट नहीं होगा'।''

श्री म भाव के साथ गाना गाने लगे :

गाना— हरे मुरारे, हरे मुरारे, हरे मुरारे।

एई यौवन प्रेमतरंग रुधिबे के॥
भेंगे बालिर बाँध पुराबो मनेर साध।... इत्यादि

[हरे मुरारे, हरे मुरारे, हरे मुरारे, इस यौवन-प्रेम-तरंग को रोकेगा कौन? बालू का बाँध तोड़ कर मैं मन की साध को पूरी करूँगा।]

''इसी युवक की भी यही अवस्था है— 'भेंगे बालिर बाँध पुराबो मनेर साध'।''

25 अगस्त, 1923 ईसवी।

(7)

सन्ध्या हुई-कि-हुई। इसी घर में बैठे हुए श्री म एक आगमनी[2] गीत गा रहे हैं। शरत् काल आरम्भ हुआ है। जभी माँ दुर्गा का उद्दीपन हो रहा है।

---

1 चिउड़ा पानी में भीगने पर जैसा नर्म हो जाता है, वैसा ही अति दुर्बल।

2 दुर्गा-पूजा के पूर्व माँ शक्ति के आह्वान करने का गीत।

केमन करे परेर घरे छिलि उमा बोलो मा ताई,
कतो लोके कतो बले शुने प्राणे मरे जाइ ॥
चिताभस्म मेखे अंगे जामाइ बेड़ाय महारंगे
तुइ नाकि मा तारइ संगे सोनार अंगे माखिस् छाइ ॥
केमने मा धैर्य धरे जामाइ नाकि भिक्षा करे;
एबार निते एले परे बोलबो उमा घरे नाइ ॥

[उमा जी पीहर आईं हैं। दक्षपत्नी बेटी से कह रही है— अरी उमा, बता कि तू पराये घर में कैसे रहती रही है? लोग तो न जाने क्या-क्या बोलते रहते हैं। सुन-सुन कर मेरा तो प्राण ही निकला जाता है। (सुना है) शरीर में चिताभस्म लेपकर जमाई बड़े आनन्द से घूमता है, और तू भी बेटी उसके संग में अपने इस सोने की सी देह में राख लगाती है? जमाई भिक्षा करता है, ये सुनकर मैं माँ होकर कैसे धीरज धरूँ? अब की बार जब तुझे ले जाने के लिए आएगा तो मैं कह दूँगी, उमा घर पर नहीं है।] — श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत 4:19:4

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— स्वामीजी (विवेकानन्द) ने नया-नया ही सीखा था यह गाना। ठाकुर को पता लगने पर पूछा, 'तूने क्या आगमनी सीखी है, गा ना।' स्वामीजी गा रहे हैं और ठाकुर पोस्ता (बाँध) पर खड़े-खड़े समाधिस्थ! दाएँ हाथ नहबत, बाईं ओर गंगा। माँ को वात्सल्य भाव से देखने पर यह समाधि। देवीपक्ष— सन्ध्या हुई-कि-हुई।

भक्त भूपति का भाई *(विनीत भाव से, हाथ जोड़ कर)*— जी, मेरी स्त्री ने स्वप्न में दीक्षा पाई थी। किन्तु निद्रा भंग होने पर मन्त्र स्मरण कर पा सकी नहीं। उसके उद्धार का अब उपाय क्या?

श्री म *(गम्भीर भाव में)*— बड़ी ही कठिन बात है। मठ में नहीं गए क्या? मठ में स्वामी शिवानन्द हैं, उनसे कहिएगा। मठ में कितनी बार गए?

भक्त— पाँच-छः बार।

श्री म— और एक दिन जाकर प्रणाम कर आइए। तब फिर जाकर जिज्ञासा करिएगा। प्रथम दिन चाहे नहीं।

भक्त *(संगी को दिखा कर)*— इसको परमहंस देव जी ने रात्रि को सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद किया था। किन्तु इसकी वैसी भक्ति नहीं है उनके

प्रति।

श्री म— यह है अति गुह्य बात। कृपा हुई है इनके ऊपर। वे हैं कृपामय। पुकारने से आएँगे, नहीं पुकारने से नहीं— यह बात नहीं है। वे हमारे लिए अधिक भावना करते हैं कि हम अधिक भावना करते हैं (उनके लिए)? कृपा की है उस पर।

भक्त— जी, स्वप्न में जो देव-देवी दर्शन होता है, यह सब सत्य या मिथ्या?

श्री म— ठाकुर कहा करते, सब ही सत्य— देव-देवी का स्वप्न। एक भी मिथ्या नहीं। एक दिन एकजन भक्त ने बताया, स्वप्न में अनेक देव-देवी दर्शन करता हूँ। ठाकुर यह बात सुनकर रो पड़े थे।

श्री म आहार करने ऊपर गए हैं। भक्तगण भागवत श्रवण कर रहे हैं— श्रीकृष्ण जन्म। रात्रि अब पौने नौ। श्री म का शरीर अब ठीक नहीं। जभी कुछ काल पश्चात् सब ऊपर गए विदा लेने, उन्होंने सोचा, इतनी रात में नीचे आने से असुख बढ़ेगा। किन्तु उन्होंने विदा दी नहीं। भक्तों को संग लेकर दो-मंजिले पर आ गए। बोले, रात तो ऐसी कुछ अधिक नहीं हुई है। थोड़ा सा ‘कथामृत’ सुनिए सब लोग। यह कह कर ‘कथामृत’-पाठ करने लगे— चतुर्थ भाग, एकविंश खण्ड, पञ्चम परिच्छेद।

श्री म पढ़ रहे हैं— सन्ध्या हो गई।...ठाकुर अपने आसन पर बैठे माँ का नाम कर रहे हैं और माँ का चिन्तन कर रहे हैं। कमरे में मास्टर हैं।...कियत्क्षण ध्यान-चिन्तन के परे ठाकुर अब फिर भक्तों के साथ कथा कह रहे हैं। ...श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— जो निशि-दिन उनका चिन्तन करता है, उसे सन्ध्या की दरकार नहीं— ‘त्रिसन्ध्या जे बोले काली, पूजा सन्ध्या से कि चाय।’ ...सन्ध्या गायत्री में लय होती है— गायत्री ॐकार में लय होती है। एक बार ‘ॐ’ बोलने पर जब समाधि होती है, तब पक्का!

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— यह भी है एक scene (दृश्य)। आप इसी का ही चौबीस घण्टे चिन्तन करें। इससे ध्यान हो जाएगा— उनका उद्दीपन होगा।

भक्तगण विदा ले रहे हैं।

भूपति-भक्त— गुरु महाराज के चले जाने पर कितनी ही बातें मन में उठ रही हैं।

श्री म— सब की मीमांसा हो जाएगी साधुसंग करने से। मठ में जाइए। ठाकुर ने तो मठ इसीलिए कर दिया है। रोग हटाने जैसे हस्पताल में जाते हैं, वैसे ही 'अज्ञान'-रोग हटाना हो तो मठ में जाना चाहिए। मन का रोग हटाने वाला ऐसा उत्तम हस्पताल कहीं भी और नहीं पाओगे इस युग में।

कोलकता; 27 अगस्त, 1923 ईसवी, सोमवार।
10 भाद्र, 1330 (बंगला) साल, कृष्णा द्वितीया।

एकविंश अध्याय

भारत के उठने पर जगत् उठेगा

(1)

श्री म दोतले पर पश्चिम के कमरे में बैठे हैं। अब रात्रि आठ। शुकलाल, डॉक्टर, विनय, अमृत, छोटे नलिनी, योगेन, मनोरंजन, छोटे जितेन प्रभृति हैं। स्वामी अभेदानन्द जी हैं ठाकुर के अन्यतम अन्तरंग भक्त। उन्होंने अभी-अभी कलकत्ता में सैंट्रल एवेन्यू में वेदान्त सोसाइटी स्थापित की है। श्री म की इच्छा से मोहन इस सभा के एक मेम्बर हुए हैं। मोहन उसी समिति से लौटे हैं— संग मणि और रमणी। श्री म ने कहा, ''वे पच्चीस वर्ष अमेरिका में थे। ठाकुर की प्राय: एक वर्ष सेवा की सब छोड़-छाड़ कर। और फिर अद्वितीय पण्डित। खूब तपस्या किया करते, जभी सब कहा करते थे, 'काली तपस्वी।' ऐसा सुयोग कहाँ मिलेगा? सब को ही जाना उचित। *(मोहन के प्रति)* पीछे सुनेंगे वेदान्त सोसाइटी की बात। अब 'कथामृत का scene (दृश्य) पढ़ा जा रहा है, सुनिए।''

श्री म *(कथामृत पढ़ रहे हैं)*— ठाकुर बलराम के बैठकखाने में भक्तों की मजलिस किए बैठे हैं। आनन्दमय मूर्ति।... आज पुनर्यात्रा। श्रीरामकृष्ण बलराम के पिता प्रभृति से कह रहे हैं— वैष्णवों की एक पुस्तक है 'भक्तमाल', सुन्दर पुस्तक, किन्तु एक सुरी। एक जगह पर भगवती को विष्णुमन्त्र लिवा कर ही छोड़ा। श्रीमद्भागवत— उसमें भी वैसा ही। केशवमन्त्र बिना लिए भवसागर पार होना वैसा ही है जैसे कुत्ते की पूँछ पकड़कर महासमुद्र पार होना। सब ही मतों के लोग अपने-अपने मत को ही बड़ा कर गए हैं। शाक्त भी वैष्णवों को छोटा बनाने की चेष्टा करते हैं। श्रीकृष्ण भव-नदी के खिवैये

हैं— पार लगाते हैं। शाक्त कहते हैं, 'बात सही है— माँ राज-राजेश्वरी हैं। वे क्या आप आकर पार करेंगी? उन्होंने कृष्ण को रख दिया है पार करने के लिए।' *(सब का उच्च हास्य)* अपना-अपना मत लेकर फिर अहंकार कितना! जिसने समन्वय किया, वह ही मनुष्य। अनेक ही हैं कट्टर, किन्तु मैं देख रहा हूँ सब एक ही। शाक्त, वैष्णव, वेदान्तमत 'एक' को ही लेते हैं। जो निराकार, वे ही साकार, उनके ही नाना रूप।... वेद में है जिनकी बात, तन्त्र में है उनकी ही बात, पुराण में भी उनकी ही बात— उन्हीं एक सच्चिदानन्द की बात। जिनका नित्य, उनकी ही लीला।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— हमारा मन करता है रोज एक-एक, दो-दो scene (दृश्य) पढ़ें। उससे ही उनका चिन्तन होगा। उनका ध्यान हो जाएगा। पहले दो दिन हो गए हैं। आज है तीसरा दिन।

श्री म *(मोहन के प्रति)*— कौन-कौन से हुए हैं इन दो दिनों में, इन्हें सुना दें।

मोहन— एक, ठाकुर दक्षिणेश्वर-मन्दिर में अपने कमरे में बैठे हैं। सन्ध्या अवतीर्ण हो गई है। भक्तों से कह रहे हैं, 'जो निशिदिन ईश्वर-चिन्तन करता है, उसे सन्ध्या का प्रयोजन नहीं।' ऋषिकेश में एक साधु भोर बेला से ही बाहर निकल कर एक झरने के पास खड़ा रहता है और कहता है, 'बहुत सुन्दर किया, बहुत सुन्दर किया।' उसकी अन्य बात नहीं— अन्य जप-तप नहीं। जभी निराकार हैं या साकार, ऐसी बातों की भावना करने की क्या आवश्यकता? निर्जने-गोपने व्याकुल होकर, रो-रो कर उनसे कहना चाहिए, 'हे ईश्वर, तुम हमें दिखाई दो, तुम जैसे भी हो।'

"द्वितीय— ठाकुर झाऊतला से आ रहे हैं। मास्टर और लाटू पञ्चवटी में खड़े हुए हैं। ठाकुर के पश्चिम में नवीन मेघ गगनमण्डल को सुशोभित करता हुआ गङ्गा-जल में प्रतिबिम्बित हो रहा है। उससे गङ्गा-जल कृष्णवर्ण दिखाई दे रहा है। साक्षात् भगवान देह धारण करके जाह्नवी-तीर पर विचरण कर रहे हैं— जगत् के कल्याण के लिए।"

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— पुस्तक अधिक पढ़ने में मन टिकता नहीं। ऐसे दृश्य मन में रखना सहज है। इनको भावने से भी उनका ही चिन्तन होता है।

अमृत— तब तो पुस्तक पढ़ना उचित नहीं?

श्री म— हाँ। तो भी जो पढ़ना चाहें, पढ़ें। किन्तु ठाकुर की कसौटी के साथ मिलान करके लेना उचित। शास्त्रों में बहुत असार अंश रहता है, उसे पकड़ न सका तो विपद् में पड़ना पड़ता है। चीनी-बालू में मिली हुई है। बालू फेंक कर चीनी लेना ठीक। श्रीकृष्ण ने गीता बना दी है। यह है वेदों का सार— वेद का ठीक-ठीक interpretation (भाष्य)। *(भक्तों के प्रति)*— तीन steps (पद) हैं। प्रथम— शास्त्र, द्वितीय— गुरुवाक्य और तृतीय— प्रत्यक्ष अर्थात् निजी अनुभव। गुरुवाक्य में विश्वास होते ही बहुत आगे बढ़ गया। गुरु असार छोड़, बालू झाड़, चीनी-चीनी केवल देते हैं। एकजन भक्त को ठाकुर ने बतलाया, 'आजकल अमुक खूब आगे बढ़ रहा है। उसे गुरुवाक्य पर विश्वास हो गया है।' और तृतीय है प्रत्यक्ष— माने उनके दर्शन करना। शास्त्र, गुरुवाक्य, प्रत्यक्ष— पर, पर अच्छे।

(2)

श्री म *(मोहन के प्रति)*— हाँ, अब वेदान्त सोसाइटी के लैक्चर-नोट पढ़िये।

मोहन— आज राजयोग था— 'आत्मसंयम'। छात्र प्रायः एक सौ। अभेदानन्द महाराज ने कहा, 'आत्म-संयम' माने मनसंयम— मन को वशीभूत करना! धर्मजीवन का यह है corner stone (भित्ति)। सारा जगत् जय कर लो किन्तु मन को जय कर न सके तो कुछ भी न हुआ। सुख-दुःख है मन की सृष्टि। और फिर कामक्रोधादि महारिपु— ये भी मन को अवलम्बन करके उठते हैं और मनुष्य को दुःख-कष्ट में गिराते हैं। गीता में कहते हैं भगवान—

'ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥' (गीता 2 : 62)

[जो जैसा चिन्तन करता है, उससे क्रमशः एक खिंचाव, आकर्षण आता है। फिर उसी वस्तु को पाने की इच्छा हो जाती है। बाधा पड़ने से क्रोध होता है और क्रोध से नाश हो जाता है। इसीलिए मनसंयम प्रथम दरकार।]

"अब कैसे हो यह मन-संयम? जिनका मन का संयम हुआ है

आंशिक अथवा सम्पूर्ण— उनका संग, उनकी सेवा करनी चाहिए। कोई जन यदि ताश के खिलाड़ी किसी व्यक्ति का संग करता है तो वह ताश खेलना चाहेगा। वैसे ही माताल चण्डूबाजों का संग करने से उनकी ही तरह हो जाएगा। और फिर साधु महापुरुष— इनका संग करो तो तुम भी साधु हो जाओगे। A man is known by the company he keeps (संग से मनुष्य पहचाना जाता है)। अतएव कैसा संग करना होगा, वह पहले ठीक कर लेना होगा। तुम यदि ईश्वर को चाहो, तो जिन्होंने उन्हें पाया है, किंवा पाने के लिए व्याकुल हैं— उनका संग करो। परमहंसदेव कहा करते, आग के निकट भीगा काठ रहे तो क्रमशः जल सूख जाता है, अन्त में उसमें भी आग लग जाती है। इसीलिए भक्तों को साधुसंग करना आवश्यक। इससे मन का खराब भाव दूर हो जाता है। Self control is attained when mastery over desire, anger, greed and past deeds is attained (काम, क्रोध, लोभ और पूर्व-संस्कारों को वशीभूत कर सकने पर ही मन का संयम होता है।)

"बड़े ही दुःख का विषय है, आजकल के लड़कों का कोई भी आदर्श नहीं। इसी कारण चरित्र भी गठित नहीं होता। सत्य बात जानते ही नहीं, morality (नैतिक ज्ञान) की ओर ध्यान नहीं। यह अवस्था है अत्यन्त हीन। तुम भला बनने की चेष्टा करो। वर्तमान शिक्षा से नैतिक ज्ञान प्रबल हो ही नहीं सकता। आदर्शहीन शिक्षा है। भगवान-लाभ मनुष्य-जीवन का आदर्श है, सर्वश्रेष्ठ आदर्श। यह सम्मुख रखकर अग्रसर हो जाओ। तब चरित्र गठित होगा, मन में जोर आएगा। अमेरिका में देखा करता, किस प्रकार लड़के भले हो रहे हैं। भविष्य सुखकारी हो, उसकी ही चेष्टा करते हैं। चार-पाँच वर्ष की लड़कियाँ dance (नृत्य) करती हैं, acting (अभिनय) करती हैं। इसी वयस से आरम्भ करें, तभी पक्के होंगे। जो कुछ भी शिक्षा देनी होगी— पाँच से बारह वर्ष के बीच। इससे परे शिक्षा ठीक नहीं होती। आदर्श ठीक करके जीविका के लिए एक में लग जाओ। काज करते रहो, संग-संग साधन-भजन करो। अल्प वयस से लड़कों को वेद पढ़ाना आरम्भ करवाओ, देखोगे, ये सब महापण्डित बन जाएँगे।

''छोटा कोई नहीं। तुम जिन्हें छोटा कहते हो, ये कोई भी छोटे नहीं। हाड़ी (भंगी), डोम— ये सब ऊँची जातियाँ थीं बौद्ध धर्म में। बुद्ध धर्म संघ— इसी संघ का अपभ्रंश है 'डोम'। बल्लाल सेन के समय ये सब अत्याचार हुए हैं। बहिष्कृत कर रखा है, छोटा बना दिया है। फिर क्या करें बेचारे— बेंत, बाँस इनका काम करके जीविका अर्जन करते हैं। कनखल में देखा है, कुएँ से चमारों को जल लेने नहीं देते, मुसलमान ले सकते थे। शास्त्र कहता है, जल नारायण, मनुष्य नारायण, किन्तु इनको पशुओं से भी अधम करके रखा है तुम लोगों ने। मद्रास के पेरिया और बंगाल के नमःशूद्र, ये सब हैं तुम्हारी सृष्टि। भगवान की इच्छा से इसीलिए हजार वर्षों से म्लेच्छों के जूते खा रहे हो। यह व्यवस्था उनकी ही है। परमहंस देव इसी युग में सिखा गए हैं, 'माँ, मैं भंगी से भी अधम हूँ।' जभी तो भंगी के द्वार पर जाकर बालों से नाली साफ की थी। कहते, 'माँ मैं ब्राह्मण हूँ, यह अभिमान ले लो, यह रहने से तुम्हें नहीं पाऊँगा।'

''(इस) देश के लोगों का इस हीन मनोभाव के कारण ही कुछ भी होता नहीं— कांग्रेस भी कुछ कर सक नहीं रही। तुम ऊपर-ऊपर से कुछ करना चाहो तो वैसा करने से नीचे गाद सब रह जाती है। ऐसी व्यवस्था में होगा नहीं। अपने भीतर दृष्टि करो। अपना मन ऊँचा करो— देखोगे, ऊँचे उठ जाओगे। अन्य को हीन मानने से स्वयं ही हीन हो जाता है। इन्हें मुक्त करो और स्वयं भी मुक्त होने की चेष्टा करो। चालाकी से करने जाओगे तो कुछ भी होगा नहीं। ईश्वर-लाभ भी होगा नहीं। यह अति दूर। अपने दोष के समय ईश्वर के ऊपर भार देने से कुछ होगा नहीं। कपटता छोड़ो। मन-मुख एक करो। सब को मनुष्य कहकर आलिंगन करो— सब है उनकी सन्तान। देखो न, आत्म-कलह से देश कितना नीचे गिर गया है। हजार-हजार लोग वकील हो रहे हैं। उनको चाहिए झगड़ा कम करना। यह न करके और बढ़ाते हैं। आत्म-सम्मान-विहीन जाति की यही अवस्था होती है। अब देश में character (चरित्र) नहीं। यह तैयार करो, देखोगे निमेष में सब हो जाएगा।

''भगवान पर विश्वास चाहिए। जभी आत्म-संयम होगा। तब तो जिसमें ही हाथ दोगे, वही कर सकोगे। अपनी स्वार्थ बुद्धि कम होनी चाहिए।

दसों का कैसे भला हो, यही चिन्ता करो। मनुष्य के ऊपर तुम जैसा पशुवत् व्यवहार करते हो, वैसा पशुवत् व्यवहार पा रहे हो विदेशियों से। Retribution of Nature (प्रकृति से प्रतिशोध) के हाथ से निष्कृति नहीं। आत्म-संयम जिसका हुआ है, वही है योगी। संसार में ही रहो या संन्यासी ही बनो, सफेद वस्त्र पहनो कि गेरुआ पहनो, test (परीक्षा) है यही— मन को वशीभूत किया है कि नहीं। मन जीतने पर ही ईश्वरलाभ होता है। और फिर ईश्वरलाभ हो जाने पर ही ठीक-ठीक मन जय होता है। साधक की अवस्था में प्रार्थना करने से वे सहायक होते हैं। मन जय हो जाने पर, चरित्र गठित हो जाने पर, अपनी स्वाधीनता प्राप्त होती है। तब देश की स्वाधीनता भी प्राप्त हो जाती है।''

श्री म— सुन्दर बात! सार बात वही— ईश्वर-दर्शन मनुष्य-जीवन का आदर्श है। यह निश्चय करके जो इच्छा हो, करो। तब पैर बिचलने की सम्भावना है कम। सब यदि यह करें, तब देश स्वाधीन हो जाएगा निमेष में। और ठाकुर को पकड़ना। ये हैं इस युग के आदर्श। भारत को उठाने आए। भारत के उठने पर जगत् उठेगा। भारत का उत्थान है अवश्यम्भावी।

(3)

अब श्री म स्वामी अभेदानन्द जी की 'वेदान्त सोसाइटी' के प्रश्नोत्तर सुन रहे हैं।

प्रश्न— Conscious state (चेतन अवस्था) कैसी है?

स्वामी अभेदनानन्द— Conscious state and subconscious state are like the top of the wave and the below of the water. (मन की जाग्रत अवस्था और अर्द्ध-चेतन अवस्था वैसे ही हैं जैसे तरंग का ऊपरी भाग और जल का निम्न भाग)।

प्रश्न— वासना का कारण क्या है?

उत्तर— योगी कहते हैं, संस्कार— अतीत कर्मों की छाप। बाहरी विषयों की छाप बीज रूप में मन में गुँथी रहती है। तुमने आम खाया। खाने में अच्छा लगा। इसी idea (अभिज्ञता) की मन में छाप लग जाती है। ऐसे ही बुरे की।

पूर्व भोग का remnant (अवशेष) है संस्कार। तुम्हारा जीवन पूर्व-जन्मों के संस्कारों से चालित हो रहा है। तुम्हारे जीवन का स्रोत अविश्रान्त चल रहा है। Individuality (जीव-भाव)— यह तो है एक wave (तरंग)। इसी स्रोत की गति अनन्त समुद्र में जाकर मिलेगी। मन खराब हुआ और झट जाकर suicide (आत्महत्या) कर ली। मन में हुआ, बस सब समाप्त हो गया। वह नहीं। अवश्य यह अध्याय यहाँ शेष हुआ। किन्तु अगला जन्म वहाँ से फिर आरम्भ होगा। बल्कि पहले जन्म में जीवित रहकर वीर की भान्ति दुःख ग्रहण कर लेते तो अच्छा ही कर सकते थे। सब को ही एक दिन ईश्वर-लाभ करना होगा। समझ-बूझ कर काम करने से अन्धेरे में ढेला मारना नहीं पड़ता— हम जान-बूझ कर कर रहे हैं सब काम। मन में जितने संस्कार उठें, झट दमन करने की चेष्टा करें। मन का सहज ही विश्वास नहीं किया जाता। वह नियागरा जलप्रपात (Niagara Falls) की भान्ति ऊपर से स्थिर, भीतर से भीषण चंचल— अति प्रबल। देशजयी को लोग वीर कहते हैं। किन्तु प्रकृत वीर है मनजयी— बुद्ध, ईशु, चैतन्य, रामकृष्ण— ये सब। नैपोलियन और अलॅग्जैण्डर थे slaves to ambition (उच्च आकांक्षा) के दास। मन जीत कर संसार में रहने में दोष नहीं। जूता पहने हुए चलने से पैर में काँटा बिंधता नहीं।

प्रश्न— संस्कार कैसे दूर किए जाएँ?

उत्तर— यह नहीं होता। तब भी साधुसंग, सत् विचार ये सब करने से सहज हो जाता है। रोज ईश्वर का चिन्तन करोगे बैठ कर— जप-ध्यान करोगे। जप-ध्यान माने repetition of the same idea (निरवच्छिन्न भावप्रवाह)। तुम्हारी वर्तमान अवस्था एक habit (अभ्यास) में परिणत होकर पड़ी हुई है। इसको दमन करने के लिए और एक counter habit (विपरीत अभ्यास) की सृष्टि करनी होगी। जप-ध्यान से यह तैयार होती है। जप-ध्यान माने मन स्थिर करने की चेष्टा। गीता में इसे ही अभ्यास योग कहा है। और प्रार्थना करनी चाहिए ईश्वर के पास।

प्रश्न— संस्कार का यदि इतना प्रबल प्रभाव होता है, तब 'अदृष्ट', 'पुरुषार्थ' इन सब का स्थान कहाँ?

उत्तर— अदृष्ट माने unknown cause (अज्ञात कारण), इसे ही

कर्म-फल कहते हैं ज्ञानी लोग। अज्ञानी कहते हैं अदृष्ट। भक्त कहते हैं ईश्वर-इच्छा। एक ही बात है। पुरुषार्थ का स्थान है। तुम्हारी free will (स्वतन्त्र इच्छा) है अवश्य, किन्तु limited (सीमाबद्ध)। इसके द्वारा तुम संस्कार के बाँध तोड़ कर फेंक सकते हो। असुर और देवता दोनों ही हैं तुम्हारे भीतर। देवता को जाग्रत करो, असुर अपने-आप नष्ट हो जाएगा। देवता की अनन्त शक्ति है। किन्तु सब potential (सुप्त) है। जाग्रत करो वही शक्ति।

''रोज प्रात: और रात्रि को स्थिर होकर बैठोगे। तब मन की study (परीक्षा) करोगे। समस्त दिन भर में मैंने आज क्या-क्या काम किया— कितनी बार गुस्से हुआ, कितनी बार इन्द्रियों का दास बना— इस प्रकार analysis (मन का विश्लेषण) करोगे। कुअभ्यास हो तो दमन करो। स्वयं न कर सको, उनके पास प्रार्थना करो शक्ति के लिए। बोलो— 'हे प्रभो, मैं तुम्हारी सन्तान, मुझे शक्ति दो। जिससे मैं कुपथ पर, कुअभ्यास में रत न रहूँ।' वे निश्चय ही शक्ति देंगे। Self-confidence (आत्मविश्वास) और साहस लेकर अपने मन की study (परीक्षा) करो और concentrate (एकाग्र) करो ईश्वर में। डायरी रखो। इस प्रकार चेष्टा करो। तीन मास पीछे देखोगे, कितना बदल गए हो। निज को इतना दुर्बल क्यों सोचते हो? अनन्त शक्ति रह रही है तुम्हारे भीतर। हम भी तुम्हारे जैसे ही हुआ करते थे— निराश भाव आ जाया करता। तब यदि साहस न करता, आत्म-विश्वास न रहता— गुरुवाक्य पर विश्वास न रहता, तो फिर क्या ऐसा होता? देखिए, इसके बल पर दुनिया जय करके आया हूँ। मरण-भय नहीं। Courage (साहस) चाहिए। भय मत पाओ। गृहस्थी जन गृहस्थ में रह कर करें। मन को गेरुआ पहनाओ। बाहर खाली गेरुआ पहनने से क्या होगा? Fire of wisdom (ज्ञानाग्नि) द्वारा अपने को ढके रखो। हम संसारी, हमारा होगा नहीं, हम कर सकेंगे नहीं— यह भय मत पाओ। 'मेरा, मेरा' करके गोलमाल करते हो। जोरू-बेटा, रुपया-पैसा संग लाए थे क्या? जैसे आए हो, वैसे ही जाओ। करोड़पति— वह भी एक सूई भी ले जा सकेगा नहीं। Character (चरित्र) संग जाएगा। इसके भला होने पर दुनिया तुम्हारे चरणों में होगी— इस जन्म में ही देवता हो जाओगे।''

प्रश्न— मन स्थिर कर लेने पर ईश्वर-दर्शन होगा?

उत्तर— होगा क्यों नहीं। अनेकों process (प्रक्रिया) हैं। तुम आरम्भ करो। पेड़ पर चढ़े बिना ही एक गुच्छा— ऐसा होने से नहीं होता। इसके पश्चात् दूसरे उपदेश दिए जाएँगे। सब के लिए एक मत उपयुक्त नहीं, चेष्टा करो।

प्रश्न— Temptation (लोभ) को मैं कहाँ जीत सका हूँ? हम जब उनकी प्रिय सन्तान हैं, तो वे कर क्यों नहीं देते?

उत्तर— हाँ, तुम आन्तरिक यह बात कहो तो वे निश्चय ही कर देंगे। मैं रिपु के साथ पार पा सक रहा नहीं— हे भगवान, तुम मेरे सहायी होओ— यह प्रार्थना करो। उनकी इच्छा को छोड़ और कुछ भी तो होता नहीं बेटा। ठाकुर कहा करते, 'अद्वैत ज्ञान आञ्चल में बाँध कर, जहाँ इच्छा हो वहाँ जाओ।' अद्वैत ज्ञान लेकर संसार करो। 'मैं ईश्वर का' यह ज्ञान रहते ही हो गया, इसे ही कहा जाता है 'अद्वैत ज्ञान'। ठाकुर ने नूतन वेदान्त की व्याख्या की है। शंकर ने बारह सौ वर्ष पूर्व संस्कृत में व्याख्या की थी। शिक्षित साधु को छोड़ उसे प्राय: कोई भी पढ़ सकता था नहीं। हमारे नूतन वेदान्त की व्याख्या को सब पढ़ सकते हैं। विदेशी भी पढ़ते हैं। ठाकुर ने बंगला में बोला था। विदेश में हम अंग्रेज़ी में व्याख्या करते हैं। सादी बातचीत में, सरल भाषा में हम प्रचार करते हैं। इसी प्रकार परमहंसदेव ने हमें सिखाया था। हमारा सौभाग्य! इससे इतना शास्त्र पढ़ना नहीं पड़ता। तुम्हारे अपने भीतर शास्त्र है। इस असल के ठीक हो जाने पर भीतर से सब उपदेश आएगा। मन बतलाएगा— क्या करना होगा, क्या छोड़ना होगा। इसे ही करने को कहता हूँ— अपने भीतर का शास्त्र उद्धार करो। 'मैं उनका', यह विश्वास कुछ दृढ़ होने पर ही वह शास्त्र देख सकोगे— समझ सकोगे। बाहर की सहायता दरकार नहीं होगी तब।

''केवल मुख से शास्त्र की दुहाई मत देना। पाँच हजार वर्ष पूर्व ऋषियों ने यही कहा था, स्वामी विवेकानन्द ने भी यही कहा है— केवल ऐसी दुहाई मत देना। तुम क्या बोल रहे हो, यह स्थिर करो पहले। अमेरिका में दुहाई देने पर वे कहते हैं— 'old thing, throw it away' (पुरानी चीज है, उठाकर फेंक दो)। तुम खाली दुहाई दे-दे कर ही पिछड़ रहे हो। ऋषियों की बात मुख पर न लाओ, जब तक उनकी भान्ति व्यवहार न कर सको। केवल मुख से बोलते हो— हम ऋषियों के वंशधर। केवल बातों से चिउड़ा

भीगेगा नहीं। गुण और कर्म से दिखाना होगा, हम ऋषियों के वंशधर। उस देश के बड़े-बड़े डॉक्टर कर-जोड़े रहते हैं हमारे निकट— भारत की संस्कृति के निकट। पार्लियामेण्ट के बहुत से सभ्यगण, 'लॉर्डस', 'नाइट्स' हमारे छात्र थे। वे हैं गुणग्राही। गुण देखने से मस्तक झुकाते हैं सब ही, केवल बातों से राजी नहीं। ऋषि बनो। जगत् पैरों में पड़ेगा।

"रोख[1] चाहिए— मन्त्र का साधन किंवा शरीर का पातन। चाहिए आत्मविश्वास, साहस और भगवान पर विश्वास। केवल मात्र भाड़ा रख कर स्वामीजी (विवेकानन्द) भारत में चले आए। उसी तरह मैं इंग्लैंड से न्यूयार्क गया। वहाँ मात्र तीन जन बन्धु थे स्वामीजी के— Vedantists (वैदान्तिक)। ईश्वर पर विश्वास करके साहस से काज आरम्भ किया गया। खाने-पहनने को सब आने लगा। प्रथम सात मास में नब्बे लैक्चर दिए। 'बास्केट कलैक्शन'[2] से खर्च चलता। वे बड़े कृतज्ञ हैं। बालक वयस में ही साधु होकर पैदल काशी, हरिद्वार, ऋषिकेश हिमालय गया। विश्वास था— पूर्व से ही मेरे खाने-पीने के लिए प्रबन्ध (जुगाड़) हुआ रखा है। आज तक किसी भी विषय में बाधा नहीं पड़ी। वे सब देख रहे हैं। उन पर विश्वास करके काज में लग जाओ। गुरुवाक्ये विश्वास।"

श्री म— कैसी चमत्कारी बातें! पुरुषार्थ और ईश्वर पर निर्भरता— दोनों ही चाहिएँ। अभ्यास और वैराग्य। वैराग्य माने— ईश्वर पर अनुराग। ईश्वर पर विश्वास न हो तो चरित्र ही गठित होता नहीं। और यह सुन्दर बोले हैं, 'काज में लग पड़ो!' बैठे-बैठे विचार करने से होगा नहीं। लग पड़ना होगा। पुरुषार्थ चाहिए, तभी कृपा आएगी। वर्तमान समय में ठाकुर की बात सुनकर जो काज करेंगे, वे ही सुफल पाएँगे। उन्होंने कहा था, रो-रो कर उनसे प्रार्थना करो 'प्रभो, सुमति दो।' साधुसंग, प्रार्थना और चेष्टा— ये चाहिएँ।

कोलकता; 29 अगस्त, 1923 ईसवी, बुधवार,
12 भाद्र, 1330 (बंगला) साल, कृष्णा चतुर्थी।

1 रोख— तेज, ओज, बल, शक्ति, करूँगा नहीं तो मरूँगा, दृढ़ निश्चय।

2 बास्केट कलैक्शन— एक छोटी टोकरी को डण्डी में लगाकर प्रत्येक श्रोता के सामने बढ़ा देते हैं, वह इच्छानुसार उसमें दान डाल देता है।

द्वाविंश अध्याय

निज देह, परिवार, समाज— तीनों में ईश्वरदृष्टि चाहिए

(1)

मॉर्टन स्कूल के दोतल की बैठक। नित्यकार भक्तों को छोड़ और भी अनेक आए हैं। रमणी गाना गाकर सब का आनन्द बढ़ा रहे हैं। अब सन्ध्या सात!

गाना— तुमि अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्।
प्रभु, बिने अनुराग करे यज्ञयाग, तोमारे कि जाय जाना।

[प्रभु, तुम शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित तथा अव्यय हो। तुम्हें अनुराग बिना केवल यागयज्ञ से नहीं जाना जा सकता।]

इस समय श्री म ऊपर से आकर बैठ गए। गाना शेष होने पर ध्यान करने लगे। फिर भक्तों के संग ईश्वरीय वार्त्ता कर रहे हैं।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर कहा करते, माँ का दर्शन होता है। और फिर बातें भी की जाती हैं उनके संग, जैसे तुम और मैं कर रहे हैं। जैसे किसी ने दूध की बात सुनी है, किसी ने देखा है, किसी ने पिया है। उनके संग बातें करना— यह जैसे दूध पीना है। वही माँ ही ठाकुर होकर आईं हैं। उन्होंने निज ही कहा है। उनको क्या सब ही पहचान पाए? जो उनको पहचान पाए थे, एकदम परब्रह्म कहकर स्तव करने लगे थे— जैसे गिरीश बाबू।

“इसीलिए तपस्या करने के लिए कहा करते। तपस्या करने पर कुछ-कुछ समझ आ जाता है। जिनकी पूर्वजन्म की तपस्या है, वे झट से

पहचान लेते हैं। तपस्या माने ईश्वर को जानने की चेष्टा। स्व-स्वरूप प्राप्ति की चेष्टा। अपने घर, अपने कमरे में जाने की चेष्टा। यह चेष्टा जो पहले से ही करके आए हैं, वे ही शीघ्र विश्वास करके पहचान लेते हैं। कणमात्र संशय रहता है तब भी उनके मन में। वे स्वयं ही वह संशय दूर कर देते हैं। उन्होंने उनसे कहा, 'मैं वही अखण्ड सच्चिदानन्द, जो है वाक्य मन से अतीत।' क्यों कहा— क्योंकि वे जानते थे कि ये लोग बात को मान लेंगे। ये हैं जौहरी— कहने से ही समझ पाएँगे। पहले की चेष्टा थी। जभी तनिक इंगित करते ही दृढ़ विश्वास हो गया। किन्तु जिनका अभी आरम्भ है, भोगशेष हुआ नहीं, वे ले सकते नहीं। बहुजन्म विषय-भोग करके तब यदि उनकी प्राप्ति की इच्छा हो! जभी कहा करते, 'मूर्ख, क्षुद्रमति पकड़ नहीं पाते।' कहा करते, 'मलय पवन से सब वृक्ष चन्दन हो जाते हैं। किन्तु बाँस बाँस ही रहता है।'

''क्राइस्ट के समय में 'मेरी' नामक एक भक्त नारी थी। वह खाली ईशु के मुख की ओर बैठी ताकती रहती। उसने उन्हें ईश्वर कहकर पहचाना था। जभी अन्य ओर मन नहीं। प्रेमी भक्त। चैतन्य देव के समय में ऐसे ही भक्त थे। ठाकुर के समय में भी ऐसे ही भक्त थे। वे उनकी ओर ही ताकते रहते थे। अन्य ओर मन नहीं। जभी तो ठाकुर कहा करते, 'सारा ही मन यदि सिमट कर मेरी ओर आ गया है तब फिर उसका बाकी रहा ही क्या?' सब को ऐसा विश्वास होता नहीं। जभी उनके लिए अन्य उपाय लिया करते।

''एक दिन कमरे में गाना हो रहा था। अनेक लोग थे। कहीं भी कुछ नहीं, हठात् बोल उठे, 'माँ आई हैं, माँ आई हैं। आओ, माँ आओ, बैठो।' सच ही मानो कोई आया है, ऐसा भाव! उसी रूप में आदर, अभ्यर्थना करने लगे।

''और एक दिन खूब गाना हो रहा था। विजयकृष्ण गोस्वामी इत्यादि ब्राह्मसमाज के भक्तजन उपस्थित थे। ठाकुर खड़े हो गए, 'माँ आई हैं, माँ आई हैं' कह कर। विश्वास होता नहीं न लोगों को, जभी फिर और भी कहा, 'प्रतिज्ञा करके कहता हूँ माँ आई हैं।' विवेकानन्द से कहा, 'नहीं, तेरी बात पर विश्वास नहीं हुआ। माँ ने कहा है, 'वह (मिथ्या) कैसे हुआ? सब ही तो मिलता जा रहा है।' वे प्रथम-प्रथम कहा करते कि ना, 'ठाकुर का

ईश्वरीय दर्शन hallucination (मन का भ्रम) है। जभी माँ से पूछा एक दिन। माँ ने तब बतलाया, 'वह कैसे है बेटा? सब ही तो मिलता जो जा रहा है।' अर्थात् दर्शन देकर माँ ठाकुर के मुख द्वारा जो कहती हैं, वे सब बातें (शास्त्र से) मिलती ही जाती हैं। जैसे माँ दर्शन देकर कहतीं— अमुक अमुक आएगा; (वह) ठीक ही होता। तत्पश्चात् विवेकानन्द को कहा, 'वेद में जिसे परब्रह्म कहा है, मैं उन्हें ही माँ कहता हूँ'।''

श्री म *(खुलना के नवागत भक्त के प्रति)*— साधना की आवश्यकता है। काजकर्म में रहकर मन स्थिर नहीं होता। इसलिए बीच-बीच में निर्जन में चले जाना चाहिए। गीता में जभी तो निष्काम कर्म करने को कहा। ठीक-ठीक निष्काम कर्म करना हो तो बीच-बीच में एकान्त में चले जाना चाहिए। नहीं तो मन के ऊपर 'मुर्चा' लग जाता है। मुर्चा जानते हो?— जंगाल, मैल, आसक्ति। लगता तो है निष्काम करता हूँ, किन्तु भीतर हो सकता है लोकमान्य की सूक्ष्म आकांक्षा रह रही है। जभी निर्जन में जाकर पकड़ा जाता है। घर में जो हैं, उन्हें तो है अवश्य दरकार। साधुओं को भी दरकार।

''इसीलिए बीच-बीच में निर्जनवास के ऊपर इतना जोर देते थे ठाकुर। जानते हो ना, उनकी व्यवस्था क्या है?— नित्य सत्संग, व्याकुल प्रार्थना और बीच-बीच में निर्जनवास। भक्तों को यह करना आवश्यक। तभी 'धात्' ठीक रहती है। नहीं तो self-delusion (आत्मप्रवंचना) आ पड़ती है। मन में होता है, 'मेरा सब हो गया है। जनक राजावत् संसार कर रहा हूँ'।

यह कह कर श्री म मग्न होकर गाने लगे :

गाना— डुब डुब डुब रूप सागरे आमार मन।
तलातल पाताल खुँजले पाबि रे प्रेम रत्न धन॥

डुब, डुब, डुब, डुबले पाबि हृदय माझे वृन्दावन।
दीप् दीप् दीप् ज्ञानेर बाति, ज्वलबे हृदे अनुक्षण॥

ड्यांग ड्यांग ड्यांग ड्यांगाय डिंगे, चालाय आबार से कोन जन।
कुबीर बोले शोन शोन शोन, भावो गुरुर श्रीचरण॥*

---

* यह गाना श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत (हिन्दी), प्रथम भाग, पृष्ठ 86 पर अर्थ सहित है।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ब्राह्मभक्तों के आने पर यही गाना सुनाया करते। माने कुछ साधन-भजन करने के लिए कहा करते। केवल लैक्चर से कुछ होता नहीं। निर्जने जाकर कुछ दिन साधन करने पर आस्वाद मिल जाता है। बीच-बीच में जाकर वह भाव दृढ़ हो जाता है। ईश्वर सत्य, जगत् अनित्य, दो दिन का— यह बोध पक्का होता है। तब लैक्चर बन्द हो जाता है, काज होता है ठीक-ठीक।

(बड़े जितेन के प्रति)— एक बार विजयकृष्ण गोस्वामी अमहर्स्ट स्ट्रीट के मोड़ पर एक घर में रहते थे— सर्वदा ईश्वर के भाव में तन्मय। मेरे जाते ही खूब आह्लाद प्रकाशित करने लगे और कहने लगे, 'गाइए ना, उनका वही गाना।' मैंने गा कर सुनाया था। इन लोगों के जाने पर ठाकुर गाते थे कि ना वही गाना, जिससे कि ये कुछ दिन तपस्या करें। इसीलिए यह इतना प्रिय। वे सब कुछ त्याग करके अब उनका नाम करते हैं। इतने दिनों में समझ पाए हैं कि ठाकुर किस उद्देश्य से इसे ही गाकर सुनाया करते।

श्री म *(युवक के प्रति)*— रूप सनातन का कैसा तीव्र वैराग्य! वे बंगाल के नवाब के मंत्री थे। बहुत दिनों तक महाप्रभु के संग चिट्ठी-पत्री लिखते रहे। अन्त में लिखा, 'प्रभु, अब और घर में ठहर नहीं सकता।' महाप्रभु ने उत्तर लिखा एक श्लोक में ही— 'नष्टा स्त्री जैसे गृहकर्म में रत रहती है, किन्तु मन पड़ा रहता है उपपति के ऊपर, कोई जान भी नहीं सकता— उसी रूप में संसार करो।' किन्तु अधिक दिन कर सके नहीं। छोड़कर चले आए। अवस्था अच्छी नहीं थी, तथापि परिवार के लिए provision (व्यवस्था) करके आ गए। काशी में महाप्रभु के संग मिले। महाप्रभु देखकर आलिंगन करने जा रहे हैं— सनातन पीछे-पीछे हट रहे हैं— कहते हैं 'न प्रभु, मुझे छूइए नहीं। मैं कीट हूँ, अपवित्र हूँ।' सब छोड़ कर आने पर भी ऐसी बात करने लगे। तीव्र वैराग्य था कि ना! महाप्रभु ने इन्हें वृन्दावन में जाकर रहने के लिए कहा। उन पर ठीक-ठीक प्यार आने पर फिर और कुछ अच्छा नहीं लगता।

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— हमने सोचा है, अब से रोज उनके एक-एक scene (दृश्य) का ध्यान किया करेंगे। तीन हो गए हैं। प्रथम—

दक्षिणेश्वर में सन्ध्या के समय ठाकुर निज आसन पर बैठे हैं। ध्यानान्ते भक्तों से कह रहे हैं, 'जो निशिदिन उनका चिन्तन करता है, उसे सन्ध्या की आवश्यकता नहीं होती।' ऋषिकेश में एक साधु सारा दिन एक झरने के निकट खड़ा रहता था और कहता रहता था, 'वाह, खूब किया; वाह, खूब किया— कैसा आश्चर्य!' *(एक भक्त के प्रति)* और दो कौन से?

भक्त— आकाश में नवीन मेघ उठा हुआ है। उसका प्रतिबिम्ब गङ्गा के जल पर पड़ा हुआ है। ठाकुर के पीछे यही काली पृष्ठभूमि है। वे पञ्चवटी से अपने कमरे में आ रहे हैं। तृतीय, बलराम-मन्दिर में। बलराम के बाप से कह रहे हैं, 'अधिकतर लोग कट्टर होते हैं, किन्तु मैं देखता हूँ, सब एक हैं— जो निराकार हैं, वे ही साकार हैं!'

श्री म— और एक scene (दृश्य)। उस दिन अनेक गाने ठाकुर ने गाए थे। प्रथम गौर लीला का गाना, फिर माँ का नाम। शिवपुर के भक्त सब आए हुए हैं। गाना गा रहे हैं और बीच-बीच में समाधिस्थ हो रहे हैं। वेला तीन का।

क्षण भर मौन रहकर कहने लगे :

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर का यह भी एक favourite (प्रिय) गाना है :

गान— सीतापति रामचन्द्र रघुपति रघुराई।
भज ले अध्योध्यानाथ दूसरा न कोई॥... इत्यादि

''और इससे तो खूब भाव हुआ करता—

आमि गेरुआ बसन अंगेते धरिबो, शंखेर कुण्डल परि।
आमि योगिनीर बेशे जाबो सेई देशे जेथाय निठुर हरि॥
आमि मथुरा नगरे प्रति घरे घरे खुंजिबो योगिनी होये॥''

[मैं गेरुआ वस्त्र शरीर पर धारण करूँगी। शंख के कुण्डल पहनूँगी। मैं योगिनी के वेश में उसी स्थान पर जाऊँगी जहाँ निष्ठुर हरि हैं। मैं मथुरा नगर में घर-घर उन्हें खोजूँगी योगिनी होकर।]

श्री म— श्रीकृष्ण के लिए इतना प्यार! सब ही तो स्त्रियाँ। कुल-मान

का हिसाब नहीं। घृणा-लज्जा सब छोड़ दी। पुत्र, कन्या, पति, पिता सब छोड़ दिए। गृहत्यागिनी योगिनी। क्यों? उनके लिए— ईश्वरजन्य। अन्य लक्ष्य नहीं। कितने जन कर सकते हैं यह? किसके मन में यह साहस है? जो उनके लिए इतना करते हैं, वे उनके लिए भावना नहीं करेंगे? वे भी भक्त के पास चिरविक्रीत हो जाते हैं। जभी ठाकुर कहा करते, गोपियों के प्यार का एक कण भी प्राप्त हो जाने पर उथल-पुथल मच जाती है। चैतन्यदेव की वही अवस्था हुई थी— गोपियों की अवस्था! अपनी बात चैतन्य का नाम करके कहा करते। गोपियों का प्यार ब्रह्मज्ञान के पश्चात् हुआ था।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ठाकुर कहा करते, 'बात तो यही है, सच्चिदानन्द में प्रेम होना'— अमृतसागर में पड़ना। स्तव करके ही हो— अथवा धक्का मार कर फेंक देने से ही हो, फल एक ही है। अमर होगा। वेदान्तमार्गी हों, शाक्त, वैष्णव हों, हिन्दू, मुसलमान, क्रिश्चियन हों, जिस भी पथ से जाओ, आन्तरिक उनके लिए प्यार चाहिए। कहा करते, 'मिश्री की रोटी सीधी करके ही खाओ, और आड़ी करके ही खाओ, मीठी लगेगी ही।'

यह बात कहते-कहते श्री म में मानो भाव-सिन्धु उथल पड़ा। वे मस्त होकर गाने पर गाना गाने लगे :

गाना— गौर प्रेमेर ढेउ लेगेछे गाय।
[गौरांग के प्रेम की लहर शरीर में लग गई है।]

गाना— बेला जाय अविरत भावबो कत गौरगत प्राण होयेछे॥
[समय जा रहा है अविरत, कितनी भावना करूँगा, मेरा तो प्राण गौरगत हो गया है।]

गाना— पाड़ार लोके गोल करे, बोले आमाय गौर कलंकिनी।
ऐ कि 'कयबार' कथा, कइबो कोथा लाजे म'लाम
ओगो प्राण सजनी॥

एक दिन काजिर दलन, गौर करेन नगर कीर्तन।
हरिबोल हरिबोल बोले, चले जाए नदेर बाजार दिये॥
आमि तादेर संगे थेके देखेछिलाम रांगा चरण दु'खानि॥

एक दिन श्रीवासेर बाड़ी, कीर्तनेर धूम हुड़ाहुड़ि।
गोरचाँद देन गड़ागड़ि श्रीवास आंगिनाय॥
आमि एकपाशे लुकाये छिलाम एकपाशे दाँड़ाये,
आमि पड़लाम अचेतन होये, आमाय चेतन करले
श्रीवासेर रमणी॥
एक दिन जाह्नवीर तटे गौरचाँद दाँड़ाये घाटे,
चन्द्र सूर्य उभयेते गौर अंगेते।
देखे गौर रूपेर छबि डुबे गेलो शाक्त शैबी।
आमार कलसी पड़े गेलो दैवी, देखेछिलो काल-ननदिनी॥

[मोहल्ले के लोग बातें करते हैं, मुझे कहते हैं गौर-कलंकिनी। यह क्या कहने की बात है? कहूँ भी कहाँ? ओ मेरी प्राण सजनी, मैं तो लाज के मारे मरी जा रही हूँ!

एक दिन काजी का दलन करने के लिए 'गौर' नगर-कीर्त्तन कर रहे थे। हरि बोल, हरि बोल, बोलते हुए 'नद' के बाजार से जा रहे थे। मैंने उनके संग रह कर उनके दोनों लाल चरण देखे।

एक दिन श्रीवास की बाड़ी में कीर्त्तन की खूब धूम थी। गौर चाँद श्रीवास के आँगन में लोट-पोट हो रहे थे। मैं एक ओर छिपी हुई खड़ी थी। मैं बेहोश होकर गिर गई। मुझे श्रीवास की स्त्री ने चेतन कराया।

एक दिन गङ्गा के तट पर गौर चाँद खड़े थे घाट पर, चन्द्र-सूर्य दोनों ही गौर के अंग पर थे। गौर की रूप-छवि देख कर शाक्त और शैव प्रेम में डूब गए, दैवात् मेरी कलसी गिर पड़ी। कालस्वरूपपिणी मेरी ननद ने देख लिया।]

30 अगस्त, 1923 ईसवी

(2)

श्री म द्वितल के पश्चिम के कमरे में बैठे हैं। भक्तगणों से कमरा है पूर्ण। शरीर अस्वस्थ। सन्ध्या हो रही है। प्राय: पन्द्रह मिनट ध्यान करके आप ही गाना गा रहे हैं :

गाना— धन दिबि तोर कि धन आछे।

[तू धन देगा, तेरे पास क्या धन है?]

गाना— किंकरे करुणामयी!

गाना— मन चलो निज निकेतने।

गाना— जीवन वल्लभ तुमि दीन शरण हे,
प्राणेर प्राण तुमि ओ' प्राण रमण हे।
सदानन्द शिव तुमि, सुन्दर शोभन,
सुन्दर योगीजन चित्त विमोहन॥

श्री म ने बहुत से भजन गाए, फिर 'कथामृत' पढ़ रहे हैं— ठाकुर अपनी छोटी खाट पर बैठे हैं। भाद्र मास। दिन के ग्यारह होंगे। अभी तक भी आहार हुआ नहीं। मास्टर, तारक, अधर, लाटू, हरीश प्रभृति हैं। सिद्ध की अवस्था का वर्णन कर रहे हैं।*

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— सिद्ध लोगों के लक्षण होते हैं। दस जनों के संग मिल रहे हैं, बातें कर रहे हैं। भीतर में मन चढ़ा ही रहता है। तिलक-विलक कोई भी बाहरी चिह्न नहीं। और जोंक के मुँह पर चूना लगते ही जैसे झड़ पड़ती है, कामिनी-काञ्चन उनके निकट वैसे ही; आबद्ध कर नहीं सकते। युवती स्त्री पास रहे भी तो जोंक के समान मन चलता नहीं। यह अवस्था अवतार आदि की होती है और भगवान-दर्शन कर लेने पर होती है।

श्री म *(सालिखा के भक्त के प्रति)*— जभी तो जिन्होंने ब्याह कर लिया है, उनसे ठाकुर कहा करते थे, स्त्री के साथ एक कमरे में रहेंगे, किन्तु अलग बिछौने पर। शरीर-से-शरीर अधिक नहीं लगेगा, और सर्वदा ईश्वरीय कथा होगी। भाई-बहन की तरह रहेंगे। यह सब कुछ ही उनके जीवन में घटित हुआ है। जो कहा है, वह निज करके दिखा गए। अपना ब्याह किया क्यों? क्यों माँ ठाकुरण को दक्षिणेश्वर लेकर आए? दिखाने के लिए संसार को— 'रमणी के संग रह कर न करे रमण।' एक बिछौने पर रखा आठ मास, किन्तु देह-सम्पर्क नहीं। दृष्टान्त के लिए ऐसा किया। तभी भक्त-गण जोर पाएँगे। चेष्टा करेंगे भाई-बहनवत् पवित्र भाव में रहने की। उनकी यह

* श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत, हिन्दी, भाग IV, 7 सितम्बर, 1884

अवस्था अति उच्च अवस्था है।

"हिन्दू-विवाह का उद्देश्य है, स्वामी-स्त्री का मिलकर धर्म आचरण करना। धर्मलाभ की चरम अवस्था है ईश्वर-दर्शन। दूसरे वैसा कर नहीं सकेंगे, जभी अल्प नीचे लाकर कहा करते, नितान्त इतना न कर सको तो दो-एक लड़के, बच्चे हो जाने पर फिर इस प्रकार रहो— भाई-बहनवत्। उनका समस्त लोकशिक्षा के लिए है।

"संसार में रहने के लिए रुपया आवश्यक। किन्तु सत्-पथ पर रह कर सत् उपाय अवलम्बन करके अर्थ उपार्जन करने के लिए कहते। जितने से दाल-भात मिल जाए, उतना ही। परिवार के लिए provision (व्यवस्था) हो गई, फिर और नहीं। तब बैठे-बैठे ईश्वर-चिन्तन करना। गृहस्थी में ऐसा अभाव आ जाता है, तब मन की शान्ति नष्ट हो जाती है। धन हो तो उसके द्वारा वह अभाव दूर हो जाता है। जभी कहा करते, 'भक्तों के पास अर्थ हो तो वे अर्ध-जीवन मुक्त हैं।' किन्तु जिनके पास यथेष्ट हो गया है, वे न जाएँ और बढ़ाने। वैसा करने लगे तो समय कहाँ? Money-earning-machine (अर्थ उपार्जन की कल) न बना डालें अपने को। कितनी ओर देखा करते। न होने से भी नहीं, होने से भी विपद्। 'लेजा-मूड़ा' (अगला-पिछला) छोड़ मध्यपन्था लेने के लिए कहते। दाल-भात चल सके, इतना होने से ही भक्तों का हुआ। तदुपरान्त ईश्वर-चिन्तन करना।"

श्री म *(युवक के प्रति)*— जिन्होंने मूल से विवाह किया ही नहीं और जिनका ईश्वर में मन है, वे क्यों जाएँ विवाह करने, जड़ित होने? क्या गरज़ पड़ी है? जिन्होंने विवाह कर लिया है, वे मन से त्याग करेंगे। स्त्री रहते भी पृथक् रह कर संसार करेंगे।

"ठाकुर ने कहा था, 'बेलतले ध्यान में देखा— सुन्दरी युवती, उत्तम आहार, रुपया-पैसा! मन से पूछा, 'ये सब कुछ चाहते हो?' मन ने कहा— 'न, ये सब नहीं चाहता।' यह इसलिए कहा कि जिन्होंने विवाह नहीं किया है, वे कहीं 'रमणी के संग रहकर न करे रमण'— इस बात की परीक्षा के लिए ही विवाह न कर बैठें।" *(हास्य)*।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— उनका ध्यान करने पर सब ठीक हो जाएगा। एक बार उनमें मन जाने पर, भीतर का दरवाजा खुल जाने पर अपने-आप सब ठीक हो जाता है। मन ही तब गुरु हो जाता है। सब बतला देता है, कब क्या करना होगा। तब रम्भा, तिलोत्तमा चिताभस्म-सी मन में लगती हैं।

''जिस मन को वे आश्रय देते हैं, पकड़ लेते हैं, काम-वाम वहाँ से भाग जाता है। 'पंच तत्त्व प्रधान मत्त रंग देखे भंग दिलो।' (पञ्च तत्त्व जो सबसे अधिक मस्त रहते हैं, वे इस मिलन को देखकर भाग जाते हैं।) जभी तो गुरु की मूर्त्ति— ठाकुर की मूर्त्ति का ध्यान करना चाहिए। मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं, ध्यानमूलं गुरुर्मूर्त्तिः, पूजामूलं गुरोर्पदम्।* गुरुपद की रोज़ फूल द्वारा पूजा करना उचित।''

श्री म अकस्मात् जनैक अविवाहित भक्त के नेत्रों पर अपने भावगम्भीर प्रशान्त, उज्ज्वल तथा सुवृहत् चक्षुद्वय स्थापन करके मृदुकण्ठ से बोले, ''ठाकुर ने कहा, 'मेरा ध्यान करने से ही होगा।' इसलिए रोज़ एक-एक करके उनका scene (दृश्य) ध्यान करना उत्तम है।''

जनबहुल प्रकोष्ठ के भीतर बैठे हुए भक्त को अलग से यह बात बोलकर वार्त्ता का पूर्व प्रवाह पकड़ लिया।

श्री म *(सब के प्रति)*— अधर सेन के घर आकर ठाकुर को भाव-समाधि हुई थी। सिर छाती पर झुक गया था एक ओर। एक पैर पर खड़े रहने से पैर में दर्द होने लगा था। किसी ने सीधा किया नहीं था। जभी गाने में कहने लगे, 'दरदी नइले प्राण बाँचे ना। मनेर कथा कइबो कि सइ कइते माना।' (दरदी न हो तो प्राण बचता नहीं, मन की बात कहूँ भी कहाँ, वह कहनी भी मना है।) बाबू राम आदि होते तो सीधा कर देते। मन की बात कहने पर भी सुनेगा कौन? 'मनेर मानुष उजान पथे करे आनागोना।' (मन का 'मानुष' उजान पथ पर आना-जाना करता है।)

''संसार के लोग चाहते हैं विषयानन्द, भक्त लोग चाहते हैं परमानन्द—

---

* गुरु की वाणी सब मन्त्रों का मूल है, गुरु की मूर्त्ति (सब) ध्यानों का मूल है और गुरु-पद (सब) पूजाओं का मूल है।

ईश्वर को। तभी तो मन की बात अर्थात् ईश्वर की बात कहने पर भी समझते नहीं सांसारिक जन। कोई यदि पाँच वर्ष के शिशु को डारविन का क्रम-विकासवाद समझाने की चेष्टा करे तो शिशु कुछ भी समझेगा नहीं। चेष्टा विफल होगी। वैसे ही है विषयी के निकट परमार्थ तत्त्व बोलना! समझेगा नहीं, अच्छा लगेगा नहीं।''

श्री म *(डॉक्टर के प्रति)*— चैतन्यदेव चार सौ वर्ष पूर्व आए थे। उनके सम्बन्ध में पुराने गाने कोई-कोई हैं। किन्तु scenes (दृश्यावली) वैसी नहीं हैं। इस युग में 'चैतन्य' के संग हम रहे थे। उनकी कितनी दृश्यावली (scenes) हैं; और फिर पुराने लोग भी सब हैं। खूब सुविधा है अब। एक-एक करके चौबीस घण्टे ध्यान कर लेने से सब ठीक हो जाएगा।

''चैतन्यदेव का एक scene (घटना) है— चापालगोपाल उद्धार। इसे कुष्ठ हुआ था। काशी में आने पर आदेश मिला, 'मैं नवद्वीप में आया हूँ, तुम वहाँ पर जाओ।' गाने में है :

गाना— गौर निताइ तोमरा दु'भाई परम दयाल, हे प्रभु।
आमि गियेछिलाम काशीपुरे, आमाय कये दिलो काशी विश्वेश्वरे,—
आमि एसेछि नदीयार शचीर घरे, आमि तोमाय चिनेछि हे॥''

[हे प्रभु, गौर और निताई तुम दोनों भाई परम दयालु हो। मैं काशी गया था। मुझे कह दिया है काशी के विश्वेश्वर ने, मैं नदिया की शचीदेवी के घर में आया हूँ। मैंने तुम्हें पहचान लिया है, हे प्रभु!]

श्री म *(सालिखा के भक्तों के प्रति)*— क्या कहते हैं आप? काशी से कलकत्ता की दिशा में जितना बढ़ते हैं, काशी से उतना ही पीछे हटते हैं कि नहीं, बतलाइए। उनकी ओर मन जाने से संसार का आकर्षण हट जाता है।

''पुरी में थे सार्वभौम पण्डित। इन्होंने चैतन्यदेव को कहा, 'तुम मात्र चौबीस वर्ष के छोकरे हो। गेरुआ लेकर संन्यास क्यों लिया? तुम्हारा मन क्या वशीभूत हो गया? तुम वेदान्त पढ़ो।' चैतन्यदेव ने कर जोड़कर कहा, 'मैं क्या करूँ, कृष्ण मुझे खैंच कर ले आए हैं।' सार्वभौम ने कहा, 'अच्छा, अपनी जीभ

* संस्कृत पाठशाला।

बाहर करो, देखूँ।' जीभ बाहर करने पर जीभ पर चीनी रख दी। चीनी से जल नहीं निकला। हवा चीनी को उड़ा कर ले गई, सूखे पत्ते पर चीनी रखने से जो होता है। मन चढ़ा हुआ है— देह-ज्ञान नहीं। तब सार्वभौम ने समझ लिया, ये हैं अवतार। टोल (पाठशाला) में पढ़ा नहीं सकते थे। एक दिन 'धातु' पढ़ाते हुए ऐसी आध्यात्मिक व्याख्या करने लगे— लड़के गाल पर हाथ धरे बैठे रहे। कुछ भी समझ नहीं सके। भावस्थ होकर बोल रहे थे, इसीलिए।

"अन्य व्यक्तियों के संग ये लोग मिलेंगे कैसे? स्त्री-भक्त ने जभी तो माँ से कहा, 'साधु आते हैं उद्धार पाने और ये (ठाकुर) आए उद्धार करने। तो माँ, भला कैसे मिलेंगे ये अन्य साधुओं के संग?' चैतन्यदेव, ठाकुर, इनके साथ औरों का मिलान नहीं होता।"

भक्तों ने विदा ली। रात्रि दस।

श्री म चारतल के सीढ़ी के कमरे में बैठे हैं। एक ब्रह्मचारी ठाकुर की छवि और 'कथामृत' लेकर ऊपर पहुँचे। ये श्री म से कह रहे हैं, "जी, वेदान्त सोसाइटी में मेम्बर होने की बात का क्या होगा?"

श्री म कहने लगे, "अच्छा तो है, इससे खूब भला होगा। पढ़ाई क्या केवल कॉलेज में ही होती है? वहाँ कितनी advantage (सुविधा) है! पच्चीस वर्ष अमेरिका में थे। कितनी अभिज्ञता है और फिर खूब बड़े पण्डित। उस पर ठाकुर के जन— एक वर्ष सेवा की है। बहुत ही बड़ी सुविधा है यह तो। ऐसा सुयोग क्या छोड़ा जाता है? मेरी वयस होती, तो मैं भी जाता। कॉलेज क्या केवल वही?— इन सब को लेकर ही कॉलेज। विवेकानन्द सोसाइटी, थिओसाफिकल सोसाइटी, वेदान्त सोसाइटी आदि स्थानों पर जाना उचित। ब्राह्मसमाज, गिर्ज़ा सब में attend (योगदान करना) अच्छा। इन सब को मिला कर एक कॉलेज होता है। फिर सब के ऊपर है मठ।

"जितने दिन वे यहाँ रखे हुए हैं, उतने दिन इन सब में जाओगे नहीं तो क्या करोगे? जाना खूब भला। वे यदि वैसा वैराग्य दे दें, निर्जन में बैठ कर केवल उनका चिन्तन करने वाला— तब और बात। किन्तु जितने दिन वह न हो, उतने दिन इन सब में ही जाना अच्छा। उनका क्या केवल एक पथ?

नाना पथ। किस पथ से किसे ले जाते हैं। विवेकानन्द के द्वारा कितना लिखना-पढ़ना करवाया।''

31 अगस्त, 1923 ईसवी।

(3)

श्री म मॉर्टन के दोतल के बरामदे में टहल रहे हैं। गोपेन के संग बातें कर रहे हैं। शुकलाल, डॉक्टर, अमृत, विनय प्रभृति पश्चिम के कमरे में बैठे हैं। छोटे जितेन, माखन और मुकुन्द आए हैं। श्री म ने कमरे में प्रवेश किया। संग-संग जगबन्धु ने भी प्रवेश किया। ये वेदान्त सोसाइटी से लौटे हैं। श्री म ने उन्हें लैक्चर के नोट्स पढ़कर सुनाने के लिए कहा।

आज थी प्रश्नोत्तरी क्लास। साठ जन सभ्य थे उपस्थित। एकजन ने प्रश्न किया, 'क्या चिन्तन में शक्ति है?'

स्वामी अभेदानन्द जी— हाँ, खूब शक्ति है। जैसा तुम्हारा चिन्तन है, वैसा ही तुम्हारा surrounding (वातावरण)। डॉक्टर रोग की चिन्ता करते हैं, वकील मुकद्दमे की चिन्ता करते हैं, उसके लिए ये रोगी और मुवक्किल लेकर रहते हैं। मन का भाव बदल जाने पर तुम सब कुछ हो सकते हो, शरीर पर्यन्त बदल सकते हो। इच्छा करने से राजा हो सकते हो। तुम मोह में हो। मोह माने चिन्ता के ऊपर एक आवरण। जैसे दुकानदार, originality (नूतनत्व) विहीन— खरीदता और बेचता है केवल। कोई भी नूतन भाव नहीं। Genius (प्रतिभाशाली) लोग नूतन भाव दे जाते हैं जगत् को। मन की (vibrations) चिन्तन-तरंगों के अनेक स्तर हैं— सत्त्व, रज और तम; और फिर सत्त्व का सत्त्व, सत्त्व का रज और सत्त्व का तम इत्यादि। योगी जन इच्छा द्वारा वाञ्छित द्रव्य materialise (लाभ) कर सकते हैं। वे इच्छामृत्यु लाभ कर सकते हैं। मन के जोर से यक्ष्मा रोग चला जाता है, औषध नहीं हटा सकती। विश्वास रहना चाहिए, प्रबल विश्वास; तभी चेष्टा होगी effective (कार्यकरी)।

''मेरा पैर टूट गया न्यूयार्क में। डॉक्टर ने अनेक 'एक्सरे' (फोटो)

लिए। पता लगा, हड्डी अलग हो गई है। कहने लगे, हस्पताल में जाना होगा। मैं गया नहीं। फिर उसी टूटे पाँव से चार मील तेज पैदल जाकर छः घण्टे लैक्चर दिया। पहले से appointment (समय ठीक) किया हुआ था। डॉक्टर तो यह सब देखकर हो गए अवाक्। फिर 'एक्सरे' लेकर देखा, जोड़ लग गया था। तब कहने लगे, 'तुम क्रिश्चियन साइन्टिस्ट होते तो immortal (अमर) हो जाते।' एक बार इच्छा से ही ज्वर चढ़ा लिया। फिर bronchitis, dysentery (खाँसी, पेचिश) ये सब भी हुए। किन्तु ये रोग मेरे मन के ऊपर effect (प्रभाव) कर सके नहीं। ऋषिकेश में था, स्वयं ही फूस काट कर लाकर कुटीर बना कर रहता। गङ्गा के पत्थर के ऊपर बैठ कर दिन में एक बार भिक्षा खाता। आहा, कैसा निर्मल गंगाजल, और कितनी मछलियाँ! तब सर्वदा यह विचार किया करता— मैं आत्मा; देह नहीं, मेरा रोग नहीं, जन्म-मृत्यु नहीं। एक बार इच्छा हुई, ज्वर हो। वही हो गया। एक बार स्विटजरलैण्ड में था। पहाड़ पर टहल रहा था, एक दिन इच्छा हुई, ऊपर से पत्थर गिरे। झट आ पड़ा; और उससे पैर में चोट लगी। उसके पश्चात् सावधान हो गया— इस प्रकार की इच्छा फिर नहीं करूँगा।

"शुद्ध मन हो जाने पर जो इच्छा करोगे, वही होगा। माने ईश्वर के मन के संग एक हो जाना चाहिए। Universal consciousness (विश्व चैतन्य) के संग एक हो जाओ। यह हुआ सहज वेदान्त। अधिक मुश्किल कुछ नहीं। और फिर सीधी बात भी नहीं। नाना शास्त्र पढ़ने से क्या होगा? शंकराचार्य ने कहा है—

"वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्र-व्याख्यान-कौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये।"

"बहुत शास्त्र जानना और फडर-फडर करके झाड़ना, यह भोग-वृद्धि करता है, मुक्ति नहीं। आत्मज्ञान में केवल मुक्ति होती है। कहो, मैं आत्मा हूँ— शुद्ध, बुद्ध, मुक्त— ऐसा चिन्तन करने से मुक्त हो जाओगे। परमहंसदेव कहा करते, जो कहता है 'मैं पापी', वह वही हो जाता है। परमहंसदेव ने क्या लिख-पढ़ कर शास्त्रपाठ किए थे? किन्तु कैसा अगाध ज्ञान! मैं देखा करता बड़े-बड़े पण्डितगण हाथ जोड़कर उनके पैरों के नीचे बैठे हैं। तुम जो भावना

करोगे, वही होगा। परमहंसदेव निज को जगन्माता का पुत्र भावते; भावते-भावते वही हो गए। जभी तो पण्डित केंचवे बने रहते उनके पास। ज्ञान की खान जो भगवान! जगन्माता, वे उनके कण्ठ में बैठकर बातें करतीं। कहा करते, माँ ज्ञान की राशि ठेले जा रही हैं। सेण्ट फ्रान्सिस ऑफ एसिसि के हाथों-पैरों में Crucified Christ (क्रुशविद्ध ईशु) की छवि भावते-भावते nails (कीलों) के दाग हो गए थे। हाथों-पैरों में छिद्र हो गए। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।' इमरसन कहा करते : Thoughts are reality (तुम्हारी भावना ही तुम्हारा रूप है), वही वास्तविक है। जैसे thoughts (भाव) तुम्हारे भीतर होंगे, वैसी ही language (भाषा) बाहर आएगी। Thoughts और language (भाव-भाषा) का सम्बन्ध है अति निकट का। ठाकुर कहा करते, 'मूली खाने पर मूली की ही डकार दोगे।' सैण्ट जॉन अपनी Gospel (बाइबल) के प्रथम उपदेश में कहते हैं— 'The word was God.' (शब्द था ईश्वर का रूप)। अर्थात् thought (भाव) के component part (पृथक्-पृथक्) अंश word (शब्द) हैं। जगत् भी पहले-पहल ईश्वर के चिन्तन-रूप में था शब्द समष्टिरूप में, फिर अभिव्यक्त हुआ। इसीलिए तो 'The word was God.' (शब्द ही ब्रह्म)। तुम्हारा चिन्तन ही तुम्हारा निजी रूप। संस्कृत 'वाक्' शब्द का अपभ्रंश है 'वोक्स' (Vox) उससे Voice (स्वर) हुआ। Thoughts language (भाव-भाषा) की सृष्टि हुई।

"Thoughts (विचारों) का प्रभाव देखो। एकजन साधुसंग, साधुसेवा करता है। यही करते-करते समय पर उस व्यक्ति साधु के समस्त influence (प्रभाव) और मन के भाव उसमें आ जाते हैं। इसीलिए परमहंसदेव कहा करते, 'तुम्हें कुछ नहीं करना होगा; यहाँ (उनके पास) आने-जाने से ही होगा।' जिन्होंने उनके पास आना-जाना किया था— वे ही उनके भाव से प्रभावान्वित हुए हैं। यही जैसे हम लोग हैं— उनके भावों की ही प्रतिछवि हैं। जिसका जितना आधार, जैसा आधार, उसने वैसा ही धारण किया।

"वे थे अनन्त भावमय। परमहंसदेव के पास बैठा रहा करता। तब मन में नाना प्रश्न उठा करते, मन में ही मीमांसा हो जाती— पूछने की आवश्यकता नहीं होती थी। अमेरिका में हमारा भी वैसा ही हुआ था। जो

निकट रहते, उनके प्रश्नों की मीमांसा हो जाती।

''मनो हि जगतां कर्त्तापुरुष:''— मन ही है कर्त्ता। मन में जो सोचो, वही हो जाता है। शरीर— तुम तो मृतदेह मात्र हो। मन ही तुम्हें चालित करता है। मन को वशीभूत करो— विषय में से खींच कर उनके पादपद्मों में छोड़ देना। अभ्यास करने से हो जाता है, कठिन चाहे है। जभी मनशुद्धि बड़ी दरकार। मन संग जाएगा, शरीर पड़ा रहेगा। मन सम्पूर्ण शुद्ध होने पर उसमें भगवान्-दर्शन होता है। यहाँ पर ही यदि एकदम ही शुद्ध कर पा सको तब तो फिर और आना पड़ेगा नहीं। नहीं तो आना-जाना करना ही होगा। तुम आत्मपूजा करो। परमहंसदेव आत्मपूजा किया करते— निज की निज पूजा करना। मैंने देखा है, अपने मस्तक पर स्वयं ही फूल दे रहे हैं, और झट समाधिस्थ! घण्टा हिलाना नहीं वहाँ पर। मैं आत्मा, शुद्ध, मुक्त— यह भावना करते-करते मन शुद्ध हो जाता है। अन्त में देखता है, यही शुद्ध मन ही शुद्ध आत्मा है।

''तुम जो पुस्तक पढ़ते हो— यह क्या है, विचार करो तो। पढ़ना माने to be in the same level of thought with the writer (लेखक के संग में समबुद्धि होना)— like wireless telegraphy (जैसे बेतार-वार्त्ता)। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते एक शब्द आ गया। समझ सके नहीं। इस अवस्था में भाव की चिन्ता करने से शब्द का अर्थ समझा जा सकता है। पहले गुरुमुख से, expert (विशेषज्ञ) के मुख से सुनना, फिर उसको ही पुस्तक में पढ़ना। Books give you suggestions. But you are to make them your own by practice. (पुस्तक तो तुम्हें मात्र इंगित बोल देती हैं। अभ्यास द्वारा उसे अपना बनाकर ले लोगे।) इसका ही नाम तपस्या— इसी चेष्टा का नाम। पढ़ना-सुनना करने से पूर्व एक साँचा बनाओ, एक आदर्श गठन करो। फिर जो भी पढ़ोगे, वह उसी आदर्श के संग test (जाँच) करके लोगे। नहीं तो पढ़ने का फल होता है उल्टा। आदर्श निश्चय करके पढ़ो, काम करो; सारा ही काम में लगेगा। नचेत् उल्टा फल होगा। परमहंसदेव कहा करते, 'शायद रोगी बैठा था, वैद्य ने आकर लिटा दिया'।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— वाह, बहुत ही सुन्दर बातें हैं सारी की

सारी। इन्होंने मुझसे पूछा था, मेम्बर बनूँ कि नहीं? मैंने कहा, यह तो महासुविधा। सस्ते में ही हो गया, अमेरिका जाना होता तो कितना रुपया खर्च होता! वहाँ फिर जाना भी नहीं पड़ा। यहाँ बैठे हुए ही सब कुछ सुन पा रहे हैं। मैं तो कहता हूँ, ये समग्र मिलाकर ही होता है कॉलेज। केवल क्या वह एक कमरा ही कॉलेज होता है? जब तक वे वैसा वैराग्य न दें, तब तक किया क्या जाए? तब तक इसी प्रकार ईश्वरीय आलोचना, humanitarain work (लोक-हितकारी) कार्य सौ गुणा अच्छे।

"छिः, गृहस्थ लोग क्या लिए पड़े हैं? ये तीन-चार जन ही— मेरे लड़के-लड़की, मेरा परिवार, मेरे अपने हैं— ऐसी भावना करने से क्षुद्र घेरे में बद्ध हो जाता है। उसकी अपेक्षा सब जनों को ही अपना मानना कितना महत् है! जो इस रूप में भावना करते हैं, उनका चित्त 'उदार' है— जभी 'महात्मा' कहते हैं। तभी लोक-हितकारी काज अच्छा है।

"आदर्श है ईश्वर-दर्शन। उपाय है निर्जने, गोपने व्याकुल होकर रो-रो कर उन्हें पुकारना— 'दर्शन दो, प्रभु', कह-कह कर। किन्तु, व्याकुलता क्या हर समय होती है? भीतर तो कार्य है। आदर्श और उपाय सुन रखो। अब ऊपर उठा कर, सामने रखकर— काज करना। काज बिना किए तो रह नहीं सकते लोग। लोकहितकारी कार्य अच्छा है; सहायक होता है। सब उनका काज है, इस भावना से करने पर वह बद्ध नहीं कर सकता।

"अपने लिए ही केवल काज करने की अपेक्षा परिवार के दस जनों के लिए करना अच्छा है। बहुजन कल्याण के लिए उससे भी बढ़कर भला है। इसकी अपेक्षा भी ईश्वर के लिए करना श्रेष्ठ है। अपनी देह, परिवार और समाज इन तीनों में ही ईश्वर-दृष्टि हो सकती है। निज देह है उनका मन्दिर, परिवार, समाज, ये भी उनके मन्दिर— वे ही सब होकर रह रहे हैं। सब के भीतर उनका चिन्तन करते हुए कार्य करना। इसका नाम है ईश्वरबुद्धि से काज करना। हमारे मिशन का काज इसी नींव पर प्रतिष्ठित है। उनके लिए करने पर तीनों से ही मुक्ति होती है, नचेत् सब ही बन्धन का कारण। ठाकुर कहा करते, 'अकाज से काज भला।'

"It is a great privilege to sit at his feet (उनके पदतले बैठना महासौभाग्य का काज है)। कितने बड़े-बड़े तत्त्वों की आलोचना होती है। कितना experience (अभिज्ञता) है! पच्चीस वर्ष अमेरिका में वास और फिर ठाकुर के अन्तरंग! अन्य सैकड़ों बातें करके भी घूम-फिर कर उन्हें ठाकुर के पास ही आना होगा। देखिए ना, लैक्चर में इतनी सब बातें करके अन्त में ठाकुर की बात द्वारा conclude (समाप्त) करते हैं। ठाकुर की वाणी मानो सूत्र हैं, और वे मानो उनका भाष्य कर रहे हैं। भाष्यकार (vary) करते हैं; (मत द्वैत हो जाता है), सब एक मत नहीं भी हो सकते। किन्तु सूत्र एक है। *(जगबन्धु के प्रति)*— आप दो वस्तुओं के ऊपर विशेष लक्ष्य रखकर नोट लिया करें। प्रथम— उनके personal experience (निजी अनुभव) की बात। और द्वितीय— ठाकुर की बात। देखिए न, आज कितने scenes (दृश्य) मिले हैं। अमेरिका में पैर टूटना, ऋषिकेश में ज्वर, स्विटजरलैण्ड में पत्थर का आघात। ये सब एकत्र करके अन्त में एक life (जीवनी) लिखी जा सकती है।"

श्री म *(सब के प्रति)*— इतने बड़े पण्डित, देखिए क्या कहते हैं। कहा, नाना शास्त्र जानने से क्या लाभ? कितने शास्त्र पढ़े उन्होंने? उनके मुख की निकली इस बात का बहुत मूल्य है। कहा, शास्त्र में ईश्वर नहीं। अभ्यास का प्रयोजन है। अभ्यास माने तपस्या— 'निरवच्छिन्न तैलधारावत्' (तेल की धार के समान निरन्तर) उनके संग युक्त होकर रहने की चेष्टा। ठाकुर की बात है— बाजे के बोल हाथ में लाने चाहिएँ। जिनकी पण्डित होने की इच्छा है, उन्हें उनकी इसी बात से ही चैतन्य हो जाएगा।

कोलकता; 1 सितम्बर, 1923 ईसवी, शनिवार।
15 भाद्र, 1330 (बंगला) साल, कृष्णा सप्तमी।

त्रयोविंश अध्याय

युद्धक्षेत्र में जैसा सैनिक— वैसा ईश्वर-भक्त

(1)

श्री म मॉर्टन के द्वितल के पश्चिम के कमरे में बैठे हुए हैं। ध्यान शेष हो गया। कमरा भक्तों से पूर्ण। बरामदे में से लालटेन लाई गई। 'कथामृत' पाठ करने के लिए प्रस्तुत हो रहे हैं। तब मोहन ने कमरे में प्रवेश किया। उन्हें देखते ही कहने लगे, ''आज क्या हुआ वेदान्त सोसाइटी में, सुनाइए।'' मोहन पढ़ कर सुनाने लगे। विषय : Dualism (द्वैतवाद)।

''क्रिश्चियन द्वैतवाद के मत में ईश्वर और मनुष्य का सम्बन्ध वैसा ही है जैसा राजा और प्रजा का सम्बन्ध है, अथवा प्रभु और दास का। ईश्वर के प्रिय कार्य करने में अनन्त सुख, Eternal Heaven; अप्रिय करने में अनन्त दु:ख, Eternal Hell. Ten Commandments (दस निर्देश) पालन करने से ईश्वर खुश होते हैं। यही है उपाय।

''ईश्वर शून्य से, out of nothing से, जगत् की सृष्टि करते हैं और हठात् सृष्टि करते हैं, chance creation. वे ही जगत् के शासनकर्त्ता, Governor हैं। जैसे कुम्भकार और कुम्भ, किंवा सूत्रधर (बढ़ई) और मेज-कुर्सी। निर्माता और निर्मित वस्तु जैसे परस्पर पृथक् हैं, उसी प्रकार ईश्वर से जगत् पृथक् है। वे दूर बैठ कर शासन करते हैं। उनका शरीर है। आदम (Adam) जेहोबा (ईश्वर) के साथ टहलते थे। सत्तर विशेष उच्च श्रेणी के भक्तों ने उनका दर्शन करके, उनके साथ भोजन किया था। नोआ की कुरबानी (sacrifice) से ईश्वर तुष्ट हुए थे। मूसा ने उनकी पीठ का दर्शन किया था। हिन्दू और बौद्ध को छोड़ जगत् के प्राय: सकल धर्म ही क्रिश्चियन

धर्म के मत को स्वीकार किए हुए हैं। ईश्वर का प्रिय तथा अप्रिय कार्य ही क्रमशः मुक्ति और बन्धन का कारण।

''हिन्दू द्वैतवाद के मत में ईश्वर के संग जीव का सम्बन्ध बहुविध है। भक्त के भाव का अनुयायी होता है यह सम्बन्ध। कभी भक्त भगवान् को मन में जानता है शान्ति का आधार। कभी कहता है, वे प्रभु, मैं दास। कभी वे भक्त के सखा, पुत्र और पति। अथवा कभी ईश्वर माता, भक्त सन्तान। विविध सम्बन्ध। मनुष्य के नाना भाव। जिसका जो भाव प्रबल, उसी के द्वारा उनके संग सम्बन्ध हो जाता है। जब तक देह में आत्म-बुद्धि है, तब तक ये सम्बन्ध स्वीकार अवश्य ही करने होंगे।

''हिन्दू कहते हैं, ईश्वर इस जगत् की सृष्टि करते हैं— प्रकृति (eternal matter) से। ईश्वर निमित्त कारण, प्रकृति उपादान कारण— जैसे कुम्भ का कुम्भकार निमित्त कारण है और मिट्टी उपादान कारण। जगत् हठात् सृष्ट नहीं हुआ— ईश्वरेच्छा से सृष्टि हुई है। जीव की आत्मा अनादि है, अनन्त है, जन्म-मृत्यु रहित है। हिन्दू कहते हैं, प्रवाह आकार से जगत् अनादि, अनन्त है; किन्तु जीव के निकट अनादि, सान्त है। मुक्ति होते ही जीव के निकट जगत् नहीं रहता। क्रिश्चियन किन्तु जगत् का आदि मानते हैं। भक्त के भाव के अनुयायी भगवान रूप धारण करते हैं— नाना रूप से। सगुण साकार, सगुण निराकार। काली, दुर्गा, शिव, विष्णु, राम, कृष्ण आदि। जगत् के बाहर ईश्वर का धाम है। वहाँ उनके संग रहना अनन्त काल— यही है द्वैत मुक्ति। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि— हिन्दू द्वैतवाद में इतने प्रकार की मुक्ति मानते हैं। और फिर वे जीव और जगत् के अन्तर्यामी हैं, और फिर सर्वव्यापी भी।

''हिन्दू कल्प के अन्त में सृष्टि स्वीकार करते हैं। इस भाव से सृष्टि का 'आदि' स्वीकार करते हैं— किन्तु प्रवाह आकार में अस्वीकार करते हैं। क्रिश्चियन वह मानते नहीं। हिन्दू स्वीकार करते हैं जैसे वट वृक्ष का नाश हो जाने पर भी बीज आकार में अविनश्वर है अर्थात् बीज के भीतर रह जाता है, वृक्ष रूप में नष्ट हो जाने पर भी; उसी प्रकार महाप्रलय में प्रकृति में जीवात्मा-समूह विलीन होकर रहती है। नष्ट नहीं होती। नूतन सृष्टि में पुनः पूर्ववासना

आकर संयुक्त हो जाती है। इसी प्रकार जन्म-मरण, सृष्टि-प्रलय चलता रहता है, यावत् मुक्त होकर ईश्वर के पास जाता नहीं।

''हिन्दू कहते हैं, स्वर्ग (Heaven) में जाना मुक्ति नहीं है, जैसा कि पाश्चात्य लोग कहते हैं। मुक्ति माने जन्म-मरण रूप चक्र से रिहाई पाना। ईश्वर-दर्शन होने पर इस चक्र में पड़ना पड़ता नहीं। यह मुक्तिलाभ प्रत्येक जीव ही करेगा विलम्ब से या अविलम्ब से। वही है उसका स्वरूप। शैतान या अनन्त नरक नहीं है हिन्दूमत में। ईश्वर पाप-पुण्य के लिए पुरस्कार या तिरस्कार करते नहीं। जीव के पाप-पुण्य, भले मन्दे के लिए वे दायी नहीं। क्रिश्चियन और मुसलमानगण ये सब स्वीकार करते हैं। हिन्दू कहते हैं, जीव का अपना कर्म ही पाप-पुण्य का जनक है। वे पूर्व जन्म स्वीकार करके कहते हैं, शुभ कार्य पूर्व जन्म में किए हुए हों तो इस जन्म में भला फल होगा, अशुभ करने से दुःख होगा। कर्मानुगामी जन्म और भविष्यत् की सृष्टि करते हैं हम निज। मनुष्य को कुछ थोड़ी स्वतन्त्रता है। कर्म शुभ-अशुभ फल देता है— ईश्वर नहीं। ईश्वर हैं प्रेममय— मंगलमय!

''हिन्दू कहते हैं, ईश्वर है जैसे चुम्बक का पहाड़; और साधु और महापुरुष हैं जैसे उस पर्वत के बड़े-बड़े टुकड़े। इनकी सेवा मुक्तिलाभ में सहायक होती है। श्री चैतन्य ने जगाई-मधाई को मुक्त किया था। श्रीरामकृष्ण ने बहुत जनों के पाप निज ग्रहण करके उन्हें मुक्ति दी थी। ये महापवित्र और शक्तिमान पुरुषगण हैं, जैसे स्पर्शमणि— उनके स्पर्श से पापीगण मुक्त होकर पवित्र सोना हो गए। उनके संस्पर्श से और भी कितने लोगों का कल्याण हो रहा है।

''हिन्दू प्राणीमात्र को ही जीव कहते हैं। यह जीव रचित हुआ है चौबीस तत्त्वों से— पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ , पञ्च प्राण, पञ्च सूक्ष्म भूत, और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। यावत् मुक्ति नहीं हो जाती, तावत् ये सब संग रहते हैं। जीव की उन्नति की शक्ति है अफुरन्त। एक बार पाप करने से अनन्त नरक नहीं होता; और फिर चेष्टा करके पुण्य करने से परजन्म में भला हो जाता है। हिन्दू-मत में जीव को यही विशेष अधिकार और सुयोग है।

''धर्म की तुलनामूलक गवेषणा का प्रयोजन है। अन्य धर्मों के मूलतत्त्वों को जानना आवश्यक है। जभी निज धर्म में क्या है— भला, मन्दा सब पता लग जाता है। ज्ञान है महाशक्ति। धर्म का मूल तत्त्व है— ईश्वर हैं, यह विश्वास। यह न हो तो चरित्र ही गठित होता नहीं। चरित्र के न रहने से सुख शान्ति कहाँ? ऐलो-मेलो* चलने से चरित्र गठित होता नहीं। एक आदर्श, अर्थात् ईश्वर, स्थिर करके अग्रसर होते रहो। उससे चरित्र गठित होगा। आजकल स्कूल, कॉलिज की पढ़ाई से चरित्र गठित होना कठिन है। तुम निजी चेष्टा करो, कर सकोगे। अमेरिका में प्रत्येक स्कूल, कॉलिज के संग एक-एक गिरजा है। बाइबल नियमित रूप से पढ़ाई जाती है। इससे विशेष कुछ न भी हो, तो भी लड़के-लड़कियों के मन के ऊपर उच्च आदर्श की छाप लग जाती है।

''काज न करने से कुछ होता नहीं। पढ़ो अल्प, अभ्यास करो अधिक। जो पढ़ा है अथवा जाना है धर्म के सम्बन्ध में, उसे ही जीवन में पालन करने की चेष्टा करो। सरल जीवनयात्रा और उच्च चिन्तन, यही चाहिए। पोथीगत विद्या से कुछ होता नहीं— कार्य में लगो। तुम खूब बड़े हो सकोगे। पोथीगत विद्या जैसे धोबी का कारखाना— अपना कुछ नहीं, सब पराया— परमहंसदेव यही बात कहा करते।

''यथार्थ धर्म-जिज्ञासु आजकल कम हैं। मैं सोलह वर्ष की वयस में परमहंसदेव के पास गया था धर्म-जिज्ञासा लेकर। ईश्वर, जीव, जगत्, मुक्ति— इन सब विषयों में परिष्कृत धारणा चाहिए। जैसे लक्ष्य स्थिर किए बिना गोली मारना विफल है, वैसे ही पहले इनका निश्चय करके काज में लग जाओ। देखोगे हुड़हुड़ करके (तेजी से) आगे बढ़ जाओगे। प्रार्थना करो— हे प्रभो, मुझे सुपथ पर चालित करो, ज्ञान-भक्ति दो। परमहंसदेव कहा करते— 'माँ, मैं अन्य कुछ चाहता नहीं। मुझे शुद्धा भक्ति दो— और अचल-अटल विश्वास।' स्वार्थपरता, देह-सुख हैं महाशत्रु। इन्हें छोड़ कर बोलो— हे ईश्वर, हे प्रेममय, मुझे अपने पास ले चलो, मनुष्य बना दो— यथार्थ मनुष्य।''

---

* ऐलो-मेलो= अव्यवस्थित। विशृंखल। उलटा-पुलटा।

श्री म— जभी तो कहता हूँ सब को जाने के लिए। कैसी सुन्दर बातें हैं सब की सब! स्कूल, कॉलिज में यह सब कहाँ पाओगे? कितना बड़ा 'पुरुष'— इधर पण्डित और फिर अन्तरंग। देखो, सारी बातों के अन्त में घूम फिरकर ठाकुर के पास आना होता है। कैसा impression (दाग) लगा दिया है। वह भूल नहीं सकता कोई। अवतार न हो तो यह दाग लगा सकता नहीं। ढ़ोरा साँप* का कर्म नहीं। उनको क्या हम पहचान पाते? वे निज को निज ही पहचानते हैं। कृपा करके हमें खींच लिया है।

श्री म आहार करने के लिए ऊपर गए। भक्तगण भजन गा रहे हैं। मणि गा रहे हैं, 'चलो मुसाफिर बाँध गठरिया, बहुत दूर जाना होगा।' श्री म के आते ही गाना बन्द कर दिया। पुनः उनके कहने से गाना शेष किया। अब श्री म स्वयं गा रहे हैं :

गाना— मा ए तोर कौन देशी विचार।
पथे पथे बेड़ाई केंदे, देखा देस नि एकटि बार॥

[माँ, यह तेरा कैसा विचार है! रास्ते-रास्ते रोता फिरता हूँ, एक बार भी दिखाई नहीं देतीं।]

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— गिरीशबाबू की रचना है। भीतर भाव न रहे तो क्या ऐसा गाना होता है? गिरीशबाबू अन्य लोगों के निकट तो एक बाघ जैसे थे। भक्तों के जाते ही— मैं जाकर देखा करता था कि ना— मानो बालक। (यह) क्या कम? 'चैतन्य चरित' लिखा था ठाकुर के संग मिलन होने के पूर्व। इसी के द्वारा उन्हें प्राप्त किया, यही नैवेद्य-स्वरूप।

श्री म *(जनैक भक्त के प्रति)*— काशीपुर उद्यान में ठाकुर अस्वस्थ। एक दिन कहने लगे, 'यह रोग है मृत्यु-यन्त्रणा। तब भी देह छोड़ने की इच्छा होती नहीं। पीछे तुम लोग रोते-रोते रास्ते-रास्ते घूमते फिरोगे।' आहा, कैसा प्यार भक्तों के लिए! तब सर्वदा चिन्तन किया करते— कैसे ये लोग मनुष्य बनें! क्या करने से ये अनन्त काल के लिए सुख (Eteranl life) लाभ कर सकते हैं!!

* ढ़ोरा साँप = विष रहित साँप, water snake.

''जिन्होंने उनके लिए सब कुछ छोड़ा है, वे कितने व्याकुल हैं! उस दिन सुना, मठ में माँ के मन्दिर में बैठा एकजन सारी रात पुकारता रहा— सामने गंगा। कनखल से एकजन ने लिखा है, 'हम ठाकुर के दर्शन कर सके नहीं। हम क्या अब उनका दर्शन पाएँगे नहीं?' कैसा व्याकुल उनके लिए! कहाँ हिमालय, वहाँ बैठ कर ऐसी बातें सोचते हैं। उनके लिए ही तो इन्होंने सब कुछ छोड़ा है— माँ-बाप, भाई-बन्धु, संसार के सकल सुख। मठ में साधु और पाँच जनों के संग में रहता है, तब एक प्रकार से चलता चला जाता है। किन्तु जब अकेला रहता है, तब क्या भावना करता है, जिनकी imagination (कल्पना) है, वे ही समझ सकते हैं। कितना अधिक व्याकुल है उनके लिए! सर्वदा उन्हें पुकारते हैं। उनकी पुकार क्या फिर within bracket (शौक से) है? वे समझ सके हैं, यह शरीर रहेगा नहीं। इसके रहते-रहते उनका लाभ किए बिना सारा विफल हो जाएगा— 'न चेदीहावेदी-न्महती विनष्टिः।' (ईश्वर को इसी जन्म में नहीं जाना तो महाविनाश— कठोपनिषद् 2:5) वे यह समझ गए हैं, तभी प्राणपन से करते हैं। मन-प्राण-शरीर, सब के द्वारा पुकारते हैं। वे निश्चय ही पूर्ण करेंगे उनकी वासना।''

(डॉक्टर के प्रति)— ''ठाकुर ने इतना ऐश्वर्य हमें दिया है, किसको लूँ, यह स्थिर कर सक रहा नहीं। जैसे 'बाँसवने डोम काना।' (बाँस के वन में डोम (basket-maker) काना हो जाता है।) एकजन साधु ने तनिक भस्म दी, उससे रोग हटा लिया, किंवा रुपया हुआ, उसके लिए ही उसका कितना मान! और जिन्होंने Eternal life— 'अमृतत्वम्' दिया है उनका कितना महत्त्व! वे अनन्त सुख, अनन्त शान्ति भक्तों को देते हैं। जो चाहे, सो पाए।''

28 अगस्त, 1923 ईसवी।

(2)

श्री म उसी कमरे में बैठे हैं— द्वितल के पश्चिम वाला कमरा। तीनों ओर भक्तगण। शुकलाल, डॉक्टर, विनय, मनोरंजन और शची आए हुए हैं।

छोटे जितेन, छोटे नलिनी, अमृत और योगेन प्राय: एक संग ही प्रवेश कर रहे हैं। वेदान्त सोसाइटी से मोहन आए हैं। अब रात्रि साढ़े आठ। श्री म ने नोट्स पढ़कर सुनाने के लिए कहा। आज का विषय है विशिष्टाद्वैतवाद। साँझ को साढ़े 5 से 8 बजे तक सभा होती है। सदस्य संख्या प्राय: 80 जन।

स्वामी अभेदानन्द *(सदस्य गणों के प्रति)*— विशिष्टाद्वैतवाद में ईश्वर विराट है— सब उनके भीतर हैं— God is both intra-cosmic and extra-cosmic. इसी physical world (बाह्य जगत्) की कारणावस्था उनका शरीर है। अनन्त इन्द्रियाँ उनकी ही हैं। वे हमारी सब की आँखों द्वारा एक ही समय में देख रहे हैं। जब यह समझ सकोगे, तब ही विराट भाव की धारणा होगी। तुम मन में सोचते हो, तुम देख रहे हो, तुम सुन रहे हो। किन्तु वास्तव में वे ही सब कर रहे हैं। His breath is wind : His mind is the sum total of all minds. (उनका निश्वास पवन है : उनका मन सकल मन की समष्टि है)। उनकी बुद्धि भी अनन्त! प्रत्येक जीव एक-एक world (जगत्)। इसी प्रकार समस्त जीवों को सोच कर देखो, infinite (अनन्त) हो जाता है। माने, मनुष्य का क्षुद्र मन तो ठीक-ठीक भावना कर सकता नहीं— तभी कहता है अनन्त— पता तो लगा नहीं सकता। ईश्वर और फिर उनकी ही soul (अन्तरात्मा) है। He is both the efficient cause and the material cause (निमित्त और उपादान दोनों ही कारण वे हैं)। वे विश्व के Governor (शासन कर्त्ता) ही नहीं। अनन्त-'मैं'-ज्ञान ही भगवान।

''बाह्य जगत् की कारणावस्था को विराट कहा जाता है। उसको शक्ति या प्रकृति भी कहा जाता है। Matter and force are inseparable (जड़वस्तु और शक्ति हैं अभिन्न)। इनकी कारणावस्था ही है प्रकृति— Energy (शक्ति)। इसे ही लैटिन में Procreatrix or Creative Energy (क्रियाशक्ति) कहते हैं। शक्ति की कारणावस्था है अनुमेय। कार्य देखकर कारण का अनुमान हो जाता है। कार्यशक्ति देखकर कारणशक्ति है, समझ में आ जाता है। पंखा घूमता है, प्रकाश उत्ताप और ज्योति विकिरण करता है, यह कार्यशक्ति देखकर मानना पड़ता है और प्रतीत होता है, इसकी भी एक कारणशक्ति है। वटवृक्ष पर बीज होता है और फिर बीज के भीतर वटवृक्ष

रहता है। बीज, जैसे हमारे हाथ में सरसों का दाना है। देखो, उसमें से कैसा प्रकाण्ड वटवृक्ष हुआ है। शिवपुर में जाकर देखिए बोटेनिकल गार्डन्ज हैं— वहाँ एक ही वटवृक्ष के एक सौ पचास trunks (तने) हैं। ये सब ही उस क्षुद्र बीज में थे— अव्यक्त रूप में। Cause and effect are the different aspects of the same Shakti. (कार्य, कारण एक ही शक्ति के ही भिन्न रूप हैं।) यह है सांख्यदर्शनकार कपिल मुनि का मत। गत शताब्दी के मध्य तक भी Western scientists (पाश्चात्य विज्ञानविद्गण) समझ नहीं सके थे, 'नासतो सद्भाव:'— इस सांख्य सूत्र को। वे कहा करते, Out of nothing, comes something (अभाव से सद्भाव होता है)। Disappearance of something was meant by them as annihilation (पञ्च इन्द्रियों से जो ग्राह्य नहीं, उसका अस्तित्व ही नहीं) यह बात वे कहा करते।

"अंग्रेज़ लोग तुम लोगों से भी आगे बढ़ते जा रहे हैं। सप्तदश शताब्दी पर्यन्त तुम आगे थे। अब उनको पकड़ नहीं सकोगे। उन सब देशों में प्रत्येक धनी के घर में private laboratory (निजी प्रयोगशाला) है। पाँच-सात लड़के सीखते रहते हैं। तुम्हारी कोई ambition (उच्च आकांक्षा) नहीं। गुलामी करना, जूता खाना, क्लर्की करना, हद वकील होना, यही है तुम्हारी ambition (उच्च आकांक्षा)। पाश्चात्यों की है जगत्जयी ambition (उच्चाकांक्षा)। Self confidence, (आत्म-विश्वास) जाग्रत करो। निज पर विश्वास करो, जगत् जीत सकोगे। सोचना होगा, 'हम हैं उनके अंश। हमारा मन है उनके मन का अंश। Inertia (जड़ता) छोड़ो, कहो 'मैं उनकी सन्तान— अनन्त शक्तिमान।' और पुराने शास्त्रों की आलोचना करो। यही विश्वास लेकर जगत् जय कर सकोगे। Conservation of energy (जड़ शक्ति की अक्षयता) को हमारे ऋषियों ने निकाला था। अब उन्होंने यह सब कुछ समझ लिया है, ऋषि हो गए हैं— उनमें बड़े-बड़े सब ऋषि हुए हैं। तुम क्या कर रहे हो— छोटी उमर में ही विवाह करके खाली 'हा पेट, हा पेट' कर रहे हो।

"एक प्राण शक्ति ही पेड़-पौधे, कीट-पंतग सब के भीतर रह रही है।

इसे कहते हैं life (जीवन)। 'Living Being', 'जीवन्त पुरुष' माने ईश्वर। वे ही एकमात्र living (जीवन्त)— हम उनके शरीर में रह रहे हैं। जभी यह लगता है living (जीवन्त)।

''महाप्रलय में सुप्त था, कारण में था; इसको कहते हैं involution (अव्यक्त स्थिति)। और फिर नूतन कल्प में तुम्हें छोड़ दिया। तब जिनका जहाँ जो काज था, उन्होंने वहाँ करना आरम्भ कर दिया। इसको कहते हैं evolution (क्रमविकास, गति)। वे हैं एक endless bonfire (विराट अग्निकुण्ड)। हम सब हैं उनके sparklings (चिंगारियाँ)।

''तुम ईश्वर के बिना क्या रह सकते हो? तुम सोचते हो, तुम्हीं सब कुछ कर रहे हो, सो नहीं। उन्हें छोड़ कुछ भी कर सकते नहीं। 'मैं सब कर रहा हूँ'— इस भाव को कहते हैं अज्ञान। 'तुम ही सब कर रहे हो— मैं यन्त्र मात्र हूँ—' इसे कहते हैं ज्ञान। आज से छोड़ दो यह अज्ञान, कहो— 'मैं उनका अंश हूं।' इससे मन में जोर आएगा। तुम उनकी भान्ति शक्तिमान हो सकोगे— अभी तो हो अल्प शक्तिमान। Bonfire और sparkling (विराट अग्निकुण्ड और क्षुद्र चिंगारी) इन दोनों के गुण किन्तु एक ही हैं। एक चिंगारी से जगत् जला दिया जा सकता है।

''Infinite (असीम) कहने से क्या समझा जाता है? नहीं, वे Immanent और फिर Transcendent (जगत् के अन्तर्यामी और फिर जगत् के अतीत) हैं। तुम्हारी आत्मा तुम्हारे शरीर में भी रहती है और बाहर भी है। आत्मज्ञान होने से यह समझ में आ जाता है, वे अन्तर में और फिर बाहर भी, सर्वत्र वे हैं। विशिष्टाद्वैत मत में है— जीव अंश, ईश्वर अंशी; पूर्ण और अंश— अंशांशी भाव।

''The Theory of Physiology (देह-विज्ञान) पहले इस प्रकार नहीं था। कुछ-कुछ था। अब खूब आगे बढ़ गया है। यह सब तुम्हें जानना दरकार। आकृति (form) माने limitation by time and space (स्थान और काल द्वारा सीमाबद्ध) अवस्था। जब दीवार खड़ी कर दी गई तब गृहाकाश की सृष्टि हो गई। इसलिए तुम्हारी देह उनकी देह नहीं हो सकती—

दीवार खड़ी कर लेने पर। अहंकार रूपी नूतन देहाकाश सृष्टि कर रहे हो दीवार द्वारा। इसका आदि, अन्त है। ईश्वर की देह का वह नहीं है। तोड़ फेंको क्षुद्र देहाकाश— यह गृहाकाश। उनके संग एक हो जाओ।

''Man's relation to God, says Christ, is like the grapes to the vine. It is like the tree, and its branches. The tree is greater than the branches. So, Christ says, my Father is greater than myself (क्राइस्ट कहते हैं, अंगूर की बेल के साथ गुच्छों का जो सम्बन्ध है, जीव का ईश्वर के संग वही सम्बन्ध है। जैसे वृक्ष के साथ उसकी शाखाओं का। वृक्ष शाखाओं से बड़ा है। इसलिए यीशु कहते हैं, मेरा पिता अर्थात् ईश्वर मुझ से बड़ा है।) इसका ही नाम है विशिष्टाद्वैतवाद— पूर्ण के संग अंश का सम्बन्ध। वे हमारी देह की देह, प्राण का प्राण, मन का मन हैं। हम हैं उनमें अवस्थित— उनके अंश, सन्तान।''

श्री म *(मोहन के प्रति)*— प्रकृति तत्त्व की इन्होंने एक प्रकार से व्याख्या की है। दूसरे तो यह बात मानेंगे नहीं। अनेक मत हैं। जभी ठाकुर कहा करते, 'माँ, इतना सब हिसाब-विसाब मैं जानना भी नहीं चाहता, अपने पादपद्मों में शुद्धाभक्ति दो।' तो भी एक बार सुन रखना अच्छा। वे कहा करते, 'के जाने बापू, तोर गाँई गुँई, वीरभूमेर बामुन मुई* *(हास्य)*। मैं उनकी सन्तान— यह जानने से ही हुआ। जान कर तपस्या कर रहा हूँ— चेष्टा करके वही होने की। यही असली बात है।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— आप सब ही जाइये ना— इतना निकट हो रहा है। मिलता ही है कहाँ ऐसा सुयोग? जो लोकशिक्षा देंगे, उन्हें बहुत कुछ जानना आवश्यक। ठाकुर कहा करते, अन्य को मारने के लिए ढाल-तलवार दरकार। निज प्राण तो नहरनी से भी ले लिया जाता है। नाना ज्ञान हैं अस्त्र विशेष।

''अपने प्राण माने false (मिथ्या) अहंकार, कच्चा 'मैं'। एई 'आमि' मले घुचिबे जंजाल— इसी 'मैं' के मरने पर ही जंजाल समाप्त होगा।''

---

* कौन जाने बापू तुम्हारे गाँव, गोत्र; मैं तो वीरभूम का ब्राह्मण हूँ।

(मोहन के प्रति)— "मेरी इच्छा होती है, इस कोलकता शहर में कौन किस भाव में ईश्वर को पुकार रहा है, वह देखूँ। आहा, एक संग यदि देखा जाता यही scene (दृश्य)! फिर भी agency organise (शाखा का संगठन) करने से सारी खबरें प्राप्त हो सकती हैं। भक्त को देखने से भगवान् का उद्दीपन होता है। ईश्वर को लेकर जितना रहा जाए, उतना ही है real life (असली जीवन)। जो चौबीस घण्टे उनको लेकर रहते हैं, वे कौन हैं?

"परमहंसदेव को देखा है दिवानिशि माँ, माँ; कभी समाधिस्थ— अन्तर में माँ के संग एक हो गए। कभी भीतर भी उन्हें देखते हैं, बाहर भी उन्हें ही देख रहे हैं। जभी कहा करते, 'मोम का बाग, मोम का घर, बाड़ी सब मोम का। अन्तरे बाहिरे मोम।' यह है अर्ध-बाह्य दशा; और बाह्य अवस्था में देखते हैं, माँ इसी जगत् रूप में नाना रूपों में खेल कर रही हैं। तब भी 'माँ-माँ' किया करते। और प्रार्थना किया करते, 'अपनी भुवनमोहिनी माया में भुलाना न, माँ।' हम धन्य, उनके दर्शन किए हैं। जो बिना देखे भी विश्वास करते हैं, वे और भी धन्य हैं।"

2 सितम्बर, 1923 ईसवी।

(3)

आज है नन्दोत्सव। गत रात्रि को डॉक्टर, विनय, जगबन्धु प्रभृति भक्तों को मठ में भेजा था। आज सन्ध्या समय श्री म के समीप भक्तगण एकत्रित हुए हैं। श्री म दोतल के पश्चिम के कमरे में कुर्सी पर बैठे हैं, भक्तगण हैं बैंच पर। एक भक्त से पूछा, "बी०एन०आर० के वही बाबू थे क्या रात को वहाँ?"

श्री म *(सहास्य, भक्तों के प्रति)—* छब्बीस वर्ष वयस होगी। (कोलकता के) 'इटाली' में रहते हैं। कल साँझ को यहाँ आए थे। मैंने कहा, आज रात को मठ में जन्माष्टमी-व्रत पालन हो रहा है, जाइए न इनके संग में। भक्त तब जा रहे थे। प्रथम जाने में अनमने हुए, तब कहा, यह

देखिए, साधु सब जा रहे हैं। ये हैं श्वेत-वस्त्रधारी साधु। वहाँ लाल वस्त्रधारी भले-भले साधु हैं। तब राजी हुआ। संस्कार हैं, नहीं तो क्या साधुसंग में रात्रिवास कर सकते थे?

"धन्य हैं ये लोग, गंगातीर पर सर्वत्यागियों के संग में रात्रिवास, पूजा, दर्शन, और फिर भागवत-श्रवण— बड़े सौभाग्य की बात है। दैव वाणी हुई थी— अष्टम गर्भ में भगवान आएँगे और कंस-वध करेंगे। उन्होंने क्या मनुष्यवत् ईर्ष्या-द्वेष करके मारा था कंस को? सो नहीं, क्या किया जाए, अपनी जगत्-लीला-रक्षा के लिए हटा दिया— जैसे माँ अशान्त शिशु को हटा देती है। खूब बढ़ा-बढ़ी होने पर ही ऐसा करते हैं।

"भलाई का भी extreme (शेष) है। बुराई का भी extreme (शेष) है। कंस, शिशुपाल, रावण— ये बुराई की अन्तिम सीमा पर पहुँच गए थे— ईश्वर-द्वेषी। भक्तों का अपमान किया था, जभी माँ इन्हें उठा ले गईं। और फिर भलाई का भी अन्त है। ठाकुर सब को ही मुक्त कर रहे हैं, चिर शान्ति, सुख प्रदान कर रहे हैं— Eternal life (अमृतत्व) दे रहे हैं, जभी उनको भी माँ ले गईं। क्योंकि उनकी जगत्लीला की हानि होती है। सब को ही ब्रह्मज्ञान देने से संसार रहता नहीं। जभी तो कहा था, शरीर जाने के पूर्व, 'मैं मूर्ख, सब कुछ कह देता हूँ, जभी माँ ले जा रही हैं। कुछ दिन और रहता शरीर तो कई लोगों को चैतन्य होता।' भक्तों के भाव में यह बात कही थी, भक्तों की शिक्षा के लिए।

"इस व्यापार से यही जान पड़ता है कि मनुष्य की प्लान, योजना अन्त समय तक टिकती नहीं— भगवान की प्लान, योजना के पास subordinate (अधीनता) स्वीकार करने से चलता है। भक्त के भाव में यह बात कही और भगवान के भाव में चले गए। काज शेष हो गया, जिसके लिए शरीर लिया था; तभी चले गए। वे ही भक्त, वे ही भगवान, एक आधार में दोनों ही। और फिर वे ही कंस और रावण। लीलाजन्य ऐसा होता है। Extreme (चरम अवस्था) में काज होता नहीं— जभी middle path (मध्यपन्था)। भला-मन्दा, इन दो के बीच का होने से संसार चलता है। इसमें interference (बाधा) होते ही ले जाते हैं अथवा चले जाते हैं। भगवान में, अवतार में,

ईर्ष्या नहीं— केवल प्रेम— अनन्त माँ का प्रेम है।''

श्री म *(विनय के प्रति)*— किसने पूजा की, किसने भागवत पढ़ा?

विनय— शशधर महाराज पूजक थे और अनंग महाराज तन्त्रधारक। भागवत भी उन्होंने ही पढ़ा।

श्री म— ऐसे दिन जाना चाहिए मठ में। साधु लोग तब अपने mood (भाव) में रहते हैं। धन्य, जिन्होंने रात्रिवास किया— बहुवर्ष की तपस्या हो गई एक रात्रि में। कैसे सब साधुओं का संग— सर्वत्यागी सब! वे कुछ भी चाहते नहीं— केवल ईश्वर को चाहते हैं। यह काज-कर्म जो करते हैं, यह सब भी गुरु के आदेश से उन्हें लाभ करने के लिए। यह उनका निजरूप नहीं है, निजरूप तो है— उनके लिए व्याकुलता। जो जो-कुछ कहता है, वही करते हैं। जैसे माँ करती है सन्तान के लिए— तारकनाथ में धरणा देती है, कालीघाट में पूजा-मनौती मानती है। जो जो-कुछ कहता है, वही करती है। जब ये ध्यान, जप, पूजा करते हैं, तब इन्हें देखना चाहिए।

''ऐसी सब अमूल्य वस्तुएँ उन्होंने ही कर दी हैं— ऐसे मठ, साधु! किन्तु उसका advantage (लाभ) उठाते नहीं लोग। और फिर कैसे-कैसे सिद्ध पुरुष रहते हैं मठ में! ठाकुर की सन्तानें भी तो हैं कि ना कोई-कोई। इसे ही कहते हैं आँख होते अन्धा, कान होते बहरा।''

(4)

अब अनेक भक्तों का समागम हो गया है। शुकलाल, डॉक्टर, बड़े जितेन, छोटे जितेन और विरिंचि आए हैं। शची, शान्ति और योगेन पहले से ही बैठे हैं। फिर (आए) मणि, अमृत, सुधीर, बड़े अमूल्य और मनोरंजन। जितने ही भक्तगण आ रहे हैं, उतनी ही पुनः-पुनः वही बात कह रहे हैं— ''धन्य हैं वे जिन्होंने कल मठ में साधु-संग में रात्रिवास और भागवत-श्रवण किया है।''

श्री म *(छोटे जितेन के प्रति)*— आज नन्दोत्सव में क्या हुआ मठ में?

छोटे जितेन— देह पर हल्दी-जल बहुत छिड़का गया था और सब साधुओं ने कीर्त्तन किया था :

सुरधुनीर तीरे हरि बोले के जाय रे।
बूझि प्रेमदाता निताई एसेछे रे॥

[सुरधुनी के तीर पर हरि-हरि बोलता हुआ कौन जा रहा है? लगता है, प्रेमदाता निताई आया है रे।]

श्री म— ठाकुर यही गाना गाकर नृत्य किया करते थे।

श्री म कुछ सोच रहे हैं। फिर बातें करने लगे।

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— एक भक्त काँकुड़गाछि गया था। आज सवेरे उसकी मठ में जाने की बात थी। पैर में दर्द होने के कारण फिर जाना नहीं हुआ। बहुत देर तक फटर-फटर करता फिरता रहा। जाता तो यह सारा आनन्दोत्सव देख ही पाता। कपाल में नहीं है। पैर में दर्द होने के बहाने ऐसे स्थान पर भी गया नहीं, कैसे दुःख की बात है! ऐसा दुर्बल होने से चलेगा नहीं।

''जो लोग ईश्वर का लाभ करेंगे उन्हें युद्धक्षेत्र में सैनिक जैसा होना होगा। ज्वर हुआ है, रात जागा है, इतने हिसाब का क्या काम? सेनापति ने आर्डर किया, march (आगे चलो), झट चल पड़ा। कहाँ ज्वर-श्वर भाग गया? चाहे वर्षा भी हो, भ्रूक्षेप नहीं। आगे ही बढ़ता चला जाता है। 'वीरो, देश शत्रु के हाथ में है; शिशु, स्त्री, वृद्ध, शत्रु के हाथ में हैं; मातृभूमि पराधीन हो जाएगी— चलो, वीरो आगे बढ़ो,' ऐसी मर्मभेदी वाणी सुनकर ज्वर पलायन कर जाता है।''

श्री म *(शुकलाल के प्रति)*— जभी तो ऋषियों ने उच्चकण्ठ से कहा है— 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' (मुण्डक उपनिषद् 3:2:4)। दुर्बल का कर्म नहीं भगवान-लाभ करना। स्वामीजी कहा करते, 'क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप' (हे अर्जुन, हृदय की क्षुद्र दुर्बलता को छोड़कर उठ खड़ा हो— गीता 2:3) ऐसे गाने क्या केवल मुख से गाने के लिए हैं?— 'घुम भेंगेछे आर की घुमाइ, योगे यागे जेगे आछि' (निद्रा टूट गई है; और क्या

सोऊँ? योग में, यज्ञ में जाग रहा हूँ।) यह सब चिन्तन करके देखना चाहिए, पालन करने की चेष्टा करनी चाहिए।

''ठाकुर के मुख से गाना सुनकर इतना बड़ा वेदान्तवादी 'न्यांगटा' (तोतापुरी) रो पड़ा था— 'जीव, साज समरे, रणवेशे काल प्रवेशे तोर घरे।' (हे जीव, समर के लिए सजो, रणवेश में काल ने तेरे घर में प्रवेश कर लिया है।) सुन रहे हैं और आँखों में जल है। कह रहे हैं, 'अरे, यह क्या रे?' इतने बड़े व्यक्ति— सुर सुनते ही उनके चक्षु जलमय हो गए; अर्थ समझे नहीं, तब भी।''

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— दो वर्ष परे माँ को मिलने के लिए देश जाता है, तब ट्रेन मिस होती है क्या? किन्तु साधुसंग करने जाने में वह हो जाती है, पैर दर्द करता है— जहाँ जाकर Eternal life (अमृतत्व लाभ) होता है। यह माँ केवल शरीर देखती है। और वह माँ— शरीर, मन, आत्मा; और पुत्र को कैसे Eternal life (अमृतत्व) लाभ हो, वही चेष्टा करती है। सुनता है कौन?— आलस्य! *(उत्तेजित भावे)* दुर्बल होने से चलेगा नहीं। *(जनैक के प्रति)*— बेटा मद पीता है, वेश्यालय जाता है। माँ कहती है, मर्द ऐसा करते ही हैं। यह माँ देखती है, जीता भी है कि नहीं। जहाँ भी रहे, ठीक है, खबर मिलने से शान्ति है। इस माँ के लिए ही यदि इतना प्यार, इतना आकर्षण; तो जगन्माता के लिए, अनन्त काल की माँ के लिए कितना प्यार होना उचित?

श्री म *(सब के प्रति)*— एक भक्त ठाकुर के पास बैठा हुआ था। तब वे *(तर्जनी दिखा कर)* ऐसे हो गए थे सूख कर लकड़ी। वे चले जाएँगे, शोक में जर्जरित था, सिर झुक गया था भक्त का। यह देखकर तत्क्षण उत्तेजित होकर कहने लगे— 'यह क्या! ऐसा होने से चलेगा कैसे— दुर्बलता छोड़ो।'

''ईशु ने कहा था— जो हल देखने के लिए पीछे घूमकर देखते हैं, वे मेरे संगी नहीं हो पाएँगे। जो आत्मीय परिजनों के स्नेह में बद्ध हैं, वे संग नहीं जा पाएँगे। जो भगवान के प्रिय हैं, उनको तो सिर रखने का भी स्थान नहीं— the son of man hath not where to lay his head. (St. Matthew 8:20)

"Battle field (युद्ध क्षेत्र) में सैनिक की न्यायीं होना होगा। पैर दर्द, सिर दर्द, ये तो हैं ही। देखो, शशधर सारी रात जाग कर पूजा करते रहे। मंगल आरती, फिर दिन में भी पूजा— अविराम काम। ऐसा न होने से होगा नहीं।"

श्री म मौन।

भक्त— अच्छा, ठाकुर क्या केवल बाह्य पूजा की बात बतलाया करते?

श्री म— बाह्य पूजा आवश्यक है, और फिर मन में भी पूजा की जाती है, कहा करते। कहा था, 'मने-मने फूल, चन्दन द्वारा इसकी (स्वयं की, भक्त की) पूजा किया करता था।'

छोटे जितेन— अनंग महाराज ने पूछा था, 'मास्टर महाशय के यहाँ कल क्या हुआ था?' मैंने भागवत-पाठ की कथा कह दी। उन्होंने कहा, 'कल तो योगमाया का भी जन्म दिन गया है; जभी हमने चण्डीपाठ किया था।' बसन्त महाराज ने कहा, 'कहना, वहाँ भी चण्डीपाठ करने के लिए।'

श्री म— वे तो देखते हैं यहाँ और वहाँ। सब ही तो एक जगह है, बीच में wall (दीवार) है। तोड़ फेंको, सब ही एक। अनंग वहाँ पर पढ़ रहा है और फिर यहाँ पर भी हो रहा है। सब कुछ ही तो एक ही जगह पर, एक ही उद्देश्य में हो रहा है।

श्री म *(विनय के प्रति)*— हाँ विनय बाबू, तुम एक बार सुखेन्दु बाबू की खबर तो लाओ न। बहुत दिनों से आया नहीं। ठाकुर कहा करते, 'पड़ेछो मोगलेर हाते, खाना खेते होबे साथे।' (पड़े हो मुगल के हाथ, खाना खाना होगा साथ।) *(हास्य)*। हस्पताल में नाम लिखवाया ही क्यों?

श्री म *(सब के प्रति)*— उत्तम वैद्य ज़ोर करके औषधि खिलाता है। केवल विजिट (फीस) लेकर चला नहीं जाता। भक्तों के न जाने पर ठाकुर घर खबर भेजा करते थे। अथवा कभी निज ही जाकर हाज़िर हो जाते। जाकर बोलते, 'तुम बहुत दिन से आए नहीं, मन कैसा हो रहा है!' जैसे

साधारण मनुष्य करते हैं।

''भक्तगण क्या तब समझ पाते थे? वे तभी तो ख्याल नहीं करते थे और आते भी नहीं थे। किन्तु वे उनके लिए पागल। कितना अधिक प्यार होने से यह होता है। कितनी आत्मीय भावना होने पर इस प्रकार कर सकते हैं। जभी तो कहते हैं, अहेतुक कृपासिन्धु। क्यों इस प्रकार किया करते? जानते थे कि ना, उनके द्वारा काज करवाना होगा। उससे उनका भी कल्याण, जगत् का भी कल्याण। अपना अतुल ऐश्वर्य सारा उन्हें दे गए हैं। और वे फिर औरों को दे रहे हैं। इसी प्रकार चलता है एक से दूसरे का।

''जभी कहना पड़ता है, भक्तों के लिए भगवान् को ही भावना होती है अधिक। भक्त उनके लिए फिर कर भी कितनी भावना सकता है? इसी प्रेम-सम्बन्ध की धारणा हृदय में होने से ही हो गया। उसे ही पकड़े पड़े रहो और आनन्द में गाते रहो :

बाजे श्यामेर मोहन वेणु। वेणुरव सुने जुड़ालो तनु॥
जे बने बाजिछे से बने जाइ। ए छाड़ जीवने आर काज नाइ॥
पुराइबो आश मन अभिलाष। हो'ये थाकि श्यामेर चरणरेणु॥
पञ्चमेते पाखी धरियाछे गान। पवन दाँड़ाये शुनितेछे तान॥
जाँहार नामेते यमुना उजान। हाम्बा हाम्बा रबे डाकिछे धेनु॥''

[श्याम की मोहिनी वेणु बज रही है। वेणु की ध्वनि सुनकर शरीर शान्त और सुखी हो गया है। जिस वन में बज रही है, उसी वन में जाता हूँ। इसको छोड़ कर मुझे जीवन में और कोई काम नहीं है। मन की अभिलाषा और आशा पूर्ण हो जाएगी यदि श्याम की चरणरेणु होकर मैं रहूँ। पञ्चभूतों का बना यह पक्षी गाना गा रहा है। पवन खड़ी होकर तान सुन रही है। जिसके नाम से जमुना उजान पथ पर चलने लगती है, गाय 'हम्बा-हम्बा' ध्वनि से डकारने लगती है; उसी श्याम की मोहिनी वेणु बज रही है।]

कोलकता; 4 सितम्बर, 1923 ईसवी, मंगलवार।
19 भाद्र, 1330 (बंगला) साल, कृष्णा अष्टमी।

चतुर्विंश अध्याय

जगत् का मिलन-मन्त्र— श्रीरामकृष्ण की उदार वाणी

(1)

मॉर्टन स्कूल। दो मंजिले पर पश्चिम का कमरा। शरत्काल। श्री म भक्तों के संग बैठे हैं— कुर्सी पर, पूर्वास्य। भक्तगण बैंचों पर। अब रात्रि सवा आठ। शुकलाल, छोटे जितेन, मणि और मणीन्द्र, योगेन और 'बालक खोका' बैठे हैं। डॉक्टर, विनय, वीरेन, रमणी एवं मनोरंजन भी आए हैं; और भी अनेक भक्त हैं। शची और जगबन्धु अभी वेदान्त सोसाइटी से लौटे हैं। मणीन्द्र दो-एक भग्न पद गा रहे हैं। भाव है— काम, क्रोध दमन किए बिना ईश्वरलाभ होता नहीं। और फिर ईश्वर-लाभ न होने से तो सम्पूर्ण दमन होता नहीं। उनको पाना हो तो उन्हीं की शरण लो।

बड़े जितेन और विरिंचि कविराज ने प्रवेश किया।

श्री म *(बड़े जितेन के प्रति)*— ठाकुर ने किन्तु इसी काम की बात एकजन भक्त से कही थी, 'शरीर धारण करने से काम थोड़ा-बहुत रहता ही है। उसमें दोष नहीं।' भक्त ने उनसे निवेदन किया, 'न महाशय, एकदम ही यह न रहे, मुझे वही चाहिए।' ठाकुर ने उत्तर दिया, 'वह क्या होता है? फिर भी ईश्वरदर्शन करने पर होता है।'

''निजी चेष्टा भी चाहिए। जो बतलाया है, उसे पालन करना चाहिए। जैसे कहा था— ब्याह करने पर दो-एक सन्तान हो जाने पर स्त्री के संग एक बिछौने पर न सोएँ। देह से देह न लगाएँ। और जिन्होंने विवाह नहीं किया है, वे विवाह न करें। उनकी ओर समस्त मन देने की चेष्टा करें। एक दिन में कुछ होता नहीं। चेष्टा करते रहो— उनका आश्रय लो। तब होता है। वे

चाहते हैं कि चेष्टा की जाए।

''चेष्टा करते देखकर उनकी कृपा होती है। वे निज आकर हाथ पकड़ कर उठा लेते हैं— जैसे माँ, गिरकर रोते हुए अपने बालक को उठा लेती है। यही उन्हें देखना अच्छा लगता है कि भक्तगण चेष्टा कर रहे हैं। उनको रो-रो कर कहे— 'पिता, मुझसे और होता नहीं, तुम हाथ पकड़ लो।' व्याकुल होकर कहने से वे कर देते हैं। कभी-कभी न बोलने पर भी कर देते हैं। वह है खूब ही exceptional case (विरली घटना)। साधारणतः चेष्टा चाहते हैं। तभी तो गीता में कहते हैं, अभ्यास करो— अभ्यास और वैराग्य। वैराग्य अर्थात् ईश्वर में अनुराग— उनकी शरण लेना। उनसे रो-रो कर कहना। वैराग्य का positive (सुस्पष्ट) अर्थ यही। व्याकुल भाव में कहने से वे निश्चय ही कर देते हैं। उस भक्त का कर भी दिया था।''

अब अभेदानन्द जी के लैक्चर-नोट्स का पाठ हो रहा है। जगबन्धु पढ़ रहे हैं— काली महाराज (स्वामी अभेदानन्द जी) ने आज कहा :

''पाश्चात्य एकजन सुविख्यात मनस्तत्त्वविद् अध्यापक ने कहा है, प्रत्येक चिन्ता ही मन के अज्ञात प्रदेश में एक दाग लगा जाती है— Every sensation keeps an impression in the mind in sub-conscious regions. सर वाल्टर हमिल्टन का भी मत यही है।

''योगी कहते हैं, हमारा वासना-समूह भी उन्हीं सब सञ्चित रेखा-समूहों का ही प्रतिबिम्ब है। पाँच धक्के लगने पर एक action (क्रिया) होती है। प्रत्येक भोग की आकांक्षा ही मन पर एक रेखापात कर जाती है। ये ही संस्कार हैं। एक वासना हुई, उसका भोग हुआ, उससे तनिक शान्ति हुई। फिर और वासना, फिर और भोग, और फिर शान्ति। इसी प्रकार अनवरत चलता है जन्म-जन्म। शान्तिस्वरूप ईश्वर को देखने पर यह प्रवाह बन्द हो जाता है। तब केवल शान्ति!

''संसार के भोग में जो शान्ति है, उसके दूसरी ओर है अशान्ति। योगियों की दृष्टि में तो तभी दोनों ही अशान्ति। उनके पास है शान्ति का आधार एकमात्र ईश्वर। योगी माने जिसने self-control (आत्मसंयम) किया है,

मन जिसका दास है। संसारी माने जिसका वह नहीं हुआ, जो है मन का दास। साधन माने repeatedly (पुनः पुनः) एक ही वस्तु में मन को निविष्ट करना। अभ्यास द्वारा क्रमशः मन वशीभूत हो जाता है।

''बचपन से ही अनेकों का मन भगवान् में आकृष्ट होता है— जैसे परमहंस देव, विवेकानन्द, हम लोग। पूर्वजन्म के शुभ संस्कार लेकर हम जन्मे हैं, इसलिए। तुम निज और पिता-माता सब ही बाल्यकाल से यही चिन्ता करते आ रहे हो— विवाह होगा, बाल-बच्चे होंगे, घर-बार होगा, नाम-यश होगा। इसी भावना में बड़े हुए हो। अब भी यही सोचते हो, अगले जन्म में भी यही भावना करोगे। छोड़ दो यह भावना। अब से अन्य रूप से विचार करना सीखो। आरम्भ करो अभ्यास— इसी जन्म में ही किंवा अगले जन्म में कृतकार्य हो सकोगे।

''यहीं चिन्ता ही सर्वदा करो— every enjoyment leaves an impression in the mind. The collection of such impressions is called *samskara*. This *samskara* repeats itself again and again, and at last forms our habits. These habits again will go with us after death. प्रत्येक विषयभोग से मन पर रेखापात होता है। यही रेखासमूह ही संस्कार नाम से परिचित है। संस्कार मन में पुनः पुनः उदय होता है। इसी प्रकार रेखा की चक्रवृद्धि होती रहती है। फिर संस्कारों के समूह द्वारा अभ्यास वा चरित्र गठित होता है। यही चरित्र अथवा अभ्यास ही पुनः पुनः जन्म-मृत्यु का कारण होता रहता है। इस प्रकार बढ़ता ही रहता है, अन्त नहीं। यदि यही रोज चिन्ता करके देखोगे तो मन होशियार हो जाएगा। वह हो जाने पर बन्धन का काज फिर और नहीं कर सकोगे।

''पाश्चात्यगण यही तो ग्रहण करते नहीं। पूर्वजन्म मानते नहीं— जभी कर्मफल भी मानते नहीं। सूफी मानते हैं, थिओसोफिस्ट मानते हैं। 'न्यू साइन्स' ने भी मानना आरम्भ किया है। एक बाप के पाँच बेटे हैं— उनमें एकजन साधु है— यह explain करना (समझाना) कैसे होगा पुनर्जन्म बिना माने? यदि कहो ईश्वर की इच्छा, तो फिर दूसरे एकजन का क्यों हुआ नहीं? ईश्वर की इच्छा, उनकी कृपा है जैसे सूर्य का प्रकाश— साधु और खूनी, दोनों

के ही ऊपर समान भाव से वर्षित होता है। कर्मफल मानने से इसका explanation (अर्थ-निर्णय) हो जाता है। अंग्रेज़ कहते हैं, लूथर (Luther) भी कहता है— Man is a beast of burden. Sometimes God drives it, sometimes Satan. (मनुष्य एक भारवाही पशु है— कभी वह ईश्वर के द्वारा चालित होता है, कभी उसे शैतान चलाता है।) वे शैतान के द्वारा भ्रम, पाप इत्यादि explain (व्याख्या) करते हैं। इस मत की अपेक्षा हमारा मत more rational and scientific (अधिक युक्ति और विज्ञान-सम्मत है।) हमारे मत को आजकल बहुत से अंग्रेज़ों और अमेरिकनों ने लेना शुरु कर दिया है। ईसाई धर्म में ये सारे तत्त्व explain (व्याख्यायित) न हो सकने के कारण अनेकों ने यह धर्म छोड़ दिया है। वे कहते हैं, भले का creator (सृष्टिकर्त्ता) God (ईश्वर) है और खराब का शैतान।

''पाप, भ्रम, मोहजाल— ये सारे ही पूर्व अभ्यास के कारण होते हैं। यह दोष भी मेरे द्वारा ही किए गए हैं— यह बात ही सोचो। बाप, माँ अथवा ईश्वर के ऊपर नहीं थोपना चाहिए। अपने ऊपर लेने से शीघ्र छोड़ने की चेष्टा होती है। शास्त्र यही कहता है, तुम निज के लिए निज ही दायी हो। पाप-पुण्य का दायित्व अपने पर लोगे।

''Some again argue to explain the varieties of nature of men— good and evil, by heredity or environments or both. But the same objection comes again. If it is true, then why the five sons of the same parents born, brought up and educated under the same conditions and environments differ in their character? So, this explanation is unsatisfactory. Therefore the Law of Karma is the best instrument to explain it.

''एक मत है— जो वंश और वातावरण की दुहाई के द्वारा, मानव चरित्र के भले-बुरे की विचित्रता की व्याख्या करता रहता है। पुनः पूर्वकथित आपत्ति उठती है, यदि वंश के दोषगुणों में अथवा वातावरण के दोषगुणों में शक्ति होती है तो फिर एक ही माता-पिता की पाँच सन्तानें पाँच प्रकार की होती हैं क्यों? इन सब का ही तो जन्म, लालन-पालन और शिक्षा एक ही माता-पिता द्वारा एक ही अवस्था और वातावरण के भीतर ही तो सम्पन्न होते

हैं। इसीलिए उनका मत समीचीन नहीं है। जभी कर्मवाद वा पुनर्जन्मवाद है ग्रहणीय। संस्कारतत्त्व अनायास ही यह संशय दूर करने में समर्थ है।

''दुःख दूर करना हो तो जन्म-मरण दूर करना होगा। वह करना हो तो आत्मसंयम वा चरित्र-गठन आवश्यक है। वह हो तो विषय-भोग छोड़ देना होगा। भोग से शान्ति तो पा सकते हो, इन बाहर के पदार्थों से, किन्तु वह क्षणस्थायी है। थोड़ा पीछे ही दुःख आ पड़ेगा। विषय-भोगों में जो शान्ति है, उसे तामसिक कहते हैं। ऋषिगण, योगीगण इन्हीं सब कारणों से कहते हैं भोग की निवृत्ति नहीं है। आग पर जितना ही घी डालेंगे उतनी ही वह जलेगी।

''शान्ति पाना चाहो तो 'खाटो आर ताँके डाको।' (परिश्रम करो और उन्हें पुकारो) निश्चय ही पाओगे। निज चेष्टा किए बिना कोई शान्ति नहीं पाता। विचार करो और काज करो। मैं सर्वदा विचार करता हूँ— ईश्वर सत्, जगत् असत्, भोग असत्। निर्जन में, वन में, बैठकर और फिर सब में यहाँ बैठकर भी यही एक ही विचार करता हूँ। यही है एकमात्र शान्ति का पथ। विवेकानन्द, परमहंसदेव, गौरांग, ईशु, बुद्ध सब ने ही यही विचार किया, एक ही conclusion (सिद्धान्त) है सब का।

''तुम जो शिक्षा पाते हो उसे कौन देते हैं? जो शान्ति के पास से भी गए नहीं। तुम फिर यदि विवाह न करना चाहो, डॉक्टर कहेगा ब्याह करो। बाप-माँ भी जोर देंगे। वे इसी एक आश्रम की ही खबर जानते हैं। ऊपर वालों का सम्वाद नहीं। Eunuch (नपुंसक) भी कहेगा ब्याह करो। विवाह, सन्तान-उत्पादन, धन-उपार्जन, इनमें शान्ति नहीं। आँखों के सामने ही तो इसका परिणाम देख रहे हो।

''ईश्वर की शरण लेकर जो भी चाहो करो, बाबा! वह नहीं, तो शान्ति मिलेगी नहीं। केवल स्त्री-पुत्र-कन्या, धन-जन, नाम-यश कोई भी शान्ति दे सकेगा नहीं। धनी को शान्ति नहीं। धन भोग की वृद्धि करता है। आदर्श है ईश्वर। उन्हें आलिंगन करके संसार करो, अर्थ उपार्जन करो, इससे बद्ध होवोगे नहीं। जो विष प्राण हरण करता है, वही विष प्राणदान करेगा।

क्रमशः परम शान्ति लाभ कर सकोगे।

''परमहंसदेव को लोग बोलते पागल। क्योंकि उन्होंने विवाह किया, किन्तु स्त्री-संग किया नहीं। विवेकानन्द को डॉक्टर ने कहा था, विवाह करो, नहीं तो माथा खराब हो जाएगा। हमें भी पागल बोलते। डॉक्टर कहते हैं, विवाह न करने से रोग हो जाएगा और यह जीवन नीरव भाव में अकेला-अकेला कटेगा और विफल जाएगा। ऐसे सब डॉक्टर, ऐसे लोग होते हैं तुम्हारे उपदेष्टा! वे इस शरीर के बाहर दृष्टि डाल ही सकते नहीं। यह शरीर जो रहेगा नहीं, यह बात भूल गए हैं।

''योगीगण किन्तु इस शरीर के भीतर और भी दो शरीर देख सकते हैं— सूक्ष्म और कारण शरीर। ऐसे उपदेशकों के परामर्श पर चलने से क्या दशा होगी, जानते हो? 'अन्धेन नीयमाना यथान्धाः अन्धकूपे पतन्ति'— यह दशा होगी। अन्धा और अन्धाचालक दोनों जनों का ही प्राण जाएगा कुएँ में गिरकर। यूनिवर्सिटी भी ठीक शिक्षा दे सकती नहीं। कुछ information (जानकारी) जानने का नाम शिक्षा नहीं है। इससे चरित्र गठित होता नहीं। चरित्र-गठन की शिक्षा होगी practical— 'हाथे कलमे' (हाथ से करने पर)। मस्तिष्क और हाथ एक संग काज करेंगे। तब ही शिक्षा होगी जीवनप्रद।

''असंयमी, कामुक, विषयतृष्णार्त व्यक्ति के निकट ऐसी ईश्वरीय बातें करने से वह कहेगा, तुम पागल हुए हो। उसे इसकी धारणा ही नहीं, विषय-भोग के ऊपर भी कोई भली वस्तु है। शाश्वत सुख, शाश्वत शान्ति, ब्रह्मानन्द की खबर उसे मिली नहीं। तभी कहता है पागल। विषयतृष्णा से काम, क्रोध, लोभ होता है, नामयश की आकांक्षा होती है; मान-अभिमान, परश्रीकातरता, ईर्ष्या-द्वेष उत्पन्न होते हैं। मन का विश्लेषण करके देखो, कौन-सा भाव प्रबल है। इसका निर्जन में बैठ कर दमन करने की चेष्टा करो, अभ्यास करो। संसारी लोग भी इस प्रकार विचार और अभ्यास के द्वारा ज्ञान-लाभ कर सकते हैं और इस संसार को ही 'मजे की कुटीर' बना सकते हैं। उनको छोड़ संसार क्या? उनमें मन रख कर संसार करो।

''हमने देखा है— गुहा में ही बैठो, या वन में जंगल में ही बैठो, या फिर राजप्रासाद में ही बैठो, सर्वत्र ही शान्ति है। तिब्बत में जाकर भी देखा वही शान्ति, अमेरिका में रहकर भी वही, कनाडा और यूरोप में भी वही शान्ति। सर्वत्र ही शान्ति। जभी तो परमहंसदेव कहते, 'जिसको यहाँ है, उसे वहाँ भी है। जिसे यहाँ पर नहीं, उसे वहाँ पर भी नहीं।' वे कहा करते, 'वृन्दावन में जाकर देखा; वैसे ही इमली के पेड़, वैसा ही सब कुछ, तो फिर हमारा दक्षिणेश्वर ही भला।' तब फिर और कहीं गए नहीं। भीतर में शान्ति स्थापित होने पर जहाँ भी रहो, शान्ति। मैं जो इतने काल पीछे लौट कर इस देश में यहाँ रह रहा हूँ, इसमें भी शान्ति है। समस्त पृथ्वी घूम कर देख कर आया हूँ, सर्वत्र ही यही बात— शान्ति सर्वत्र।

''तुम लोगों को भी होगा यही शान्ति-लाभ। मन को जीतने की चेष्टा करो। काज में लग जाओ, क्रमशः special (विशेष) उपदेश दिए जाएँगे। प्रातः आध घण्टा और रात्रि को आध घण्टा अभ्यास करो तो देखूँ। रात्रि में सोने के समय ये सब बातें विचार करके सोओगे।

''मन है बड़ा चंचल। इसे बस में करना हो तो खूब परिश्रम करना चाहिए। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यही बात कही थी, अभ्यास और वैराग्य द्वारा मन को वशीभूत करो। थोड़ा-थोड़ा करके रोज करने पर, अन्त में देख सकोगे, अनेक हो गया है। लग जाओ— बातें करो नहीं और काज में लगो— अभ्यास और प्रार्थना। निर्जन में जाकर कभी-कभी अकेले बैठो। नित्य भी अभ्यास के समय अकेले बैठो। पाँच जनों के संग बैठने से उनके रंग में ही रंगे जाओगे।

''हिन्दू लोग बचपन से ही इसी अभ्यास की शिक्षा दिया करते थे पहले। छोटे बच्चे को गायत्री दे देते— पाँच-सात वर्ष के शिशु को। बिठाकर रोज तीन बार अभ्यास करवाया करते। ये सब कुछ भूल गए हैं अब, कौन कराए? बाप जानता नहीं, अभ्यास छोड़ दिया है। स्कूल-कॉलिज में भी नहीं यह शिक्षा। इसलिए अकेले बैठकर पुनः अभ्यास आरम्भ करो। संसर्ग-रंग। तुम साधु, चोर, शराबी, जिस संसर्ग में रहोगे, वही सब वृत्ति तुम में आएगी। परमहंसदेव कहा करते, मन जैसे धोबी का धुला कपड़ा है— लाल, काला,

सफेद, पीला जिस रंग में ही रंगाओ, वही होगा। अकेले सोओ, तब मन को जीतने की चेष्टा करो। मन को गढ़ो, धोखेबाज मत बनो। मन-मुख एक करो। स्वराज चाहो तो वह भी आएगा। स्वराज लाभ तो है last thing (अन्तिम बात)। मन तैयार करो पहले। चरित्र ही असली वस्तु है। यही संग जाएगी जन्म-जन्मान्तर। नाम-यश, स्त्री-पुत्र, रुपया-पैसा सब पड़ा रहेगा। अमूल्य वस्तु इस चरित्र को ही तैयार करो।''

(2)

प्रश्न— ईश्वर ने क्यों पाप-पुण्य की सृष्टि की?

उत्तर— उन्होंने नहीं की। हम करते हैं। हम हिन्दू हैं पाप-पुण्य के सृष्टिकर्त्ता। मैं स्वयं भी यह बात मानता हूँ कि निज के चंगे-मन्दे संस्कारों से ही इस पाप-पुण्य की सृष्टि होती है। अज्ञान से जो काज होता है, जिससे ईश्वर दूर रहते हैं, वही पाप है। जो ईश्वर को निकट ला देता है, वही है पुण्य।

''Evolution Theory (क्रम-विकासवाद) के अनुसार प्रथम अवस्था mineral (खनिज पदार्थ) है, तब फिर वृक्ष, जन्तु, मनुष्य, एक के बाद एक होते हैं। मनुष्य में अज्ञान, फिर ज्ञान; सर्वशेष देवत्व, man-God. बुद्धदेव किस जन्म में क्या हुए थे, यह सब 'जातक' (ग्रन्थों) में है। पशु, पक्षी कितना ही कुछ होने पर फिर बुद्ध हुए। श्रीकृष्ण ने कहा, मैं अनेक बार जन्म ग्रहण करता हूँ। इसी प्रकार चलते-चलते, जन्मों पर जन्म, (होकर) अन्त में परमहंसदेव होता है। परमहंस होने पर 'धायी' छूना हो गया। उनका और आगे खेल चलेगा नहीं। काज समाप्त हो गया, अब स्वयं देवता। बिल्ली, कुत्ता— सब जीवों को ही एक दिन इस प्रकार देवत्व लाभ करना होगा। इसी का नाम है मुक्ति— इसी का नाम है स्वराज लाभ।''

श्री म— आज की कथा में अभ्यास की बात बहुत अच्छी कही। अभ्यास माने पुनः-पुनः एक ही वस्तु का चिन्तन करना। इसका ही नाम है तपस्या। मन जाता है विषय में, संसार-भोग में, अशान्त बालकवत्। उसे

लाकर घर में बिठाना। कभी प्यार से, कभी समझा कर, कभी मार कर; जैसे माताएँ करती हैं बालकों के साथ। घर में माने उनके चरणकमलों में— यह खूब सुन्दर बात है— और प्रार्थना। ये दोनों ही उत्तम बातें हैं। पालन करने से बच जाएगा।

''प्रार्थना करनी चाहिए, प्रभु मुझे सुमति दो— अपने पाद-पद्मों में मन रखो। ठाकुर कहा करते— 'अपनी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध करो न।' और सत्संग। अभ्यास, प्रार्थना और सत्संग— ये सब अमूल्य बातें हैं। संग में दोष, गुण पकड़ा जाता है, जभी सत्संग। संगदोष से भारतवर्ष कितना नीचे चला गया है, और फिर उठ रहा है।''

श्री म *(सब के प्रति)*— ठाकुर आने के पूर्व कितना lower (नीचे) हो गया था हमारा ideal (आदर्श)। सब ने ही सोचना आरम्भ कर दिया था, साहेबियाना करना ही जीवन का उद्देश्य है। इतने बड़े व्यक्ति विद्यासागर महाशय— वे भी संगदोष में पड़ गए। इसमें तो फिर उनका दोष नहीं। संग का प्रभाव लगेगा ही— जिस संग में, जिस environment (वातावरण) में रहते थे उसका दोष। तब इस देश में साहब लोग नए-नए आए थे। सब ने ही धारणा कर ली थी, उनका सब कुछ ही अच्छा है। देखा, कितना अध:पतन हुआ देश का। अब फिर सब लौट रहा है।

''विद्यासागर महाशय की 'चरितावली' और 'आख्यानमंजरी' उसी भाव के लेखों से पूर्ण हैं। अंग्रेज़ों की जीवनियाँ बंगला में अनुवाद की गई हैं उस पुस्तक में। उसमें है क्या? यही ना, अमुक व्यक्ति खूब गरीब था, नाना कष्टों में पड़कर प्रात:स्मरणीय हो गया। Rover (नाविकों) की जीवनियाँ हैं। ये खूब गरीब थे। पैसा नहीं पढ़ने को। वन में गए और 'वनबिलाव' मारने आरम्भ किए। कितना रक्तपात! फिर उन सब बिल्लियों की खाल लेकर बाजार में बिक्री करके उस अर्थ से पढ़ने का खर्च चलाने लगे। आहा, कैसे आदर्श की कहानियाँ हैं ये सब— महानिष्ठुर कहानियाँ। और ठाकुर ने क्या कहा? 'झाड़ू मारता हूँ लोकमान्य को।' वे नाम-यश चाहते हैं, वही है आदर्श। किन्तु इन्होंने उसको झाड़ू मारी। ये सब हैं हीन वस्तुएँ, यह बात कही। आदर्श है भगवान लाभ।

''पाश्चात्य के पास आदर्श की दिशा में देने को और है भी क्या? उनके life (जीवन) में है ambition (आकांक्षा), socialism (समाजनीति) और बहुत है तो politics (राजनीति)। वाइस्कोप, थियेटर, नॉवल, डिनर, ड्रैस, टॉयलेट— सिनेमा, ड्रामा, उपन्यास, खाना, कपड़ा, शृंगार ये ही तो लेकर रह रहे हैं वे। और लड़कियों के संग बैठ कर गाना-बजाना— जिन लड़कियों के संस्पर्श में व्यक्ति संसारी होता है, उनके संग बैठकर कथावार्त्ता, गाना बजाना! यही तो उनका ideal (आदर्श) है।

''हमारे देश के युवकों ने भी वही करना शुरु कर दिया है। ऐसा देख-सुन कर पीछे संसारी होने की इच्छा बढ़ जाती है। उच्च आकांक्षा— ईश्वर-लाभ इत्यादि भूल जाता है। उनके देश की साइन्स तो अच्छी है, किन्तु इसका प्रयोग न जानने के कारण उसने उन्हें भोगी बना डाला है; और इसके द्वारा दूसरी जातियों पर, दुर्बलों पर अत्याचार करते हैं। किन्तु ज्ञान-लाभ का उद्देश्य है धीरे-धीरे ज्ञान स्वरूप ईश्वर को अन्त में प्राप्त करना। किन्तु वह हो रहा है कहाँ, उल्टी दिशा में जा रहे हैं। अन्धा अन्धे को चलाए तो दोनों का ही ध्वंस।

''ऋषि जानते थे, ईश्वरलाभ जीवन का उद्देश्य है। जभी इस देश को इसी भाव से तैयार कर गए हैं। गिर गया था भारतवर्ष, अब फिर उठ रहा है। कोई रोक सकेगा नहीं। जगत् में अद्वितीय स्थान प्राप्त करेगा। ठाकुर आए ही इसीलिए, उन्होंने तभी कहा, गुरु-वाक्य में विश्वास। गुरु माने ईश्वर, अवतार, ऋषि। इनके वाक्य, गुरु-वाक्य सुनने से अध:पतन भी रुक जाएगा, भय भी दूर हो जाएगा।''

श्री म मौन हैं। कुछ काल पीछे बातें करने लगे।

श्री म *(वीरेन के प्रति)*— संसारी क्या लिए पड़े हैं? चारों ओर है feeder (भोग्य वस्तु) ही केवल। मन यदि कहीं कष्ट करके थोड़ा-सा स्थिर भी होता है, झट चारों ओर से stimulti (विषय) का आक्रमण होने लगता है। ठाकुर ने जभी तो कहा था, जहाँ जल ठहर जाता है, उसके पास कोई नदी-टदी जा रही है। उससे जल सिम-सिम कर आता रहता है। प्रान्तर के

दो गर्तों को देख कर कि एक में जल है, दूसरे में नहीं, यह बात कही थी।

''संसारियों की यही अवस्था है। कणमात्र जैसे ही वासना सूखी तैसे ही और आ गई। और संग-संग (इंद्रियों को)आहार भी मिल गया। जभी निर्जन में जाकर पहले माखन निकाल लेना चाहिए। जीवन का उद्देश्य है ईश्वर-लाभ, यह बात समझ कर तपस्या करे— फिर आकर संसार करे। इससे इतनी क्षति होगी नहीं।''

श्री म *(विरिंचि के प्रति)*— हमारा क्या सहज में ही चैतन्य होता है? देखिए ना, जापान में क्या महाकाण्ड हो गया। एकदम ही पाँच लाख लोगों के प्राण गए। ऐसा उन्होंने क्यों करवाया? हमारी शिक्षा के लिए। संसारी एक लड़के के लिए शोक करता है, और यहाँ इतने लोग एक संग गए। यतीमखाने की अपेक्षा भी कितना बड़ा काण्ड। वहाँ 43 शिशुओं के प्राण गए। जापान में उसकी अपेक्षा कितना बड़ा काण्ड हुआ। उन्होंने सावधान कर दिया है, नीचे volcano (आग्नेय पर्वत) है। लोग मानते नहीं, जभी विनाश होता है।

''कितनी बार हुआ है जापान में वैसा, तब भी सुनते हैं कहाँ लोग? चैतन्य होता है कहाँ लोगों में? प्रथम बार जब घोड़े से गिरे थे तो अधरसेन को घोड़े पर चढ़ने से मना किया था ठाकुर ने। किन्तु सुना नहीं। द्वितीय बार घोड़े से गिर कर शरीर गया। ठाकुर ने तब कहा था, 'माँ बार-बार बोलतीं नहीं।' बीच-बीच में warn (सावधान) करती हैं। चैतन्य न हो तो मृत्यु निश्चय।''

कोलकता; 5 सितम्बर, 1923 ईसवी, बुधवार।
19वाँ भाद्र, 1330 (बंगला) साल, कृष्णा नवमी।

(3)

मॉर्टन स्कूल। द्वितल का पश्चिम वाला कमरा। शरत् काल, सन्ध्या साढ़े सात। श्री म भक्तों के संग बैठे हैं। सन्ध्या का ध्यान और फिर गाना हो गया है। अब श्री म 'कथामृत' से ठाकुर की एक लीला-छवि पढ़कर भक्तों

को सुना रहे हैं।

श्री म पढ़ रहे हैं— ठाकुर श्रीरामकृष्ण मध्याह्न सेवा के पश्चात् दक्षिणेश्वर-मन्दिर में भक्तों के संग कमरे में विश्राम कर रहे हैं। ...तब ज्ञान बाबू आए, एम०ए० पास हैं, सरकारी काज करते हैं। द्वितीय स्त्री ग्रहण करें कि नहीं, विचार कर रहे हैं। प्रथम स्त्री गत हो गई है।

श्रीरामकृष्ण *(ज्ञान को देखकर)*— अरे, यह क्या हठात् जो ज्ञानोदय! ... *(सहास्य)* तुम ज्ञानी होकर अज्ञानी कैसे? ओ समझा, जहाँ पर ज्ञान है, वहाँ पर ही अज्ञान है। इतने ज्ञानी वशिष्ठदेव भी पुत्रशोक में रोए थे। इसीलिए तुम ज्ञान-अज्ञान के पार हो जाओ। ...*(पण्डित शशधर को)* देखा था— एकघेये[1] है। केवल शुष्क विचार लेकर रह रहा है ...केवल शुष्क ज्ञान— वह जैसे फुस् करके उठने वाला अनार। क्षणिक फूल रच कर भट् करके टूट जाता है।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— यह है चतुर्थ चित्र। इससे पूर्व तीन हो गए हैं। ठाकुर ने कहा, ज्ञान लेने पर फिर अज्ञान क्यों? माने एक बार ब्याह करके देखा, सुख से दुःख ही अधिक है। प्रथम स्त्री के मर जाने से शोक हुआ है और फिर भी जानबूझ कर उसी में फिर जाने की चेष्टा कर रहे हैं! तभी तो ठाकुर ने यह बात कही। Indirectly suggest (परोक्ष भाव से कह रहे हैं) फिर ब्याह न करें। जिस मन को भगवान के पाद-पद्मों में दोगे वह मन अन्य विषय में चला जाएगा। साहस भी दे रहे हैं और फिर दोष भी दिखला रहे हैं। 'साहस', शुभ संस्कार हैं, नहीं तो ठाकुर का दर्शन-लाभ होता ही नहीं। जभी कह रहे हैं, 'तुम हो ज्ञान।' 'अज्ञान' माने पुनः संसार में प्रवेश कर रहे हो ब्याह करके।

''संस्कार प्रबल हैं— खींचे लिए जा रहे हैं। शशधर का नाम लेकर यह भी बतला रहे हैं कि पढ़े-सुने का ज्ञान और बुद्धि-ज्ञान, ये सब दुर्बल हैं। फुस् करने वाली 'तुबड़ी' (अनार) माने भीतर प्रबल शक्ति नहीं। ज्ञान का प्रवाह uniform (एक समान) नहीं। कारण, यह है पोथी-पढ़ा ज्ञान।

---

1 एकघेये = कट्टर, एकसुरा।   2 अफुरन्त = अनन्त।

भगवान के पास से जो ज्ञान आता है— वे स्वयं राशि ठेल देते हैं उस ज्ञान की। जभी वह सरस होता है— और अफुरन्त[2]। वह मानो लगातार फूल रचता अनार— फुस् करता नहीं— बातों में अथवा व्यवहार में बेताल होता नहीं। खूब दम दिया हुआ— जभी एक समान ज्ञान। उसे विज्ञानी की अवस्था कहते हैं— ब्रह्म ज्ञान के परे होती है— चैतन्य देव, ठाकुर, इनकी यही अवस्था थी।''

श्री म *(जनैक भक्त के प्रति)*— पहले के scenes (दृश्य) तीनों संक्षेप से बताओ तो।

भक्त— प्रथम चित्र, दक्षिणेश्वर-मन्दिर का ठाकुर-घर। सन्ध्या के परे कह रहे हैं, जो सर्वदा ईश्वर-चिन्तन करता है, उसे सन्ध्या की आवश्यकता नहीं। ऋषिकेश में एक साधु झरने के पास खड़ा हुआ सारा दिन बोलता रहता था— 'बा, वेश करेछो', बहुत सुन्दर किया है।

द्वितीय चित्र— ठाकुर पञ्चवटी से कमरे में आ रहे हैं। आकाश में ठाकुर के पीछे नवीन मेघ है, उसका प्रतिबिम्ब गङ्गा में पड़ा है— मेघ है मानो पृष्ठ-भूमि।

तृतीय— बलराम का बैठकखाना। बलराम के पिता को कह रहे हैं, जिसने समन्वय किया है, वही मनुष्य— 'जे समन्वय कोरेछे शेइ लोक'।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— ध्यान तीन रकम से होता है। रूप चिन्ता, लीला चिन्ता और महावाक्य चिन्ता। यह चित्र समूह ही लीला चिन्ता है— संग में रूप भी है, वाक्य भी है। इस प्रकार सहज हो जाता है।

(सहास्य) ''वैष्णव लोग कट्टर होते हैं कि ना! जभी बलराम बाबू के पिता को कह रहे हैं, 'अनेक ही कट्टर हैं।' ठाकुर यह पसन्द नहीं करते थे। वे आए जगत् के लोगों को एक संग में मिलाने के लिए, तो किस तरह कट्टरपन अच्छा लगेगा? निरक्षर मनुष्य, किन्तु कैसे उदार! उनके पास हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, भिन्न-भिन्न धर्म के लोग आते हैं। सब को ही ग्रहण करते हैं। उनका नाना धर्मसाधन ही है इसीलिए— जानते थे कि जगत् एक ही परिवारवत् हो जाएगा। विज्ञान के प्रभाव से यातायात की सुविधा होती जा रही है। अब कट्टरपन का स्थान नहीं। कितना पहले से ही देख लिया था, जगत् एक

संग में मिल रहा है। उनका यही उदार भाव ही सब को एक संग में मिलाएगा। इस बीच ही देखा जा रहा है, कितने देशों के लोग उनका भाव ग्रहण कर रहे हैं।''

कुछ क्षण परे भागवत पाठ हो रहा है। जगबन्धु पढ़ रहे हैं।

पाठक *(पढ़ रहे हैं)*— श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं— 'हे पार्थ, जिस अधम ब्राह्मण ने रजनी में निद्रित निरपराध बालकों का वध किया है, उसका प्राण हरण करो। ऐसे व्यक्ति को क्षमा करना विधेय नहीं। जो युद्ध-धर्म को जानते हैं, वे कभी भी मद्यादि पान में मत्त, असावधान, सुरापान आदि द्वारा उन्मत्त, निद्रित, बालक, स्त्री, उद्यमहीन, शरणागत, रथहीन और भीत रिपु का वध करेंगे नहीं। जो निर्दय खल व्यक्ति दूसरे की प्राणहानि द्वारा अपने प्राण का पुष्टिसाधन करें, उनको प्राणदण्ड देने से उनका ही कल्याण होगा। कारण, दण्ड वा प्रायश्चित द्वारा दोष दूर किया न जाए तो अपराधी की अधोगति ही हुई रहती है। अतएव इस पापिष्ठ स्वजन घातक का वध कर।'

श्री म— पहले ये सब 'युद्ध-धर्म' माने जाते थे। अब यह नहीं होता। हो सकता है हस्पताल पर ही बम्ब गिरा दें। इनका पालन होता है उस समाज में, जिस समाज का आदर्श ईश्वर-लाभ हो। भारतवर्ष वैसा ही देश है— गिर गया है, और फिर उठ रहा है— खूब ऊँचा उठेगा। ठाकुर का आगमन ही है इसीलिए।

पाठक— अश्वत्थामा को बाँध कर द्रौपदी के सम्मुख लाया गया। द्रौपदी उसकी अवस्था देखकर कहने लगी, 'इसको शीघ्र मुक्त करो। ...जो गुरुकुल सतत वन्दनीय है, वह दु:खसागर में निमग्न हो जाएगा; यह अनुचित है। मैं पुत्रशोक में कातर होकर निरन्तर अविरल धारा से क्रन्दन कर रही हूँ, इसकी माता गौतमी को जिस प्रकार ऐसे ही पुत्र-शोक में अश्रु विसर्जन करना न पड़े, ऐसा करो।'

श्री म— देखिए। पाँच पुत्र गए, इतना शोक, किन्तु तब भी धर्म छोड़ा नहीं! भारत में ही ऐसा सम्भव है। अपना सर्वनाश हो गया— उस ओर उतना लक्ष्य नहीं, लक्ष्य है गौतमी। उनको जिस प्रकार इस शोकानल में पतित

न होना पड़े, यही भावना। इसी का नाम है दैवीभाव; कैसा heroism (वीरत्व), नारी होते हुए भी! जहाँ पर अपना interest (स्वार्थ) परे, अन्य का interest (स्वार्थ) आगे देखें, वहाँ पर ही है दैवीभाव; माने भगवान् का अधिष्ठान। उसका उल्टा होने पर पशुभाव, मनुष्य भाव। श्रीकृष्ण संग में हैं कि ना, जभी ऐसा उच्च आदर्श। जगत् में यह वस्तु दुर्लभ।

"द्रौपदी के ये महान् वाक्य सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे, 'हाँ, गुरुपुत्र अवध्य।' प्राणघातक वध्य, किन्तु गुरुपुत्र रूप में अवध्य। तब भी जिससे दोनों ओर की रक्षा हो— अपराधी को दण्ड भी मिले और प्राण भी न जाएँ। श्रीकृष्ण के आदेश से अर्जुन ने माथे की मणि-छेदन करके अश्वत्थामा को देश से निकाल दिया। शिखा में हो सकता है मणि बाँधी हुई थी, वही काट दी। यह है मृत्युतुल्य अपमान। इसी कारण समझता हूँ पश्चिम के लोग* शिखा को छूने नहीं देते।"

श्री म *(अमृत के प्रति)*— अहल्या, द्रौपदी, कुन्ती, तारा, मन्दोदरी— इनके एक से अधिक पति थे, तो भी वे प्रातः स्मरणीया हैं। क्यों वे प्रातःस्मरणीया हैं, मेरे जिज्ञासा करने पर एकजन साधु ने बतलाया था, वे भक्त जो हैं।

जगबन्धु— क्या और भक्त नहीं थीं जो उनका ही नाम लेना होगा? वे एक संग ही भक्त और द्विचारिणी थीं कि पीछे भक्त हुईं?

श्री म— उनके जैसा case (मामला) और नहीं है— भक्त और द्विचारिणी। एक पति जिनका, वे ही सती। उनका एक साथ ही भक्ति और एकाधिक पुरुषों में मन था। कहते हैं, द्रौपदी कर्ण को भी मन ही मन चाहती थी। ईशु की शिष्या मेरी, वेश्या थी। उनके संस्पर्श से saint (साधु) हो गई। ईशु ने देह-त्याग के उपरान्त इस मेरी को ही प्रथम दर्शन दिए। मेरी ईश्वर के लिए एक 'घटि' (लोटा भर) रोई थी। ईश्वर मन देखते हैं। उनके लिए जो एक लोटा रोते हैं, उन्हें वे गोद में उठा लेते हैं। उनके लिए सच्चा रुदन चाहिए।

श्री म— कुरुक्षेत्र का युद्ध हो चुका, धृतराष्ट्र, कुन्ती और पाण्डवगण

---

* पश्चिम के लोग= बंगाल के पश्चिम की तरफ के।

बैठे हैं। गान्धारी शोकातुरा। श्रीकृष्ण प्रबोध देते हुए कह रहे हैं, 'देवि, शोक परिहार करिए। मृत्यु सब को ही ले जाएगी, दो दिन आगे या परे। आप आत्म-चिन्तन में चित्त समाहित करिए।'

"कुरुक्षेत्र में जान पड़ता है, बीस लाख व्यक्ति क्षय हुए। उसे हुए बहुत दिन हो गए हैं, तभी तो मन में उतना लगता नहीं। किन्तु जापान में अभी ही पाँच लाख लोग मर गए। एक कोप में पाँच लाख! कैसी भीषण अवस्था उस देश की! इतना बड़ा काण्ड और हुआ नहीं जगत् में। वे जानते हैं नीचे है volcano (आग्नेय गिरि), तब भी रहते हैं; तो मरो।

"हमारी यदि यहाँ से देखने की दृष्टि होती और हम सब कुछ देख पाते, तब कितना भीषण शोक होता! वह उन्होंने दी नहीं। मनुष्य संसार में शक्तिहीन होकर रह रहा है विषयों में मन देने के कारण। उस पर फिर बाहर के ऐसे और शोक देखता, तो उपाय कहाँ? 'चाचा अपना बचा'। इसीलिए ईश्वर ने दूर की चीज़ देखने की शक्ति दी नहीं। वे किन्तु सब कर सकते हैं। पृथ्वी के पुत्र-शोक-कातरों को देख कर कैसी अवस्था होती है, सोच कर देखिए! और भी कितने रकम का शोक होता है— ये सब देख कर कैसी अवस्था होती! अपनी-अपनी ही बातों की चिन्ता करो, वे ही अनेक हैं।

"ठाकुर ने कहा— 'एक दिन ध्यान में देखा, हिमालयवत् शवों का स्तूप। उनके बीच में बैठा हूँ मैं।' माने समस्त संसार ही श्मशान। सब के मुख पर मृत्यु की छाप लगी हुई है। जभी मृत्यु का स्तूप। यही एक ही चित्र यदि कोई ध्यान करे, जप करे, तो सिद्ध हो जाए। चैतन्य होता है कहाँ?"

कोलकता; 6 सितम्बर, 1923 ईसवी, बृहस्पतिवार।
20 भाद्र, 1330 (बंगला) साल, कृष्णा दशमी।

श्री 'म' ट्रस्ट के प्रकाशन

1. श्री म दर्शन

बंगला संस्करण— भाग 1 से 16— स्वामी नित्यात्मानन्द

श्री 'म' दर्शन महाकाव्य में ठाकुर, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द तथा अन्यान्य संन्यासी एवं गृही भक्तों के विषय में नूतन वार्त्ताएँ हैं। और इसमें है कथामृतकार श्री 'म' द्वारा 'कथामृत' के भाष्य के साथ-साथ उपनिषद्, गीता, चण्डी, पुराण, तन्त्र, बाइबल, कुरान आदि की अभिनव सरल व्याख्या।

2. श्री 'म' दर्शन

हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 16

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता द्वारा बंगला से यथावत् हिन्दी-अनुवाद।

3. श्री म दर्शन

अंग्रेज़ी संस्करण— ('M.'— The Apostle and the Evangelist)

श्री 'म' दर्शन ग्रन्थमाला का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता ने 'M.'— The Apostle and the Evangelist नाम से किया है। ट्रस्ट के पास प्रथम बारह एवं पन्द्रहवाँ भाग तो उपलब्ध हैं। शेष भाग— तेरह, चौदह एवं सोलह अभी मुद्रण-प्रकाशन-प्रक्रिया में हैं।

4. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Centenary Memorial

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता और पद्मश्री डी०के० सेनगुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में सम्पादित बृहद् ग्रन्थ, जिसमें ठाकुर श्रीरामकृष्ण, 'कथामृत', श्री 'म' और 'श्री म दर्शन' पर श्रीरामकृष्ण मिशन के संन्यासियों समेत अनेक गणमान्य विद्वानों के शोधपूर्ण लेख हैं।

5. A Short Life of Sri 'M.'

स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के मन्त्र-शिष्य और श्री 'म' ट्रस्ट के भूतपूर्व सचिव प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में लिखी गई श्री 'म' की संक्षिप्त जीवनी।

6. Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा लिखित श्री 'म' के जीवन तथा 'कथामृत' पर विस्तृत शोध प्रबन्ध।

7. श्री श्री रामकृष्ण कथामृत (हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 5)

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त ने ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के श्रीमुख-कथित चरितामृत को अवलम्बन करके ठाकुरबाड़ी (कथामृत भवन), कोलकता-700 006 से 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' का (बंगला में) पाँच भागों में प्रणयन एवं प्रकाशन किया था।

इनका बंगला से यथावत् हिन्दी अनुवाद करने में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता ने भाषा-भाव-शैली— सभी को ऐसे सरल और सहज रूप में संजोया है कि अनुवाद होते हुए भी यह ग्रन्थमाला मूल बंगला का रसास्वादन कराती है।

8. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita (English Edition)

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के हिन्दी-अनुवाद से प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा कथामृत का अंग्रेज़ी-अनुवाद। सभी पाँच भाग प्रकाश में आ चुके हैं।

9. नूपुर (वार्षिक स्मारिका)

श्री म ट्रस्ट के संस्थापक और हम सब के पूजनीय गुरु महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी के 101वें जन्मदिन पर उनकी स्मृति में 'नूपुर' नाम से सन् 1994 ईसवी में इस स्मारिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। उसी स्मारिका ने अब वार्षिक पत्रिका का रूप ले लिया है, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त ठाकुर रामकृष्ण परमहंस, माँ सारदा, श्री म, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी नित्यात्मानन्द, 'श्री म दर्शन' आदि के बारे में प्रचुर सामग्री रहती है। साथ ही 'कथामृत'कार श्री 'म' के द्वारा 'श्री 'म' दर्शन' में कही उन बातों को भी प्रकाश में लाया जाता है, जो 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' में नहीं हैं।

10. लाइयाँ ते तोड़ निभाइयाँ (स्मारिका)

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के 100वें जन्मदिवस पर सन् 2015 में यह स्मारिका प्रकाश में आई।

❖